सोवियत साहित्य पुस्तक-माला

М. ГОРЬКИЙ

МОИ УНИВЕРСИТЕТЫ

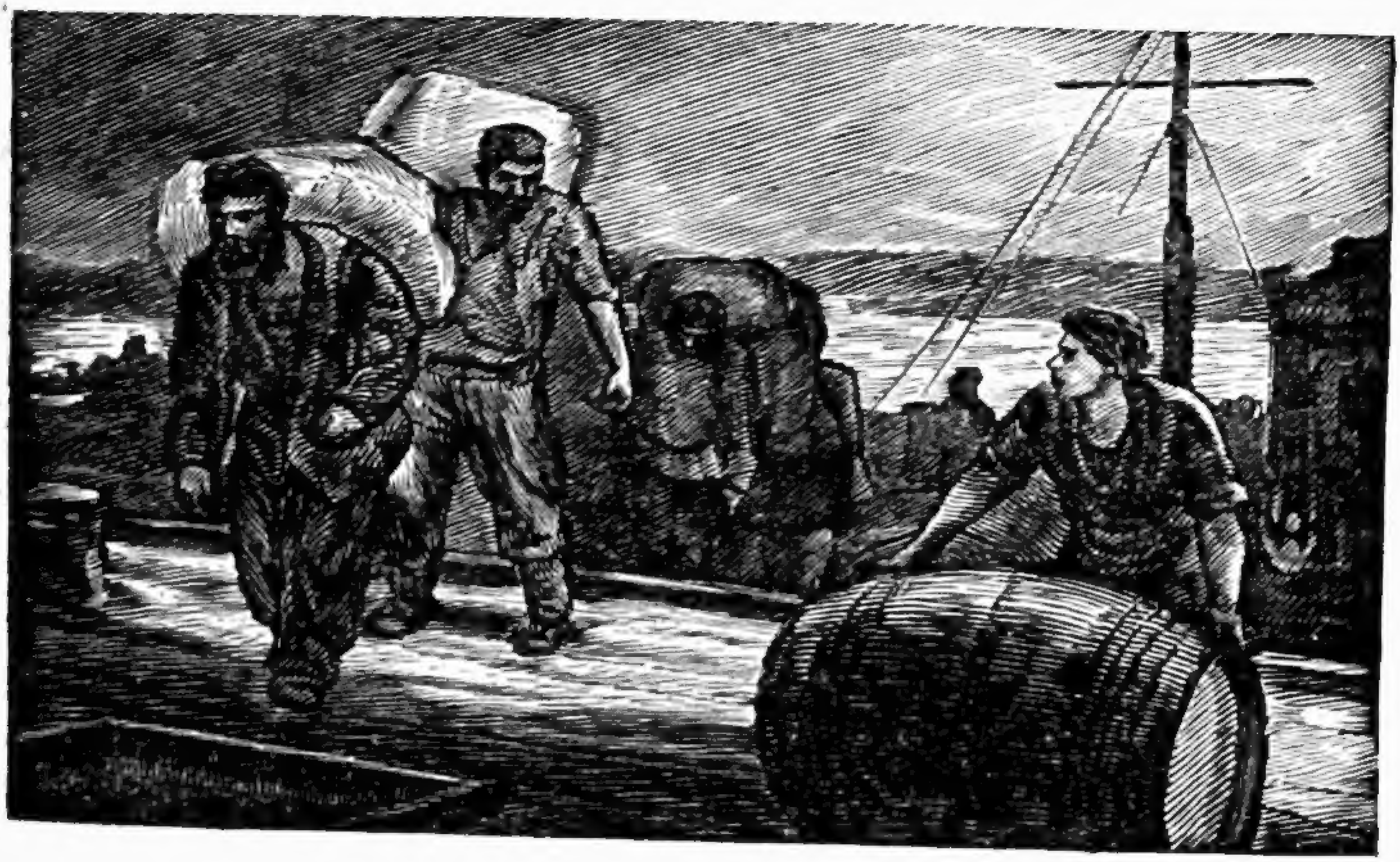
ИЗДАТЕЛЬСТВО ЛИТЕРАТУРЫ
НА ИНОСТРАННЫХ ЯЗЫКАХ
МОСКВА

म० गोर्की

मेरे विश्वविद्यालय

विदेशी भाषा प्रकाशन गृह

मास्को



तो मैं चला कज़ान, वहां विश्वविद्यालय में पढ़ने। जी हां!

विश्वविद्यालय में पढ़ने की सूझ मुझे उच्च स्कूल में पढ़ने वाले एक विद्यार्थी ने दी थी। उसका नाम था न० येव्रेइनोव। येव्रेइनोव खूबसूरत जवान था जिसकी आँखें स्त्रियों जैसी मधुर और कोमल थीं। जिस मकान में मैं रह रहा था उसी के कोठे पर उसका कमरा था। मुझे अक्सर बग़ल में किताब दबाये देख कर मेरे प्रति उसे कुतूहल उत्पन्न हुआ और एक दिन हमारी जान-पहचान हुई। जान-पहचान हो जाने के बाद ही उसने कहना शुरू किया कि "पढ़ो तो तुम बहुत तेज़ निकलोगे।"

उसने कहा:

"तुम्हारा जन्म विज्ञान का भण्डार भरने के वास्ते हुआ है," और अपनी बात पर ज़ोर देने के लिए बड़ी नज़ाकत के साथ झटके से अपने काकुलों को ऊपर किया।

लेकिन विज्ञान की उन्नति में सफ़ेद चूहे भी तो योगदान देते हैं। यह बात उस वक़्त मुझे नहीं मालूम थी। येव्रेइनोव का कहना था विश्वविद्यालयों में यदि किसी चीज़ का अभाव है तो बस मेरे जैसे विद्यानुरागी युवकों का। अपनी बात की पुष्टि के लिए उसने लोमोनोसोव का ज्वलंत उदाहरण पेश किया। उसका कहना था कि कज़ान चल कर मैं उसके साथ रहूँ और पतझड़ के महीनों में उच्च स्कूल का पाठ्यक्रम पूरा कर डालूँ। इसके बाद "दो-एक"— "दो-एक" यही कहा—इम्तहान पास कर लेने के बाद विश्वविद्यालय का द्वार खुल जायगा मेरे लिए। विश्वविद्यालय मे मुझे वज़ीफ़ा मिलेगा और पांच-एक साल में पढ़-लिख कर मैं "विद्वान" बन जाऊँगा! बस मेरे विचार दृढ़ कर लेने की देर थी—फिर तो फाटक खुला हुआ है। यही था स्पष्ट इसलिए कि येव्रेइनोव महोदय की उम्र अभी कुल उन्नीस साल थी और हृदय में था युवकोचित दरियादिली का ज़ोम।

स्कूल की परीक्षा खतम कर वह कज़ान चला गया। उसके जाने के प्रायः दो हफ़्ते बाद मैं भी कज़ान के लिए रवाना हुआ।

चलते वक़्त नानी ने कहा:

"बाहर जा रहे हो, वहाँ एक बात याद रखना। सभी से मेल से रहना। अभी तुम्हारा स्वभाव बिगड़ गया है। जरा सी बात में

उखड़ जाते हो। नानावाली हालत है तुम्हारी। लेकिन नाना का नतीजा देख ही चुके हो। वर्षों ज़िन्दगी खेपने के बाद भी कुछ बन नहीं सके, बेचारे। एक चीज़ हमेशा याद रखना: किसी का ऐब निहारना शैतान का काम है, भगवान का नहीं। बिदा ...।"

उसकी काली झुर्रियों के ऊपर आंसू की दो-एक बूँदें ढलक पड़ीं। उन्हें पोंछते हुए वह बोली:

"यह आख़िरी मुलाक़ात है। मैं जानती हूं कि तेरी अशान्त आत्मा तुझे दूर ही लेती जायगी, और मैं ठहरी पका आम, किस दिन चू पड़ूंगी इसका ठिकाना नहीं है ...।"

इधर यों ही अपनी प्यारी नानी का संग छूट चुका था। उससे मिलने के बहुत कम मौक़े निकलते थे। आज तो अचानक इस बात का अहसास हुआ कि सचमुच यह उससे आख़िरी मुलाक़ात है—प्यारी नानी का, जो इतनी घनिष्ठ, इतनी अभिन्न थी, साथ सदा के लिए छूट रहा है। मेरा हृदय वेदना से भर गया।

बजरे की गलही से मैं उसे देखता रहा। वह तीर पर खड़ी क्रॉस का चिन्ह बना रही थी और अपने फटे पुराने दुशाले की कोर से मुँह पोंछ रही थी। उसकी काली आँखें आँसुओं से तर थीं —वे आँखें जिनमें मानव मात्र के प्रति अमिट और अगाध ममता भरी हुई थी।

मैं कज़ान पहुंच गया। यहाँ की आधी आबादी तातारों की है। रहन-सहन पर भी उन्हीं की छाप। ग़रीबों के एक छोटे महल्ले के छोर पर, एक नीचे टीले के ऊपर, एक एक-मंज़िला मकान खड़ा था—बिल्कुल एकाकी। उसके कमरे तंग और नीचे थे। मकान

के एक तरफ़ खुली जगह थी जिसमें घास और नरकट की घनी झाड़ियाँ उग आयी थीं। यहां किसी वक़्त एक पक्का मकान खड़ा था जो आग से जल कर ख़ाक हो चुका था। उसके अवशेष आज भी चिरायतों और अम्लबेतों की झाड़ियों के बीच से झांक रहे थे। मकान का तहख़ाना साबुत था। उसमें अब कुत्ते रहा करते थे — यहीं उनका मरना और जीना हुआ करता था। वह तहख़ाना, जिसे मैं कभी नहीं भूलूँगा, मुझे ख़ूब याद है। मेरा एक विश्वविद्यालय वह भी था।

येव्‌रेइनोव की मां को पेंशन मिलती थी जो उसका अपना पेट भरने को भी काफ़ी न थी। उसी पर मां और दो बेटों का यह परिवार अपना गुज़र कर रहा था। उनकी दुरवस्था समझते मुझे देर न लगी। सीधी-सादी विधवा बाज़ार से खाने का सामान लाकर रसोई की मेज़ पर रख देती — रद्दी मांस के दो-चार पारचे। इसके बाद असली समस्या सामने आती — किस तरह इस थोड़े से निकृष्ट सामान को स्वादिष्ट और पर्याप्त भोजन में परिवर्तित किया जाय जिसमें तीन तन्दुरुस्त जवानों और एक बुढ़िया का दो जून पेट भर सके।

वह बहुत कम बोलती थी। उसकी भूरी आंखें उस घोड़े की आंखों जैसी लगती थीं जो बोझ ढोते-ढोते थक गया हो, जिसे चढ़ाई तै करनी हो और यह मालूम हो कि वह चढ़ाई नहीं पूरी कर सकेगा, फिर भी चला जा रहा हो — तेजहीन और हताश।

यहां आने के तीन-चार दिनों के बाद की बात है। एक दिन मैं रसोईघर में तरकारी छीलने में उसकी मदद कर रहा था।

दोनों लड़के अभी तक उठे नहीं थे। सावधानी से उसने मुझसे पूछा:

"यहां कैसे आये हो, भैया?"

"पढ़ने के लिए। विश्वविद्यालय में नाम लिखाऊँगा।"

उसकी भौंहें तिरछी हो गयीं जिससे रक्तहीन माथे पर बल पड़ गया। हाथ की छुरी छटक कर उंगली में जा लगी। उंगली कट गयी। उसे मुँह में डाल कर वह कुर्सी पर बैठ गयी लेकिन दूसरे ही क्षण "मर, यह क्या हुआ!" कहती हुई उठ खड़ी हुई।

रूमाल से कटी हुई उँगली को अच्छी तरह बांधने के बाद वह बोली:

"आलू तुम खूब छील लेते हो।"

भला यह भी कहने की बात हुई। मैंने उसे बताया कि स्टीमर के चौके में काम कर चुका हूँ। उसने पूछा:

"तुम्हारा खयाल है कि विश्वविद्यालय में दाखिल होने के लिए चौके की तुम्हारी शिक्षा पर्याप्त होगी?"

उन दिनों व्यंग और हास्य का मुझे ज़रा कम ज्ञान था। अतः उसके प्रश्न का मैं पूरी गम्भीरता के साथ जवाब देने की कोशिश करने लगा। मैंने उसे बताया कि, जहां उच्च स्कूल का पाठ्यक्रम समाप्त किया और यही दो-एक इम्तहान पास किये बस विश्वविद्यालय के फाटक मेरे लिए खुले ही खुले हैं।

उसने दीर्घ निश्वास छोड़ा और आह खींची:

"निकोलाई, निकोलाई . . . ।"

उसी वक़्त निकोलाई रसोईघर में दाखिल हुआ — बाल उलझे,

चेहरे पर रात की खुमारी, और सदा की भांति जोश में। बोला:

"माँ! आज पेल्मेनि * बनाने चाहिये! मज़ा आ जायगा।"

"ज़रूर मज़ा आ जायगा," माँ को सहमति प्रकट करने में कोई आपत्ति न थी।

पर पाक विद्या में मेरा भी दखल है यह सिद्ध करने के लिए मैं कह उठा कि गोश्त पेल्मेनी बनाने के लायक़ नहीं है और जितना है उससे नहीं तैयार हो सकते।

वार्वारा इवानोव्ना मेरी बात सुन कर गुस्सा सम्भाल न सकी। उसने ऐसे चुनिन्दे शब्दों में मुझे याद किया कि सुन कर मेरे कान लाल हो गये। हाथ से गाजर को मेज़ पर डाल कर वह रसोईघर से बाहर हो गयी। निकोलाई ने आँख मार कर मरहम लगाने की कोशिश की:

"आज गुस्से में हैं . . .।"

इसके बाद बेंच के ऊपर इतमीनान से बैठ कर वह स्त्रियों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की गूढ़ताओं से मुझे परिचित कराने लगा। स्वीटज़रलैंड के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने पूर्णतः सिद्ध कर दिया है कि स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक धैर्यहीन होती हैं यही उनका प्राकृतिक गुण है और उसने जॉन स्टुआर्ट मील नामक किसी अँग्रेज विद्वान का भी हवाला दिया जो इस विषय पर भी कुछ न कुछ बोल चुका था।

मुझे शिक्षित बनाने की क्रिया में निकोलाई को बड़ा आनन्द और सन्तोष प्राप्त होता था। अवसर मिलते ही वह मेरे मस्तिष्क

---

* पेल्मेनी—गोश्त को पेस्टरी में लपेट कर एखनी में उबाल लियाजाये।

में पाण्डित्य की प्रकाण्ड बातें ठूस-ठूस कर भर देने को प्रयत्नशील हो जाता — ऐसी बातें जिनके बिना जीवन निश्चय ही असम्भव है। मैं उत्कण्ठा और जिज्ञासा की मूर्ति बन कर उसके एक-एक शब्द का पान करता था। शीघ्र ही फ़ूको, दी ला रोशफ़ूको एवं दी ला रोशजकलाँ मेरे दिमाग़ में भंवर की तरह चक्कर लगाने लगते थे और मैं भूल जाता था कि लावायज़ियर ने ध्रूमूरिज़ का सिर कटवाया था या ध्रूमूरिज़ ने लावायज़ियर का। मेरा दोस्त मुझे "आदमी बनाने पर" तुल चुका था। मुझे उसका पूर्ण आश्वासन प्राप्त था। बस अभाव था तो वक़्त का; यदि उसके पास वक़्त रहता और यदि शिक्षण की उचित अवस्थाएँ वर्तमान होतीं तो वह मेरी शिक्षा की गाड़ी लोहे की पटरियों पर यों चला देता जैसे रेल। युवकोचित आत्म-केन्द्रीयता और चिन्ताशून्यता के कारण उसे माँ की परेशानी दिखायी ही नहीं देती थी — किस तरह गृहस्थी चलाने में बेचारी की सती-गति हुई जा रही थी। उसके छोटे भाई को, जो स्कूल में पढ़ता था और शान्त एवं चुप्पे स्वभाव का लड़का था, इससे भी कम ध्यान था इस ओर। लेकिन नून-तेल-लकड़ी की समस्या क्या होती है इसका मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान था। मुझसे उस औरत की भयानक कठिनाई छिपी न थी जिसे रोज़ तरह-तरह की तिकड़मों से अपने दो बेटों के पेट की आग बुझानी पड़ती ही थी, ऊपर से एक अजनबी का बोझ था जिसकी सूरत-शक्ल और तौर-तरीक़े सभी अप्रिय थे। स्वभावत:, इस घर की रोटी मेरे गले के नीचे आसानी से उतरती न थी। हर कौर मुझे भार मालूम पड़ता था। मैं काम की तलाश करने लगा। खूब तड़के घर से निकल जाता और

तभी लौटता जब समझ लेता कि खाना-पीना ख़तम हो चुका होगा। जिस रोज़ पानी-बून्दी का दिन होता उस रोज़ झाड़ियों वाले तहख़ाने में बैठ कर भोजन का वक़्त गुज़ार देता। चारों ओर मरे कुत्तों और बिल्लियों की गन्ध, हवा में सड़ान्ध; बाहर पानी का बरसना और व्यथापूर्ण स्वरों में हवा का सनसनाना, और मैं चुपचाप तहख़ाने में बैठा खाने का वक़्त ख़तम हो जाने का इन्तज़ार किया करता था। शीघ्र ही मुझे समझ में आ गया कि विश्वविद्यालय की पढ़ाई मेरे लिए सपना है। अगर मैं ईरान भाग गया होता तो अधिक बुद्धिमानी ही होती। तहख़ाने के उस वातावरण में, भूख की गरम भट्ठी में तप कर यह बुद्धि जागी। वहाँ बैठा मैं कल्पनालोक में विचरण किया करता था। मुझे लगता मैं लम्बी धवल दाढ़ी वाला जादूगर हूँ जो इच्छा होते ही गेहूँ और ज्वार के ऐसे पौधे उगा लेता है जिनका प्रत्येक बीज सेब के बराबर है, जो इतने बड़े आलू पैदा कर लेता है कि हर आलू आध-आध मन का। और इतना ही नहीं; जो इस धरती पर, जहाँ जीवन इतना घोर और दुःसह है, केवल मेरे ही लिये नहीं नये-नये करिश्मे दिखा सकता है।

कल्पनालोक में विचरण करते हुए साहसिकता के नये-नये करिश्मे दिखाना मेरी आदत में दाखिल हो गया। जीवन की अपार कठिनाइयाँ झेलने में यह कल्पना बड़ी मददगार सिद्ध होती। और चूंकि कठिनाइयों का पार न था इसलिये कल्पनालोक की कुलाँचें भरने में मैं काफ़ी तेज़ होती जा रहा था। अब मुझे बाहरी मदद की अपेक्षा नहीं रहती थी, न क़िस्मत का भरोसा करता था। अतः

मेरी इच्छाशक्ति दिनोंदिन प्रौढ़ता प्राप्त करती जा रही थी। अब जितनी ही अधिक मुसीबतों का सामना करना पड़ता उतनी ही प्रौढ़ता और आत्मविश्वास मेरे अन्दर आता जाता था। छुटपन में ही मैं ने इस सत्य का साक्षात्कार किया कि चतुर्दिक वातावरण का प्रतिरोध करके ही मनुष्य-चरित्र विकास पाता है।

भूख की ज्वाला से बचने के लिए मैं वोल्गा की गोदियों में चला जाता। वहाँ आसानी से पन्द्रह-बीस कोपेक तक की मजूरी मिल जाया करती थी। गोदियों में माल लादने-उतारने वाले कुलियों, बेकारों और उचक्कों का जमघट रहता था। उनके बीच मैं तप रहा था, जैसे जलते कोयले में लोहा। हर रोज़ नये अनुभव प्राप्त होते थे जो जलती शलाखों की तरह आत्मा पर दाग़ डाल जाते। मानव अपनी सम्पूर्ण नग्नता के साथ सामने आता था — स्वार्थ और लोभ का पुतला। जीवन के प्रति विक्षोभ और तिलमिलाहट मानो यहाँ के निवासियों का सम्बल था। दुनिया की हर चीज़ के प्रति उनका हृदय कड़ुवाहट विडम्बना और शत्रुता से भरा हुआ था। साथ ही अपने प्रति लापरवाही। इस दृष्टिकोण में मेरे लिए कशिश थी। मेरा अपना अनुभव उसके साथ मेल खाता था। वह उस तल्ख़ दुनिया में डूब जाने का मुझे बुलावा दे रहा था। ब्रेट हार्ट की कहानियों और सस्ते उपन्यासों का असर इस दुनिया के प्रति मेरी कशिश को और भी बढ़ा देता था।

यहाँ नये-नये चरित्रों से मुठभेड़ होती थी। बाश्किन पेशेवर उठाईगीरा था। वह नार्मल तक पढ़ा हुआ था। शरीर में क्षय रोग का घुन लग चुका था। वह अक्सर उठाईगीरी करते हुए पकड़ा जाता

और लोग बड़ी बेरहमी से उसे पीटते। मुझे वह वाक्-चातुर्य से समझाता :

"तुम भी यार किस फेर में पड़े हो? लड़कियों की तरह लजाधुर होने से कहीं दुनिया में काम चलता है? डरते किस चीज़ के लिए हो — इज़्ज़त के लिए? इज़्ज़त तो लड़कियों की पूंजी है। हमारे-तुम्हारे लिए तो यह गले के तौक के सिवा कुछ नहीं। अलबत्ता बैल ईमानदार होता है, पर यह भी तो सोचना चाहिये कि बैल भूसा खाकर पेट पाल सकता है।"

बाश्किन नाटे क़द का था — लाल लाल बाल और एक्टरों की तरह दाढ़ी-मूंछ सफ़ाचट। उसका उठना-बैठना, चलना-फिरना बिल्ली के बच्चे की याद दिलाता था — मुलायम और निशब्द। मेरे प्रति उसका व्यवहार बुजुर्गों का सा था — सदा मुझे सीख देना और मेरी भलाई का ख़याल रखना। उसकी हार्दिक कामना रहती थी कि मैं सुखी और समृद्ध बनूं। दिमाग़ का वह बड़ा तेज़ था और पढ़ा भी था काफ़ी। पर "काउँट आफ़ माँट क्रिस्टो" किताब उसे सबसे अधिक पसन्द थी। वह कहा करता था :

"किताब है तो वह। अलबत्ता उसका लेखक दिलदार था। साथ ही उसने जो लिखा है, उद्देश्य लेकर।"

वह बड़ा आशिक़मिज़ाज था। औरतों की चर्चा में उसे बड़ा रस आता था। उनकी बात छिड़ती तो जीभ से ओंठ चाटने लगता और क्षय से टूटे उसके शरीर में सिहरन उठने लगती। वह शरीरकम्पन मुझे अस्वस्थ और घृणित मालूम होता था। पर मैं पूर्ण उत्कंठा के साथ उसकी बातों को सुनता। मुझे उनमें सौन्दर्य का भास होता था।

उसके पीले सूखे गालों पर लुनाई छा जाती और काली आँखें उत्साह से चमक उठतीं जब वह सानुनासिक स्वर में कहने लगता :

"औरत, भाईजान, लाजवाब चीज़ है। मेरी तो जान हाज़िर है उसके लिए। पाप नाम की चीज़ औरत के लिए नहीं बनी है, जैसे शैतान के लिए पाप कोई चीज़ नहीं। प्यार करो — इससे सुन्दर मन्त्र आज तक रचा ही नहीं गया।"

कहानी कहने का उसका ढंग बड़ा अच्छा था। रण्डियों के लिए वह दर्दीले पद भी रचा करता था — माशूक़ों की बेवफ़ाई पर, या आशिक़ों की बेबसी के बारे में। वोल्गा तटवर्ती सभी शहरों में उसके गीत प्रचलित थे। निम्नलिखित मशहूर पद उसी का लिखा हुआ था :

सूरत न शक़ल
चूल्हे की नक़ल,
पैसा न कौड़ी
बीच दौड़ी छोरी,
पहिनाव भी ऐसा
खोल तकिये का जैसा,
सब डर गये छैले,
कौन बला यह मोल ले,
पर होगी शादी कैसे
जब सभी हुए ऐसे।

मेरा एक और शुभचिन्तक था त्रुसोव। वह सन्दिग्ध चरित्र का व्यक्ति था। उसकी एडमिरलटी बस्ती में दुकान थी। वह सदा ख़ूब

बनठन कर रहता था और सूरत-शक्ल का भी अच्छा था। उसकी उँगलियाँ बजवैयों की उँगलियों जैसी नाज़ुक थीं। उसकी दुकान की तख़्ती पर लिखा था "घड़ी मरम्मत"। पर वास्तव में उसका कारबार था चोरी का माल ख़रीद-फ़रोख़्त करना।

तपाक से अपनी दाढ़ी को, जो श्वेत होती जा रही थी, सहलाते हुए धूर्तता से भरी आँखों को दबाकर वह कहा करता था:

"मक्सिम! तुम चोरों की संगत में मत पड़ना। तुम्हारा रास्ता दूसरा है, यह तुम्हें देखने से ही मालूम हो जाता है। तुम्हारी मट्टी ही और है — भावुक।"

"भावुक से तुम्हारा मतलब?"

"मतलब यह कि तुम्हारे अन्दर ईर्ष्या-द्वेष नहीं है, केवल जिज्ञासा है...।"

मेरे विषय में यह कहना ग़लत था। मैं अक्सर ईर्ष्या का शिकार हो जाया करता था। मसलन, मुझे बाश्किन की भाषा पर ईर्ष्या होती थी — उसकी वह अलंकारिक शैली और कवित्वपूर्ण वाक्शक्ति। मुझे याद है, एक बार अपनी इश्क़बाज़ी की एक कहानी उसने निम्न शब्दों में आरम्भ की थी:

"रात की आँखों पर बादलों की पलकें बिछी हुई थीं और मैं स्वियाज्स्क नामक दरिद्र शहर के एक सराय में दुबका बैठा था, जैसे पेड़ के कोटर में घुग्घू। पतझड़ का मौसम था और अक्तूबर का महीना। बाहर वर्षा की फुहार धीमे-धीमे पड़ रही थी। हवा यों क्रंदन कर रही थी जैसे बुरा सलूक करने पर तातार रोता है — ऊ-ऊ-ऊ...!"

"...और तब वह आयी — गोल गुलाबी, जैसे वन की चिड़िया या भोर का बादल। आँखों से झूठे भोलेपन का प्याला छलक रहा था। बोली, 'प्यारे, मुझे माफ़ करना। मैंने जान कर देरी नहीं की।' बोली में मिश्री घुली हुई थी, मजाल क्या कि उसके भोलेपन पर सन्देह किया जा सके। मैं जान रहा था कि वह झूठ बोल रही है, फिर भी मैंने उसकी बातों का विश्वास कर लिया। दिमाग़ को उसके झूठ बोलने का पक्का यक़ीन था पर मन विश्वास करने को तैयार ही न होता था कि बेवफ़ा है वह!"

बोलते वक़्त उसकी आँखें आधी मुन्दी रहती थीं, देह ताल पर हिलती जाती थी, हाथ बार-बार अदा के साथ कलेजे पर जाते थे।

स्वर उसका नीरस था, पर मुंह से प्रत्येक शब्द यों निकलता जैसे चित्र। ऐसा लगता कि उनके अन्दर किसी बुलबुल के बन्दी-प्राण फुदक रहे हों।

मुझे त्रुसोव से भी ईर्ष्या होती थी। वह साइबेरिया, हिवा और बुखारा की ऐसी कहानियां सुनाता कि सुनने वाले सुध-बुध खो देते। पुरोहितों और पादरियों के विषय में वह एक से एक दिलचस्प और तीक्ष्ण कहानी सुनाता था। उन्हें सुन कर हँसी आती थी। पर साथ ही उनके अन्दर भयानक तलखी होती थी। एक दिन ज़ार अलेक्सान्द्र तृतीय के विषय में उसने अत्यन्त रहस्यमय स्वर में कहा :

"यह ज़ार जो है, पक्का उस्ताद है अपने धन्धे का।"

मुझे ऐसा मालूम होता था कि त्रुसोव कहानियों का वह "खलनायक" है जिसके बारे में अन्त में पाठक को पता लगता है कि वास्तव में वह खल नहीं वरन् उदात्त नायक है।

2*

कभी-कभी रात के वक़्त जब हवा के न चलने के कारण गर्मी से दम घुट रहा होता, यह मण्डली पतली कज़ान्का नदी के उस पार के मैदानों में चली जाती। वहीं झाड़ियों में बैठ कर पी-ना-खाना और विभिन्न विषयों पर वार्तालाप हुआ करता। कभी अपनी मुसीबतों और समस्याओं का प्रसंग छिड़ जाता पर अधिकतर वार्तालाप का विषय होता जीवन की पेचीदगियां और मानवीय सम्बन्धों का गड़बड़झाला। प्राय: ही स्त्रियों का प्रसंग छिड़ जाता। स्त्रियों सम्बन्धी उनकी वार्ताओं में द्वेष अथवा व्यथा का पुट होता था। अक्सर हृदय को द्रवित करने वाली कहानियाँ कही जातीं। पर यह प्रसंग आने पर कुतूहल का भाव अवश्य वर्तमान रहता था, मानो किसी अन्धेरे कोने का अन्वेषण कर रहे हों जिसमें नाना ने प्रकार के अनोखे रहस्य छिपे हैं। दो-तीन रातें वहाँ मैं ने उस मण्डली के साथ बितायीं—स्याह आकाश के नीचे, धुंधले सितारों की छाँह में। नरकट की घनी झाड़ियों के बीच थोड़ी सी जगह साफ़ कर ली गयी थी। वहीं हम लोग पड़े थे। हवा का नमोनिशान नहीं। चारों ओर रात का घना अन्धकार जिसमें वोल्गा तट की समीपता के कारण सीलन भरी थी। नदी के धुंधलाई में नावों की लालटेनें, सुनहले मकड़ों की तरह, चलती दिखायी पड़ रही थीं। नदी-तट घनी काली छाया की भांति खड़ा था। बीच-बीच में दीपक का प्रकाश और आग की पतली टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं दिखायी दे जातीं। यह रोशनी नज़दीक के समृद्धिशाली उसलोन गाँव के मकानों और शराबखानों की खिड़कियों से आ रही थी। नदी की छाती पर अग्नि-बोटों के पहियों की छपछप प्रतिध्वनित हो रही थी। बग़ल से बजड़ों की एक लम्बी

क़तार गुज़र गयी जिसपर माझियों के मोटे गले की आवाज़ें रात के सन्नाटे में यों प्रतिध्वनित हुई जैसे सुनसान जंगल में भेड़ियों की गुर्राहट। कहीं हथौड़े की आवाज़ सुनाई देती है। वातावरण की निस्तब्धता में कहीं बिरहा की दर्दीली तान गूंज रही थी जैसे किसी जलती आत्मा की टीसभरी पुकार। उसने हम लोगों के हृदय पर व्यथा का भभूत मल दिया।

उससे भी अधिक दर्दीला था हमारे साथियों का वार्तालाप जो फुसफुस स्वरों में प्रवाहित हो रहा था। सबके अन्दर चिन्तन का एक प्रवाह जारी था—जिसका विषय थी जीवन की पहेली। हर आदमी अपना अन्तर उंडेल रहा था—उसी में डूबा हुआ। दूसरों की बातें केवल कान में घुसतीं और पार निकल जातीं। झाड़ियों की छाँह में कोई लेटा हुआ था,कोई बैठा। सिगरेट के कश चल रहे थे और बीच-बीच में वोद्का या बियर की चुस्कियाँ भी चलती जाती थीं—निरानंद, निर्लिप्त भाव से—और चल रहे थे मस्तिष्क के चित्रपट पर अतीत के स्मृति-चित्र।

रात ने सभी को धरती पर चाँप रखा था। नीचे पड़ा कोई अपनी दास्तान सुनाता: "मेरे ऊपर यह गुजरी है।"

और जब दास्तान खतम हो जाती दूसरे अस्फुट स्वरों में हुंकारी भरते:

"हाँ, होती हैं ऐसी भी घटनाएं! क्या नहीं बीत सकता आदमी के ऊपर इस दुनिया में...।"

सभी के मुंह से सुनाई यही पड़ता, "हुआ था", "हुआ", "हुआ करता था"। सुनते-सुनते मेरे कान पक जाते। ऐसा लगने

लगता मानो ये लोग अपनी आख़िरी घड़ियाँ गिन रहे हों—जो होना था उनकी ज़िन्दगी में, हो चुका है; आगे होने को अब कुछ बाक़ी नहीं!

ऐसी भावना उदय होने पर मेरा मन बाश्किन और त्रुसोव से उचाट हो जाता। फिर भी उनकी कशिश बरक़रार रहती। मेरे ऊपर खुद जो बीती थी उसकी स्वाभाविक परिणति यही थी कि मैं भी उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करता। उच्च जीवन की मेरी आकाँक्षाएं, शिक्षा प्राप्त करने की मेरी उत्कंठा निराशा में परिवर्तित हो चुकी थी। इस कारण भी मुझे उनका अनुसरण करने की प्रेरणा होती। जब भूख के मारे आँतें कुलकुलाने लगतीं और मन निराशा और कड़वाहट से भर जाता तो मेरा जी करता मर्यादा के बन्धनों को तोड़ डालूं। उस वक़्त कोई अपराध ऐसा न था जो मैं न कर गुज़रता—केवल "सम्पत्ति की पवित्रता" भंग करने का अपराध ही नहीं, कोई भी अपराध। पर युवकोचित रोमाँस-भावना ने मुझे नियति-निश्चित मार्ग से विचलित होने से रोका। ब्रेट हार्ट की मानव मात्र के प्रति सहृदयता से ओत-प्रोत पुस्तकों और अनेक सस्ते उपन्यासों के अतिरिक्त मैं बहुत सी गम्भीर पुस्तकें पढ़ चुका था। इन्हें पढ़ने से दूसरे प्रकार की प्रेरणा प्राप्त हुई थी—उच्च आदर्शों तक उठने की प्रेरणा, ऐसे आदर्शों तक जिनकी रेखाएं अभी तक अस्पष्ट थीं पर जो हमारे तत्कालीन चतुर्दिक जीवन से अधिक वज़नदार थे।

इसके अलावा हमारा परिचय दूसरे प्रकार के लोगों से होने लगा था और मैं बिलकुल भिन्न प्रकार की शिक्षा भी प्राप्त करने

लगा था। येव्रेइनोव के मकान की बग़ल वाले ख़ाली मैदान में स्कूल के छात्र प्राय: "गोरोद्की"* खेलने के लिए इकट्ठा हुआ करते थे। इनमें से गूरी प्लेत्न्योव नामक छात्र के साथ मेरी गहरी दोस्ती हो गयी। गूरी साँवले रंग का नौजवान था, बाल जापानियों की तरह आसमानी, और चेहरे पर काले-काले मुहासे मानो बारूद मल दी हो किसी ने गालों पर। वह बड़ी ही मस्त तबीयत का आदमी था, खेल-कूद में औवल और बातचीत में हंसोड़। उसकी शक्ल देखने से ही पता चल जाता था कि यह गुणी और मेधावी है। और सभी मेधावी रूसियों की तरह वह भी प्रकृति की देन पर ही सन्तुष्ट था—उसे अपनी मेधा का विकास करने अथवा आत्मोन्नति की चिन्ता न थी। संगीत का वह बड़ा प्रेमी था और ताल-सुर का उसे ज़बर्दस्त स्वाभाविक ज्ञान था। गूस्ली,** बललाइका*** और हार्मोनियम आदि बाजे वह अत्यन्त सुन्दर बजा लेता था। पर अधिक क्लिष्ट और ऊँचे वाद्य यंत्र सीखने की ओर उसने कभी ध्यान नहीं दिया। वह ग़रीब था और पोशाक भी उसकी अत्यन्त साधारण थी — फटी चिमड़ी क़मीज़, पैवंद लगी पतलून और तल्ले-घिसे जूते। लेकिन उसकी मस्त तबीयत, दिलदारी, फुर्तीलेपन तथा गठी हुई देह के साथ इस पहनावे का खूब मेल बैठता था।

---

* गोरोद्की — लकड़ी-बेड़ी।

** गूस्ली—सारंगी की तरह का एक पुराना बाजा।

*** बललाइका—यह तीन तार का सितार।

उसकी हालत यों थी जैसे लम्बी बीमारी के बाद बाहर निकला या फ़ौरन जेल से छूटा आदमी। उसे हर चीज़ में मस्ती और बहार ही नज़र आती थी। जीवन में उसे रस ही रस प्रतीत होता था। वह दुनिया भर पर लट्टू रहता था, लट्टू की ही तरह चपल।

उसे जब मेरी मुसीबत का हाल मालूम हुआ तो उसने मुझे अपने साथ आ जाने का न्योता दिया। साथ ही उसने सुझाव दिया कि मैं नार्मल पास कर गाँव के स्कूल में मास्टरी करूँ। फलस्वरूप मैं 'मरुसोव्का' में रहने लगा। कज़ान में पढ़ने वाले कम ही विद्यार्थी इस पुराने अड्डे से परिचित नहीं होंगे। 'मरुसोव्का' चालों के एक समूह का नाम था जहाँ सदा मस्ती का वातावरण छाया रहता। वास्तव में वह 'रिब्नोर्याद्स्काया' सड़क की एक बड़ी सी ख़स्ताहाल इमारत थी जिसे भूखे छात्रों और वेश्याओं की एक टोली ने, सम्भवतः ज़बर्दस्ती दख़ल कर लिया था। उनके अलावा उसमें कुछ और भी विचित्र प्राणी थे, जीवन जिनका साथ छोड़ चुका था, जो टूटी नाव थे—बोझिल और व्यर्थ।

प्लेत्न्योव कोठे की सीढ़ियों वाले हाल में रहता था। सीढ़ी के ठीक नीचे उसने अपनी खाट डाल रखी थी। हाल के एक किनारे खिड़की थी जिसके पास एक मेज़ और एक कुर्सी पड़ी थी। यही था उसका कुल सामान। इस हाल में तीन कमरों के दरवाज़े खुलते थे जिनमें से दो में रंडियाँ रहती थीं और तीसरे में एक गणितज्ञ जिसे क्षय की बीमारी थी। पहले वह धर्म शिक्षण संस्था का विद्यार्थी था। खूब लम्ब-तड़ंग, देखने में वह डरावना लगता था। उसकी पूरी देह मोटे कड़े ललछूंह लोमों से आच्छादित थी। पोशाक उसकी मैली चिथड़े-चिथड़े हो चुकी थी और शरीर उसके

अन्दर पूरी तरह ढक नहीं पाता था। कपड़ों में जहाँ तहाँ सूराख हो गए थे। नीले रंग की उसकी डरावनी खाल थी और पसली की हड्डियाँ उनसे बाहर झाँका करती थीं।

वह सदा अपने नाखून चबाता रहता था। ऐसा लगता था कि नाखून ही उसकी खुराक हैं। वे छिल कर बराबर हो गये थे। वह सदा कापी के ऊपर हिसाब और नक़शे बनाया करता था और लगातार खाँसता जाता था—तेज़ सूखी खाँसी जिसकी प्रतिध्वनि सारे हाल में गूंजा करती थी। रंडियाँ उसे पागल समझती थीं और डरा भी करती थीं उससे। पर उसके ऊपर तरस खाकर वे चुपके से उसके दरवाज़े पर रोटी, चाय और चीनी रख आती थीं। थके घोड़े की तरह हाँफता-कांपता वह बाहर आता और आकर इन सामानों को उठा ले जाता। अगर वे खाना देना भूल जातीं, या असमर्थता वश खाने का प्रबन्ध नहीं कर पातीं तो वह हाल में निकल कर काँपती-कड़कती आवाज़ में चिल्लाता :

"खाना!!"

वह सदा शान से चूर रहता था। आँखें काले गढ़े में धंस गयी थीं, पर उनसे घमण्ड और उन्माद झलकता था। कभी-कभी उसके यहाँ एक विचित्र प्राणी मिलने आया करता था। नाटा क़द, कुबड़ा बदन, ऐंठी हुई टाँग, उजले केश, फूली हुई नाक जिसके ऊपर खूब मोटा चश्मा, चेहरा ज़नखों की तरह पीला-श्वेत और मुँह पर धूर्ततापूर्ण मुसकान। दोनों अन्दर से दरवाज़ा बन्द करके घण्टों बैठे रहते थे—निशब्द। उस वक्त उसकी कोठरी एक अस्वाभाविक सन्नाटे में डूब जाती। लेकिन, एक बार बहुत रात

गये मेरी नींद सहसा गणितज्ञ के बैठे हुए गले की गुर्राहट से खुल गयी। वह गुस्से से कड़क रहा था:

"मैं कहता हूँ तुम्हारी ज्यामिति क़ैदखाना है! पिंजड़ा है! चूहेदानी है!"

कुबड़ा वनमानुष किलकारी मार कर हँसा और बार-बार कुछ शब्द दुहराने लगा जो मेरे लिए बिलकुल अपरिचित थे। इसके बाद गणितज्ञ यकायक गरज कर बोला:

"निकलो यहाँ से! निकल जाओ!"

कुबड़ा जल्दी-जल्दी अपना लबादा समेटता हुआ बाहर निकला। वह भी गुस्से से फुंकार रहा था। गणितज्ञ उसके पीछे-पीछे दरवाज़े पर आया—लम्बा, डरावना वेष, अपने रूखे-उलझे बालों को नाचता काँपता-हाँफता। बोला:

"यूक्लिड तुम्हारा—गधा है! बिलकुल गधा...! मैं सिद्ध करके दिखा दूँगा कि भगवान इस यूनानी से अधिक बुद्धि रखता है!"

यह कह कर वह फिर कमरे में घुस गया और इतने ज़ोर से दरवाज़ा भिड़ा लिया कि धमक से कोई चीज़ झनझनाती हुई फ़र्श पर आ गिरी।

बाद में मुझे पता चला कि वह उच्च गणित के द्वारा ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करने की कोशिश कर रहा था। अपनी स्थापना सिद्ध करने के पहले ही ईश्वर ने उसे उठा लिया।

प्लेतून्योव रात में अख़बार के दफ़्तर में प्रूफ़रीडर का काम करता था। उसे प्रतिदिन ग्यारह कोपेक मिलते थे। जिस दिन मुझे मजूरी

नहीं मिलती थी हम दोनों चार पाउण्ड रोटी, दो कोपेक की चाय और तीन कोपेक की चीनी पर गुज़र करते। मुझे प्रायः ही कमाने की बहुत कम फ़ुरसत मिलती थी क्योंकि पढ़ाई करनी पड़ती थी। पढ़ाई में मुझे बड़ी मशक़्क़त का सामना करना पड़ा। व्याकरण ख़ास तौर से काल था मेरे लिये। उसकी संकीर्ण, सख़्त नियमावली में जीवित-जाग्रत रूसी भाषा को बाँधना आसान काम न था। चुलबुली रूसी ज़बान और उसकी रंगीनियाँ व्याकरण के फन्दे में फँसने का नाम ही न लेतीं। लेकिन शीघ्र ही हम लोगों को पता चला कि मैंने मास्टरी की पढ़ाई "ज़रा जल्दी" आरम्भ कर दी है और यदि मैं इम्तहान पास भी कर लूँ तो नौकरी नहीं मिलेगी क्योंकि उम्र कम है।

प्लेत्न्योव और हमारे बीच एक ही खाट थी जिसपर दिन में वह और रात में मैं सोता था। ख़ूब सवेरे वह घर लौटता था — रात की ड्यूटी से थक कर चूर, चेहरा झाँवर और आँखें आरक्त। उसके आते ही मैं बिस्तर छोड़ देता और पास के चायख़ाने से गरम पानी लाने चला जाता क्योंकि हम लोगों के पास समोवर नहीं था। इसके बाद खिड़की के पास वाली मेज़ पर बैठ कर हम दोनों चाय और रोटी का अपना नाश्ता समाप्त करते। गूरी मुझे सवेरे के अख़बार की ख़बरें और "लाल टोप" उपनाम से लिखने वाले पियक्कड़ कवि की ताज़ी मज़ा किया कविताएँ सुना जाता। जीवन की समस्याओं के प्रति उसकी मस्ती भरी लापरवाही पर मैं दंग रहता था। जीवन के प्रति उसका व्यवहार वैसा ही था जैसा मोटी गाल्किना के प्रति जो कुटनी थी

और औरतों की जीर्ण पोशाकों की ख़रीद-बिक्री का रोज़गार करती थी।

इसी औरत ने सीढ़ी के नीचे वाली खोली उसे दी थी। "मकान" के किराये के एवज़ में वह उसे नये-नये मज़ाक़, हार्मोनियम-वादन और चलते गाने सुनाया करता था। गाते वक़्त उसकी आँखें ऐसी चमकने लगतीं मानो गीत, सुर के सुनने वाले सभी नाचीज़ थे उसके लिए। गाल्किना ने अपनी जवानी के दिनों में ऑपरा में काम किया था इसलिए संगीत की क़दरदान थी। अक्सर गूरी के गीतों से वह मुग्ध हो जाती और उसकी आँखों से, जिनका पानी गिर चुका था, छलछल आँसू उसके गालों पर गिरने लगते जो शराब-कबाब की अति करने के कारण फूले और सुर्ख़ थे। अपनी मोटी उँगलियों से आंसुओं को साफ़ करने के बाद वह मैले रूमाल से सावधानी से उँगलियों को पोंछ डालती।

लम्बी साँस लेकर वह कहती: "कमाल हासिल है तुझे, गूरी! तू सच्चा कलाकार है! अगर चेहरा-मोहरा तेरा थोड़ा और अच्छा होता तो मैं तेरा ऐसी जगह ठिकाना लगा देती कि पांचों उँगलियाँ घी में होतीं! बहुत से ज्वानों की गोटी मैंने ऐसी औरतों के साथ बैठा दी है जो एकाकीपन के कारण विरहिनी बनी हुई थीं!"

ऐसा ही एक "ज्वान", ठीक हमारे ऊपर, कोठे में रहा करता था। वह विद्यार्थी था। बाप उसका किसी फ़र के सौदागर के यहाँ काम करता था। वह मझोले कद का था — छाती ख़ूब चौड़ी पर कूल्हा बेतरह चपटा। वह ऐसा लगता था जैसे नोक के बल खड़ा त्रिभुज, पर नोक छील दी गयी हो।

उसके पाँव बहुत छोटे-छोटे थे — जनाने। उसका मस्तक भी, जो मानो कन्धों में डूब गया था, छोटा था। बाल खड़-खड़े, चमकदार और लाल थे। उसके पीले रक्तहीन चेहरे में हरी-हरी मलिन आँखें ऐसी लगतीं मानो किसी ने उन्हें ऊपर से टाँक दिया हो।

बाप की इच्छा नहीं थी उसे पढ़ाने की। पर बाप की इच्छा के विरुद्ध उसने अगनित बाधाओं का सामना करते हुए, भूख-प्यास झेल कर, बेघर कुत्तों जैसी ज़िन्दगी बिता कर — स्कूल की पढ़ाई खतम की और विश्वविद्यालय का इम्तहान पास कर लिया। इसके बाद उसे खयाल आया कि गला हमारा बहुत अच्छा है इसलिये संगीत का अध्ययन करना चाहिये।

गालिकना ने संगीत पढ़ने की उसकी इच्छा का फ़ायदा उठा कर उसे अपने फन्दे में फंसा लिया। उसकी मुअक्किला व्यापारी घराने की थी। उम्र चालीस वर्ष। एक लड़का विश्वविद्यालय में तीसरे वर्ष में और लड़की स्कूल की आखिरी कक्षा में पढ़ती थी। उसकी धजा विचित्र थी — लम्बी और कृषकाय, सूखी छाती, तन कर यों चलने वाली जैसे परेड पर सिपाही, चेहरा गम्भीर और आवेशहीन जैसे मठ की भिक्षुणी। बड़ी-बड़ी आँखें काले गड्ढों में लुप्त हो गयी थीं। वह सदा काली पोशाक में रहती थी — माथे पर पुराने फ़ैशन का रेशमी रूमाल और कानों में इयरिंग जिनमें हरा नगीना जड़ा हुआ था।

अक्सर रात जाने पर या खूब तड़के वह अपने विद्यार्थी यार को खोजने आती थी। अक्सर मैं उसका आना देखता — वह फाटक में आँधी की तरह घुसती और धमकती हुई आँगन पार करती।

चेहरे पर एक अजीब डरावना तनाव होता — ओठ भिंचे हुए मानो हों ही नहीं। आँखों में निराशा की व्यथा, दीठ सामने टंगी हुई, आँखें फैली फिर भी ऐसी मानो दृष्टिहीन हों। बदसूरत उसे नहीं कह सकते थे, पर मानसिक तनाव ने मुखाकृति को विकृत कर दिया था। ऐसा लगता था किसी ने बेरहमी से कुरेद कर उसकी आकृति और अंग-अंग टेढ़े कर दिये हों।

उसे देख कर प्लेतन्योव कहता: "देखो, देखो! बिल्कुल पगली लगती है!"

उसका छात्र मित्र उससे घृणा करता था और सदा उससे बचने का प्रयत्न किया करता था। और वह थी कि उसका पीछा छोड़ने का नाम न लेती जैसे खुफ़िया का आदमी या क़र्ज़दार के पीछे निष्ठुर साहूकार।

थोड़ी शराब पी लेने के बाद वह कहने लगता:

"मैं कहीं का नहीं रहा। यह गाना कौन काम आयेगा मेरे? मेरा चेहरा और कैंड़ा देख कर कोई रंगमंच के पास भी फटकने नहीं देगा मुझको।"

प्लेतन्योव उसे सलाह देता था:

"अभी भी हो जाओ अलग पल्ला झाड़ कर!"

वह जवाब देता:

"तुम ठीक कहते हो। मैं खुद भी इसे महसूस करता हूं। मुझे उसकी सूरत से ही घृणा है। फिर भी मुझे तरस आता है उसके ऊपर। उसकी हालत देखते तुम तो...।"

हम लोग उसकी हालत से वाकिफ़ थे। रात में सीढ़ी पर खड़ी होकर वह कम्पित स्वर में कहती:

"मेरे प्यारे, मेरी जान... मेरे कलेजे! ईश्वर के लिए!"

उसका एक बड़ा सा कारख़ाना था। इसके अलावा शहर में बहुत से मकान थे। वह अपना घोड़ा और जोड़ी रखती थी। उसके दान से नर्सों का एक स्कूल चलता था। पर प्रेमी के आगे वह भिखारिन बन जाती थी—बिलकुल मुहताज।

नाश्ते के बाद प्लेतून्योव सो जाता और मैं काम की तलाश में निकल जाता। रात के पहले मैं नहीं लौटता। उस वक़्त तक उसका छापाखाने जाने का वक़्त हो जाता था। अगर मैं अपने साथ भोजन लाता—रोटी, सॉसेज, कभी-कभी चुस्ता-चरबूदा—तो दोनों उसे आधा-आधा बाँट लेते। वह अपना हिस्सा लेकर काम पर चला जाता।

उसके चले जाने के बाद मैं 'मरुसोव्का' के हालों और गलियारों का चक्कर लगा कर वहाँ के निवासियों के जीवन का, जो हमारे लिए नये और अनजान थे, पर्यवेक्षण आरम्भ कर देता था। इस इमारत में रहने वालों की संख्या अनगिनत थी—यों समझिये कि वह चीटों का बिल था। उसमें चारों ओर अजीब खट्टी और तल्ख़ गन्ध उड़ा करती थी। यह पता लगाना मुश्किल था कि यह गन्ध आती कहाँ से है। इमारत में जगह-जगह अन्धेरे कोने थे जो भूतों के डेरे मालूम पड़ते थे। सवेरे से बड़ी रात गये तक इमारत में चहलपहल छायी रहती थी—दर्जिनों की सिलाई मशीनों की लगातार खटर-खटर, ऑपरा में काम करने वाली लड़कियों का सा-रे-ग-म, कोठे वाले संगीत के विद्यार्थी की उस्तादी आ-आ-आ, एक अर्धविक्षिप्त एक्टर का, जिसे शराब ने बरबाद कर डाला था, हाथ भाँज-भाँज

कर गुरु गर्जन, नशे में चूर रंडियों की चाँय-चाँय। मेरे मस्तिष्क में स्वभावत: प्रश्न उठता:

"यह सब किस लिए?" और इस सवाल का जवाब न था।

उसी मकान में एक और विचित्र आदमी रहता था। पता नहीं अधभूखे ग़रीब विद्यार्थियों की जमात में आकर बसने में उसे क्या आनन्द प्राप्त होता था। उसके बाल लाल; सिर बीच में खल्वाट हो रहा था। काफ़ी बड़ी सी तोंद थी उसकी, पर पैर दुबले-पतले और सूखे। उसके गालों की हड्डियाँ खूब उभरी हुई थीं, मुँह विशाल। उसके अन्दर घोड़ों जैसे बड़े-बड़े पीले दाँतों की पाँत नज़र आती थी। इन दाँतों के ही कारण लोगों ने उसका नाम रख छोड़ा था "लाल घोड़ा"। वह अपने कुछ रिश्तेदारों के साथ जो सिम्बिर्स्क में व्यापारी थे मुक़दमेबाज़ी में फँसा हुआ था। मुक़दमा चलते तीन साल हो चुके थे। वह सुननेवालों से बड़े तपाक के साथ कहता था:

"मैं तो मर जाऊँगा ही पर अपने साथ इन लोगों को भी न ले मरा तो कहना! इन लोगों की अगर दर-दर से भीख न मंगवायी तो मेरा नाम नहीं। तीन साल तक जब वे भी दरवाज़े की धूल छान चुकेंगे तो मैं सारी जायदाद उन्हें लौटा दूंगा और कहूंगा: 'बच्चू, अब तो रास्ते पर आये न।' जी हाँ! यही करके न छोड़ा तो पेशाब से बाल बनवा दीजियेगा मेरे।"

लोग सवाल करते थे:

"घोड़ा भाई, यही तुम्हारे जीवन का चरम लक्ष्य है क्या?"

वह जवाब देता: "मैं तो, भाई, सत्तू-बाँध चुका हूँ। जब तक यह काम पूरा नहीं कर लूंगा मुझे चैन लेना हराम है!"

दिन भर वह कचहरियों या वकीलों के यहाँ की ख़ाक छाना करता। अक्सर शाम को घोड़ा-गाड़ी पर चढ़ कर घर लौटता। साथ में ढेर सा सामान होता—खाने-पीने की चीज़ें, शराब की बोतलें। इसके बाद अपने गन्दे कमरे में जिसकी छत झुकी जा रही थी और फ़र्श में गढ़े बन गये थे, वह पार्टी करता। विद्यार्थी, दर्जिनें, गरज जो भी भरपेट भोजन और शराब के दो-चार घूंटों की इच्छा रखता, उसकी पार्टी में शरीक हो सकता था। ख़ूब खाना-पीना चलता और शोरगुल होता। "लाल घोड़ा" ख़ुद केवल रम पीता था जिसकी बूंद पड़ने से मेज़पोश तथा उसके कपड़ों पर, यहाँ तक कि फ़र्श पर, लाल दाग़ पड़ गये थे। दो-चार चुस्कियाँ लेने के बाद वह छाती पीटना और बकना शुरू कर देता:

"राजदुलारों, मेरे जिगर के टुकड़ों, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ! तुम लोग मेहनत की रोटी खाते हो। और मैं हूँ कि पाप का टोकरा—पूरा घड़ियाल! अपने ही नातेदारों को बरबाद कर देने पर तुला हूँ। और क़सम खा कर कहता हूं मैं, उन्हें बरबाद करके दम लूँगा। मैं तो मर जाऊँगा ही...।"

उसकी विषादपूर्ण आँखें अजीब ढंग से मिचकने लगतीं। उनसे आँसू चू-चू कर उसके भद्दे गालों को धोने लगते। हथेली से आँसुओं को पोंछने के बाद वह उन्हें अपनी जाँघ पर रगड़ लेता। उसकी पतलून सदा चर्बीदार धब्बों से भरी रहती थी।

"ओफ़! तुम लोगों की भी क्या ज़िंदगी है? न खाने को भोजन, न जाड़े से बचने को कपड़ा, तन पर केवल चिथड़े। यह भी क्या इँसाफ़ है? ऐसी हालत में भला पढ़ाई क्या करोगे तुम लोग? हाँ ज़ार को तुम लोगों की हालत की ख़बर हो जाती...।"

यह कह कर वह अपनी जेब से नोटों का बंडल निकालता और चिल्ला कर कहता:

"किसे रुपया चाहिए? यह लो, प्यारे भाइयो, रुपया ही रुपया!"

गाने वाली लड़कियाँ और दर्जिनें नोटों के बंडल पर टूट पड़तीं। पर अपनी बालदार मुट्ठियों को ज़ोरों से बंद किये हुए वह हँसने लगता और कहता:

"तुम्हारे लिए नहीं, तुम्हारे लिए नहीं! यह विद्यार्थियों के लिए है!"

लेकिन विद्यार्थी उसके रुपये नहीं छूते थे।

फ़र के व्यापारी का लड़का गुस्से से चिल्ला कर कहता: "गोली मारो अपने रुपयों को!"

एक बार वह खुद बुरी तरह पिये हुए प्लेत्न्योव के पास दस रूबल के नोटों का एक पूरा बंडल लाया। नोटों को मरोड़ कर उसने गेंद बना लिया था। काग़ज़ की उस गेंद को मेज़ पर फेंक कर वह बोला:

"चाहिये तुम्हें? ले लो। मुझे नहीं ज़रूरत है इनकी...।"

वह हमारी खाट पर गिर पड़ा और लगा ज़ोर-ज़ोर से रोने-चिल्लाने। हम लोगों ने उसके ऊपर एक बाल्टी पानी उँडेल दिया और कुछ पानी ज़बर्दस्ती गले के नीचे भी उतार दिया। वह सो गया तो प्लेत्न्योव नोटों को ठीक करने लगा। वे इतनी बुरी तरह ऐंठ गये थे कि उन्हें पानी में तर करने के बाद ही अलग किया जा सका।

"घोड़े" की कोठरी की खिड़कियाँ बग़ल के मकान की ईंटों की दीवार की ओर खुलती थीं जिससे हवा और रोशनी दोनों का रास्ता बंद था। कमरा धुएँ से भरा रहता था। हवा का आना-जाना निषेध था उसमें। चारों ओर गंदगी और शोरगुल का साम्राज्य था मानो भयानक सपने का देश हो। उस शोरगुल में सब से ऊँची आवाज़ खुद "घोड़े" की हुआ करती थी। मैंने एक दिन पूछा:

"तुम यहाँ क्यों रहते हो? किसी होटल में क्यों नहीं चले जाते?"

वह बोला:

"राम, राम! यह क्या कहते हो, प्यारे तुम? तुम्हीं लोगों की संगत से तो दम में दम है।"

फ़र के व्यापारी के बेटे ने उसके साथ सहमति प्रगट की। वह बोला: "ठीक कहते हो, घोड़ा भाई! मेरी भी यही हालत है। कहीं और जाऊँ तो दूसरे ही दिन अपना खातमा हो जाए!"

"घोड़े" ने प्लेतृन्योव से कहा:

"कुछ गाकर सुनाओ, यार! या बाजा ही रहे...।"

गूरी गूस्ली लेकर गाने लगा:

"निकलो लाल सूरज, सवेरा हो...।"

उसकी मीठी आवाज़ कलेजा सालने लगी।

कमरे में सन्नाटा छा गया। पूरी मंडली चुपचाप, उदास, बैठी गीत की वेदनामय तान और गुस्ली के तारों की टीसमरी टंकार में डूब गयी।

3*

बुड्ढी अमीरज़ादी का अभागा आशिक़ बुड़बुड़ाता है: "गोली मारो, लेकिन ख़ूब गाते हो, यार!"

इस पुरानी इमारत के अजीब बाशिंदों में गूरी प्लेतन्योव का हँसमुख चेहरा प्रकाशस्तम्भ के समान था। जैसे परियों की कहानियों में सदा सबकी भलाई चाहने वाले नेकदिल नायक हुआ करते हैं वैसे ही गूरी था इस मकान में। उसकी युवक आत्मा पर सदा इन्द्रधनुष का रंग चढ़ा रहता था। उसकी चुहल और ख़ुशमिज़ाजी सदा सभी का मन बहलाती रहती। उसके मज़ाक़, उसके सुन्दर गीत, मानव विकारों और रूढ़ियों पर उसका निर्मोही व्यंग तथा सामाजिक अन्याय पर उसकी छींटाकशी उस घर में रहने वालों की मुसीबतज़दा ज़िंदगी का बोझ हलका करने में बहुत बड़े सहारे का काम करती थी। अभी उसने उन्नीसवां ही पार किया था और बीसवें में पैर रखा था — देखने में बिल्कुल बच्चा। फिर भी वहाँ के सभी बाशिंदे कोई बड़ी मुसीबत आ पड़ने पर उसी के पास सलाह के लिए आते थे। वह महल्ले का बड़ा-बूढ़ा जैसा था। वक़्त पड़ने पर गूरी जैसे भी हो, मदद करेगा, यह सभी का विश्वास बन गया था। नेक तबीयत वाले सभी लोग उसे दिल से चाहते थे और जो बुरे थे वे उससे डरते थे। यहाँ तक कि बूढ़ा पुलिस वाला निकिफ़ोरिच भी उससे मिलने पर दाँत निपोड़ कर बातें करता था। यद्यपि उसकी मुस्कान कपट और धूर्तता से सनी रहा करती थी।

"मरुसोव्का" का आँगन ऊपर की ओर ढालुआ था। एक ओर उसका निकास रिबनोर्यादस्काया और दूसरी ओर स्तारो-गोर्शेच्नाया

की ओर था। दूसरी सड़क पर हमारे फाटक से थोड़ी ही दूर निकिफ़ोरिच का छोटा सा क्वार्टर था।

हमारे इलाक़े में वही पुलिस का प्रधान था। दुबला-पतला, लम्बा और बूढ़ा, वह हमेशा सीने पर बहुत से तमगे लगाये रहता था जो चमाचम किया करते थे। उसके चेहरे और आँखों से धूर्तता टपकती थी और मुँह पर हमेशा मीठी मुस्कान रहती थी।

हमारी इमारत और उसके बाशिंदों के ऊपर निकिफ़ोरिच की खास नज़र रहा करती थी। दिन में कई बार वह वहाँ का चक्कर लगा जाया करता। फाटक पर उसकी साफ़-सफ़ाक सूरत नज़र आती और आँगन पार कर वह हर कमरे को सूँघना शुरू कर देता। वह हर खिड़की को झाँकता मानो उसमें आनोखे जीव-जन्तु बंद हों और वह हो चिड़ियाघर का रखवाला। जाड़ों में इस घर के दो आदमी गिरफ़्तार हो गए—एक का नाम था स्मिर्नोव। उसका एक हाथ कटा हुआ था। वह फ़ौज में अफ़सर रह चुका था। दूसरा था मुरातोव। वह फ़ौज में साधारण सिपाही रह चुका था। दोनों ने स्कोबेलेव के साथ 'अखाल-तेकिन' की मशहूर चढ़ाई में भाग लिया था और उन्हें 'जार्जक्रॉस' मिला था। उनके और उनके साथ ज़ोबनिन, ओवस्यान्किन, ग्रिगारीएव, क्रिलोव और कई अन्य लोगों के खिलाफ़ अभियोग लगाया गया कि उन्होंने गुप्त छापाखाना क़ायम करने की कोशिश की थी। मुरातोव और स्मिर्नोव के ऊपर एक दिन एतवार को, दिन दहाड़े, क्ल्यूचनिकोव की प्रेस से, जो शहर के सब से चलते मुहल्लों में पड़ती थी, टाइप चुराने का आरोप था। वहीं वे गिरफ़्तार कर लिए गये। इसके बाद ही रात को एक

दिन पुलिस ने 'मरुसोव्का' पर छापा मारा और एक लम्बे, पतले मलिन आकृति के आदमी को, जिसे मैं "चलता-फिरता घंटाघर" कहा करता था, पकड़ कर ले गये। गूरी सवेरे काम से लौटा और यह ख़बर सुनी तो घबरा गया। हाथ से अपने काले बालों को ऐंठता हुआ मुझसे वह बोला:

"शैतान की बात। तुम फ़ौरन जहाँ बताता हूँ चले जाओ—भाग कर जाना...।"

उसने बताया कि कहाँ जाना होगा और फिर बोला:

"मगर सम्भल कर जाना! ख़ुफ़िया पुलिस वालों से बच कर...।"

मैं उड़ चला एडमिरलटी बस्ती की ओर। गुप्त काम में साझीदार बनने से मुझे मन में बड़ी ख़ुशी हो रही थी। वहाँ ठठेरे की एक छोटी सी दूकान थी। उसमें एक घुंघराले बालों वाला नौजवान बैठा ताँबे की एक थाली पर ठक-ठक कर रहा था। उसकी आँखें विलक्षणरूप से नीली थीं और देखने से मालूम होता था कि वह ठठेरा नहीं है। दूकान के अँदर एक कोने में एक बुड्ढा बैठा हुआ था जिसके श्वेत केश चमड़े की पेटी से बंधे हुए थे। वह शिकंजे से कल की टोंटी पकड़े, उसकी मरम्मत कर रहा था। मैंने कहा: "यहाँ काम मिल सकेगा?"

बुड्ढे ने रूखी आवाज़ में जवाब दिया:

"काम क्यों नहीं है। बहुत है। पर तुम्हारे लिए नहीं!"

नौजवान ने एक बार फुर्ती से मेरी ओर ताका और फिर काम में लग गया। मैंने पैर से उसके पैर को दबा कर इशारा

किया। क्रोध और विस्मय से घूम कर उसने अपनी नीली आँखों से मेरी ओर ताका और अपने हाथों की थाली को यों पकड़ लिया मानो मुझे वही फेंक मारेगा। पर मैंने आँख का इशारा किया। फ़ौरन शांत स्वर में वह बोला:

"बाहर, बाहर...।"

मैंने फिर आँख का इशारा किया और बाहर निकल कर दरवाज़े पर खड़ा हो गया। घुँघराले बालों वाला ठठेरा उठ खड़ा हुआ, अपने हाथ-पैर सीधे किये और मेरे पीछे-पीछे दरवाज़े पर आया। सिगरेट जलाते हुए वह मेरे मुँह की ओर देखने लगा। मैंने पूछा:

"आप ही का नाम तिखोन है?"

"हाँ।"

"प्योत्र गिरफ़्तार हो गया।"

उसकी भौंहों पर बल पड़ गया। उसने जिज्ञासा की दृष्टि से मेरी आँखों में ताका।

"यह सब क्या कह रहे हो तुम? प्योत्र कौन?"

"लम्बा-लम्बा, पतला-पतला। गिरजाघर के छोटे पादरी जैसा।"

"हाँ तो?"

"बस इतना ही।"

"लेकिन तुम यह सब क्या बक रहे हो? प्योत्र या तुम्हारे छोटे पादरी से मुझको मतलब?"

उसके सवाल करने के ढंग से ही मुझे मालूम हो गया कि वह साधारण मजदूर नहीं है। मैं घर लौटा। गूरी का आदेश सफलतापूर्वक पूरा करने के कारण मैं मन ही मन इतरा रहा

था। "षड्यंत्रकारी" कामों में भाग लेने का यह मेरा पहला मौक़ा था।

गूरी प्लेत्न्योव का इस दल से सम्बन्ध था। कई बार मैंने भी इस गुप्त भेद में शामिल होना चाहा पर उसने टाल दिया।

"अभी, भैया, तुम बहुत छोटे हो। चुपचाप अपनी पढ़ाई करते जाओ...।" यही उसका जवाब हुआ करता था।

इसके बाद ही येव्रेइनोव ने मेरी जानपहचान एक रहस्यमय व्यक्ति से करायी। उस आदमी से मिलाने ले जाने से पहले उसने मुझे इतनी हिदायतें और चेतावनियाँ दी थीं कि मैं भी सोचने लगा कि किसी गहरे रहस्य से साबिक़ा होने जा रहा है। वह पहले मुझे बस्ती के बाहर, आर्स्कोंये पोले में लिवा गया। रास्ते भर वह मुझे समझाता गया कि जिस आदमी से मैं मिलने जा रहा हूँ उसमें बड़ी खबरदारी की ज़रूरत है और किसी से भूल कर भी इसके बारे में एक शब्द न कहना होगा। अंत में उसने मैदान की ओर उंगली से इशारा किया। एक नाटा भूरा आदमी, कुछ दूर पर, उस सुनसान मैदान में अकेला चहलक़दमी कर रहा था। एक बार शंकित दृष्टि से पीछे देखने के बाद उसने फुसफुसा कर कहा:

"वह देखो — वही हैं! चुपचाप उनके पीछे-पीछे चले जाओ। जब वह रुक जायंगे तो कहना, 'मैं आगंतुक हूँ'...।"

रहस्यमय चीज़ों में सदा आकर्षण होता है। लेकिन इस आदमी की हर चीज़ हास्यास्पद मालूम पड़ रही थी। कड़ी धूप में वह बीच मैदान में यों खड़े थे जैसे खेत में भूरी घास का अकेला

डंठल। क़ब्रिस्तान के फाटक के पास वह रुके। मैंने नज़दीक जाकर देखा—एक कम उम्र जवान, छोटा सा मुँह, सूखा सा, और आँखें बेतरह गम्भीर, चिड़ियों की तरह गोल-गोल। उसने स्कूल के विद्यार्थियों की भूरी वरदी पहन रखी थी जिसके पीतल के चमकीले बटन टूट चुके थे और उनकी जगह हड्डियों के काले बटन टाँक दिये गये थे। उसकी भद्दी टोपी में भी एक काला निशान था जहाँ कभी स्कूल के विद्यार्थियों वाला बिल्ला रहा होगा। वह जवानी में ही चुचक गया था, मानो इस चिंता ने उसे खा डाला हो कि बुज़ुर्ग जैसा किस तरह लगूं!

हम दोनों घनी झाड़ियों की आड़ में क़ब्रों के बीच बैठ गये। उसके बोलने में लस नहीं थी—बस काम से काम और मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं आया। पहले उसने स्कूल मास्टरों की तरह सवाल किया कि मैंने अभी तक क्या अध्ययन किया है। इसके बाद बोला कि उसने एक अध्ययन-मंडल संगठित किया है, उसमें मैं आ सकता हूँ। मैं आने को राज़ी हो गया। और तब हम दोनों बिदा हो गये। बड़ी सावधानी से खाली मैदान की ओर ताकते हुए वह एक ओर को चल दिया।

अध्ययन-मंडल के सदस्यों की संख्या कुल चार या पाँच थी। मैं उम्र में सब से छोटा था। अध्ययन का विषय था जॉन स्टुआर्ट मील, चेर्नीशेव्स्की की टीका समेत। इस गूढ़ अध्ययन के लिये शिक्षा की जो पृष्ठभूमि चाहिए उसका मेरे पास पूर्ण अभाव था। हम लोग मिलोव्स्की नामक विद्यार्थी के कमरे में मिला करते थे। वह नार्मल स्कूल में पढ़ता था। बाद में वह कहानी लेखक हो

गया। उसकी कहानियाँ 'येलेओंस्की' के उपनाम से छपा करती थीं। लगभग पाँच कहानीसंग्रह लिखने के बाद उसने अचानक आत्महत्या कर ली। मेरे परिचितों में न जाने कितनों का ऐसा ही अन्त हुआ—उन्होंने स्वेच्छापूर्वक जीवन से बिदाई ले ली।

मिलोव्स्की निःशब्द प्रकृति का आदमी था। बोलने और सोचने दोनों में भीरु। एक गंदे मकान की सब से निचली मंज़िल में उसका घर था। "शरीर और आत्मा के सन्तुलन के लिए" वह लकड़ी के कारीगरों के साथ काम करता था। उसके साथ थोड़ी ही देर बैठने पर मन ऊब जाता। जहाँ तक स्टुआर्ट मील का सवाल है अर्थशास्त्र की उनकी प्रकांड स्थापनाएँ मुझे शीघ्र ही अत्यंत साधारण मालूम पड़ने लगीं। प्रत्यक्ष अनुभव से मैं उन सिद्धान्तों की गहरी जानकारी हासिल कर चुका था—मेरी पीठ के दाग़ों में वे अंकित थे। मेरी समझ ही में नहीं आता था कि केवल यह बताने के लिए कि मजदूर इसलिए मेहनत करता है कि वह खुद नहीं बल्कि दूसरे ही लोग मौज और आराम की ज़िन्दगी बसर करें क्लिष्ट शब्दों से भरी भारी-भरकम किताबें लिखने की क्या ज़रूरत है। मज़दूरी करने वाला हर आदमी इस मोटी सी बात को अच्छी तरह जानता है। दो-तीन घंटे लगातार इस अंधेरे और वायुहीन कमरे में, सरेस की बदबू के बीच बैठे रह कर मैली दीवारों पर लकड़ी के घुनों को चढ़ते देखना मुझे अखर जाता था।

एक दिन हमारे गुरुमहाराज वक़्त पर नहीं आये। यह सोच कर कि आज वह नहीं आयेंगे हम लोगों ने एक अपनी छोटी सी पार्टी

कर डाली। बाज़ार से रोटी, खीरा और एक बोतल वोद्का मंगा ली गयी। इतने ही में खिड़की के पार खाकी पतलून से ढकी उनकी दो टाँगें दिखायी पड़ीं। हम लोगों के वोद्का की बोतल झटपट मेज़ के नीचे छिपाते ही वह चेर्नीशेव्स्की की गुरु गम्भीर टीकाएँ समझाने लगे। और हम लोग जड़वत बैठे टुकर-टुकर उनका मुँह देख रहे थे। बोतल उलट जाने के डर से कोई हिलने-डोलने का नाम भी नहीं ले रहा था। पर बोतल मास्टरसाहब के पैर से लग कर उलट ही गयी। उसकी आवाज़ सुन कर उन्होंने मेज़ के नीचे झाँका। पर एक शब्द नहीं निकला उनके मुँह से। कितना अच्छा होता यदि वह दो-चार गालियाँ दे डालते!

उनकी चुप्पी, बर्फ़ की तरह सर्द चेहरा, आँखों में घोर पीड़ा, हम लोगों को मानो आरे से चीरने लगी। मैंने चुपके से अपने साथियों की ओर ताका। सभी शर्म से गड़े हुए थे। मुझे ऐसा लग रहा था कि गुरु के प्रति मैंने घोर अपराध किया है। और उसके लिए बड़ा अफ़सोस हो रहा था, यद्यपि वोद्का मंगाने की सूझ मेरी नहीं थी।

अध्ययन-मण्डल की बैठकों में मेरा तनिक जी नहीं लगता था। मन हमेशा यही चाहता था कि उठकर तातारों के महल्ले की सैर को चल दूँ। तातार बड़े खुशमिज़ाज और मिलनसार लोग थे। उनका रहन-सहन निराला था—साफ़-सुथरा और इख़लाक़ से भरा। उनकी टूटी-फूटी रूसी और उच्चारण सुन कर हँसी आती थी। शाम को ऊँची मीनारों से मुआज़्ज़िन की अजान शुरू हो जाती और सभी नमाज़ के लिए चल देते। मुझे लगता कि तातारों की ज़िन्दगी

हम लोगों से बिल्कुल भिन्न है—कम से कम उस ज़िन्दगी से, जिसका मुझे परिचय था और जिसमें ख़ुशी नाम की चीज़ मैंने नहीं जानी।

मेरे कानों में वोल्गा की पुकार भी आती थी जिसकी गोदियों पर श्रम के संगीत की महफ़िल जमी रहा करती थी। उस संगीत की याद आज भी मुझे रस-विभोर कर देती है। और उस दिन की स्मृति मेरे मस्तिष्क में ताज़ा है जब पहले-पहल मैंने श्रम के आल्हा की मस्तानी तानों का स्वाद पाया था।

ईरान से आया माल से भरा एक बजरा शहर के नज़दीक ही एक चट्टान से लड़ गया था। पेंदे में ख़राबी आ जाने के कारण उसका तमाम माल उतारना आवश्यक हो गया था। इसका ठीका गोदी-मज़दूरों के एक संघ ने लिया था। संघ ने मुझे भी रख लिया। सितम्बर का महीना था। पानी बरस रहा था और बड़ी तेज़ हवा चल रही थी जिसके कारण बेतरह सर्दी थी। नदी के मटमैले पानी में हवा के तेज़ थपेड़ों के कारण लहरें उफान ले रही थीं। संघ के लगभग पचास मज़दूर एक ख़ाली बजरे के डेक पर सवार हुए। तिरपाल और बोरों के छाजन के नीचे हम सब के सब दुबके बैठे थे। बजरा एक छोटे से अगिन-बोट में बाँध दिया गया और वह हम लोगों को दुर्घटना की जगह पर ले चला। अगिन-बोट वर्षा की झड़ी के बीच चिनगारियों के लाल फौवारे फेंकता बढ़ा चला जा रहा था।

शाम हो चली और धूमिल आकाश में अंधेरा फैल गया। ऐसा लगा कि भीगा मटमैला आसमान नदी से आकर सट गया है। गोदी मज़दूर इस आँधी पानी तथा अपनी ज़िन्दगी को कोस रहे

थे। कड़ी सर्दी तथा पानी से बचाव के लिए वे तिरपाल के नीचे दबे-सिकुड़े जा रहे थे। यह निष्क्रिय निशक्त सी जमात भला क्या बचा सकेगी डूबते बजड़े को? हरगिज़ नहीं।

आधी रात के क़रीब हम लोग चट्टान के पास पहुंचे। हमारा बजरा दुर्घटनाग्रस्त बजरे के साथ बाँध दिया गया। हमारी टोली का नेता बुड्ढा गोदी मज़दूर था—एक नम्बर का ग़ुस्सावर और बिगड़ैल, चेहरे पर चेचक के दाग़, भारी चालाक और बात-बात में गाली बकने वाला। उसकी नाक चील के ठोर की तरह थी। आँखें भी उसी पक्षी की तरह तेज़ और गोल-गोल। अपनी भीगी टोपी को खलवाट खोपड़ी से उतारते हुए वह ज़ोरदार ज़नानी आवाज़ में चिल्लाया:

"प्रार्थना कर लो, जवानो!"

रात के अंधेरे में गोदी-मज़दूरों की वह काली जमात डेक पर प्रार्थना के लिए खड़ी हो गयी। सबों के गले से एक सम्मिलित अनगढ़ स्वर फूट पड़ा। नेता अपनी प्रार्थना सब से पहले समाप्त करके तेज़ आवाज़ में चिल्लाया:

"लालटेन लेकर तैयार हो जाओ, जवानो! लगे ज़ोर!"

और सुस्त, आलसी तथा पानी से तर उस जमात ने अपना "करिश्मा दिखाना" शुरू किया। चिल्लाते, किलकारी मारते, एक दूसरे से मज़ाक़ करते, वे टूट पड़े बजरे के डेक पर और उसके पेट के अन्दर पिल पड़े। फिर क्या था! चावल और मुनक्कों के बोरे तथा चमड़े की गड्डियाँ और कराकुल फ़र हवा में यों उड़ने लगे मानो रूई के गाले हों। तगड़े जवान मन-मन भर के बोरे उठाये इधर से उधर दौड़ने लगे। वे सीटियाँ बजा कर और चुभती

गालियाँ देकर एक दूसरे को ललकार रहे थे। उनकी ताक़त और फुर्ती देखते ही बनती थी। यह विश्वास करना कठिन था कि यह वही जमात है जो थोड़ी देर पहले बजरे में सिकुड़ी-दुबकी बैठी अपनी क़िस्मत को रो रही थी। वर्षा तेज़ हो गई। साथ ही सर्दी भी। हवा के थपेड़ों से हमारी क़मीज़ें बार-बार छाते की तरह उलट जाती थीं और पेट उघाड़ देती थीं। छ टिमटिमाती लालटेनें बरसाती रात के सघन अंधकार से मोरचा ले रही थीं। उनकी धुंधली रोशनी में छाया जैसी सूरतें अपने पैरों की धमक से रात को गुँजातीं इस बजरे से उस बजरे पर दौड़ रही थीं। वे इस तरह काम कर रही थीं— लालायित और क्षुधित—मानो वर्षों से मेहनत का मौक़ा ढूँढ़ रही थीं, मानो कंधे पर माल की मोटी-मोटी गठरियाँ उठाने और हाथोहाथ दो-दो मन के बोरे लौकाने का आनंद प्राप्त करने के लिए वर्षों से आतुर रही हों। मानो बच्चों की मस्त टोली कबड्डी खेलने में तल्लीन हो। मेहनत में जो मद भरी मौज है उसकी तुलना में अधिक मीठी और अधिक प्यारी यदि कोई चीज़ हो सकती है तो वह स्त्री का आलिंगन है।

एक बड़ी दाढ़ी वाला आदमी, वर्षा से तर, पद्दोवका* पहने, यकायक गला फाड़ कर चिल्लाया:

"और ज़ोर, यारों! एक मटका—नहीं, नहीं, दो मटके—मेरी ओर से! काम आज ही हो जाना चाहिये!"

शायद वही उस माल का मालिक या मालिक का आदमी था।

अंधेरे में चारों ओर से कई आवाजें आयीं:

---

* पद्दोवका—पुरुष के लिए ऊपर का पहनावा।

"नहीं, नहीं। तीन झटके!"

"अच्छा तीन ही सही। काम आज हो जाना चाहिये!"

और श्रम का दरिया दूने जोश से मौजें मारने लगा।

मैं भी पागलों की तरह बोरों को घसीटता और लौकाता जा रहा था। एक बोरा लौकाने के बाद दौड़ कर दूसरे के लिए पहुँच जाता। ऐसा लग रहा था कि नाच की महफ़िल जमी है—वेगवान, तूफ़ानी नाच, दरिया के भँवर की तरह—और सभी उन्मादग्रस्त होकर उसमें झूम रहे हैं। मुझे लगा कि मेहनत की यह मस्त महफ़िल इसी तरह महीनों, वर्षों जारी रह सकती है; अगर यह मंडली शहर के घंटाघरों और मीनारों में हाथ लगा दे तो बात की बात में पूरे शहर को उठा कर जहाँ चाहे पहुँचा दे सकती है।

उस रात हमने एक नवीन आनन्द का अनुभव किया, ऐसा आनन्द जो मेरे लिए सर्वथा अपूर्व था। मेरे हृदय में यह उत्कट अभिलाषा जाग उठी कि अपना सारा जीवन श्रम के इसी आनंदोन्माद पर उत्सर्ग कर दूँ। नीचे दरिया की लहरों का उमगना जारी था। डेक के ऊपर अब भी मूसलाधार पानी पड़ रहा था; हवा चिंघाड़ती हुई नदी की छाती पर बह रही थी। और भोर का धुंधलका प्रकट हो चुका था। पर भीगे अधनंगे मज़दूरों की वह टोली अब भी बोरे लेकर इधर से उधर दौड़ रही थी—अथक और अजेय—हँसती, बोलती, चिल्लाती और शोर मचाती। सहसा बादलों की मटमैली फूही तेज़ हवा का झोंका खा कर फट गयी और सूर्य-किरण का एक सुनहला शहतीर नीले आकाश में फैल गया। मस्त भालुओं की टोली बड़े ज़ोर से जयजयकार कर उठी। भीगे केश और दाढ़ियों के

फ़्रेम में जड़े मुस्कराते चेहरे एक साथ आकाश की ओर उठ गये। मेरे मन में आया कि दौड़ कर काम में प्रवीण एवं मग्न इन दो पैर के जानवरों को छाती से लगा लूँ।

यह ऐसी शक्ति थी — दुर्दम और अजेय — जिसके आगे कोई चीज़ नहीं टिक सकती। वह चाहे तो रातोरात धरती पर आलीशान महल और वीरान में नये शहर खड़े कर दे जैसा जादू की कहानियों में हुआ करता है। बालरवि की सुनहली रश्मियाँ दो-एक क्षण मुग्ध होकर मानव-श्रम का वह अपूर्व नाटक देखती रहीं, फिर विलीन हो गयीं — बादलों की काली फ़ौज ने उन्हें निगल लिया जैसे छोटा बालक समुद्र की लहरों में लुप्त हो जाय। वर्षा और तेज़ हो गयी।

किसी ने चिल्लाकर कहा: "अब बस!"

पर फ़ौरन ही विक्षुब्ध आवाज़ आयी:

"बस करने को कौन कहता है!"

दिन के दो बजे तक काम चलता रहा। जब तक एक-एक बोरा बजरे से उतर नहीं गया कड़ी वर्षा और सर्द हवा में अधनंगे लोग अथक और अविरल, काम करते रहे। मानव श्रम की अनोखी शक्ति और अकूत भण्डार के आगे मैंने माथा टेक दिया।

काम ख़तम होते ही सभी अग्नि-बोट में जाकर सो रहे — जैसे नशे में चूर आदमी सोता है। कज़ान पहुँचने पर हमारी टोली मटमैले पानी के सोते की तरह तीर की रेती में उतर कर विलीन हो गयी। हम सराय में चले गये, तीन मटका शराब के साथ न्याय करने।

उचक्का बाश्किन मेरे पास आकर बोला:

"यह क्या गत बना आये हो अपनी?"

मैं आनंदविभोर था। पर मेरी बात सुन कर, निश्वास छोड़ते हुए, तिरस्कार के स्वर में वह बोला:

"रह गये निरे बुद्धू तुम भी! वज्रमूर्ख।"

और गीत गुनगुनाता वह मेज़ों की उस पाँत में ग़ायब हो गया जहाँ गोदी-मज़दूरों की मंडली आनंदपूर्वक खाना-पीना कर रही थी और खूब शोर मचा रही थी। एक कोने में कोई सप्तम स्वर में अश्लील गीत गाने लगा:

"आधी रात, घनी अंधियारी बाग़ में छिपके निकली प्यारी...
बड़ा मज़ा आया री!"

लगभग दस कंठों से एक साथ, कर्ण रंध्रों को फाड़ती, गीत की आगे की कड़ियाँ फूट पड़ीं और सभी मेज़ पर ताल देने लगे:

"पहरेदार बड़ा बेचारा देखा उसने नया नज़ारा..."

सभी हो-हो कर हँस पड़े। सराय का हॉल सीटियों की टनकदार आवाज़ से गूँज उठा। अश्लील आवाज़ाकशी से दीवारें हिलने लगीं। कदाचित ही ऐसी बातें कही हुई हों।

मुझे याद नहीं है किसने मेरा परिचय आंद्री देरेनकोव से कराया। उसकी एक छोटी सी पंसारी की दुकान थी जो ग़रीबों के मुहल्ले में एक संकरी गली के छोर पर पड़ती थी। उसके ठीक पीछे एक नाला था जिसे शहर से कूड़ाकर्कट लाकर पाट दिया गया था।

देरेनकोव को सूरत से ही भलमनसाहत और नेकमिज़ाजी टपकती थी। श्वेत दाढ़ी के ऊपर मेधावी आँखें थीं। उसका हाथ लुंज हो

गया था। ज़ब्त और ग़ैरक़ानूनी किताबों की कज़ान में उसके पास सर्वश्रेष्ठ लाइब्रेरी थी। शहर भर के स्कूलों और कालेजों के विद्यार्थी और क्रान्तिकारी विचारों के अन्य लोग उन पुस्तकों को पढ़ने के लिए उसके यहाँ एकत्र हुआ करते थे।

स्कोपेत्स* मत के एक महाजन के बड़े मकान के नीचे हिस्से में देरेनकोव की दूकान थी। सामने दूकान थी, पीछे एक बड़ा कमरा जिसमें केवल एक खिड़की थी जो आंगन की ओर खुलती थी। उसमें हमेशा अंधेरा रहता था। इस कमरे से होकर रसोईघर जाने का रास्ता था, बिल्कुल नीचा और तंग। रसोईघर के उस पार, घर के देरेनकोव वाले भाग को मुख्य मकान से मिलाने वाला एक संकरा रास्ता था। उसी में एक छोटा सा भंडारघर बना हुआ था जिसके अन्दर वह 'हानिकारक' लाइब्रेरी थी। बहुत सी किताबें तो मोटी-मोटी कापियों में हाथ से नक़ल कर ली गयी थीं जैसे लावरोव की "ऐतिहासिक चिट्ठियाँ", चेर्नीशेव्स्की की "क्या करें?", पिसारेव के कई लेख, "क्षुधा-रानी", "जटिल प्रक्रियाएँ"। हस्तलिपियाँ निरन्तर इस्तेमाल के कारण जर्जर हो चुकी थीं।

पहले दिन जब मैं दूकान में गया तो देरेनकोव गाहकों से बात करने में लगा हुआ था। उसने सिर हिला कर अंदर वाले कमरे में जाने का इशारा किया। आधे अंधेरे कमरे में घुसने के

---

*स्कोपेत्स एक धार्मिक पंथ है। इसके मानने वालों को बधिया करने की भी प्रथा है — अ०

बाद मैंने देखा: एक नाटा बूढ़ा आदमी पूजा वाले कोने में झुक कर बड़ी भक्तिपूर्वक ईश्वर की प्रार्थना कर रहा है। उसे देख कर मुझे सारोव्स्की के संत सेराफ़िम की एक तसवीर याद आ गयी। उस आदमी का वहाँ पूजा करना मुझे असंगत प्रतीत हुआ।

मैंने सुन रहा था कि देरेनकोव "नारोद्निक"* है। मेरी धारणा के अनुसार नारोद्निक क्रांतिकारी थे और क्रांतिकारियों को ईश्वर में विश्वास नहीं करना चाहिये। उस ईश्वरभक्त बुड्ढे को देख कर मुझे विस्मय हुआ।

पूजा समाप्त करने के बाद उसने अपने श्वेत केशों तथा दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए मेरी ओर घूरा और फिर बोला:

"मैं आंद्री का पिता हूँ। तुम कौन हो? अच्छा। मैंने पहले समझा था कि छद्मवेषधारी कोई विद्यार्थी है।"

मैंने सवाल किया: "छद्मवेष क्यों?"

"यही तो बात है", बुड्ढा शान्त स्वर में बोला। "आख़िरकार आदमी कितना भी छद्मवेष धारण करे ईश्वर तो उसे पहचान ही लेता है।"

वह रसोईघर में घुस कर ग़ायब हो गया और मैं खिड़की के पास बैठ कर विचारों में डूब गया। हठात् किसी की आवाज़ सुनायी पड़ी:

"अच्छा, यही है वह!"

---

* नारोद्निक, नारोद्निचेस्त्वो — रूस के क्रांतिकारी अन्दोलन में मध्यवर्गीय लहर।

4*

मैंने मुड़ कर देखा: सिर से पैर तक श्वेत परिधान धारण किये एक लड़की रसोईघर के दरवाज़े से टिकी खड़ी थी। उसके सुन्दर केश छंटे हुए थे और बालकों जैसे उसके चेहरे पर ज़र्दी छायी हुई थी। उसकी गहरी नीली आँखों में मुस्कराहट थी। वह बाज़ारू चित्रों की अप्सराओं जैसी लग रही थी। वह बोली:

"इतने घबरा कर क्या ताक रहे हो? मेरा चेहरा डरावना लग रहा है क्या?" उसकी आवाज़ क्षीण थी, कम्पित। दीवार के सहारे वह धीरे-धीरे मेरी ओर बढ़ी मानो पैरों तले ठोस ज़मीन नहीं, झूलती रस्सी है। चलने में कठिनाई के कारण वह और भी किसी दूसरी दुनिया की जीव मालूम पड़ रही थी। उसका पूरा शरीर डौल रहा था मानो पाँव में काँटे चुभ रहे हों, अथवा दीवार उसके बच्चों जैसे हाथों में डंक मार रही हो। उसकी उँगलियाँ आश्चर्यजनक रूप से निश्चल थीं।

मैं अवाक् खड़ा था, विचित्र असमंजस में पड़ा और उसकी अवस्था पर तरस से भरा हुआ। हर चीज़ ही असाधारण थी इस कमरे के धुंधलके में!

लड़की सम्भल कर इस तरह एक कुर्सी के ऊपर बैठ गयी मानो बीच ही में कहीं उड़ न जाय वह। अनूठी सरलता के साथ वह मुझे समझाने लगी—सख्त बीमारी से हाल ही में उठी है वह, तीन महीना खाट थामने के बाद; यही चार-पाँच दिनों से उठने-बैठने लगी है वह।

"एक प्रकार का स्नायु रोग है", उसने मुस्कराते हुए कहा।

मुझे लगा कि उसकी विलक्षणता का कोई दूसरा कारण होता

तो अच्छा था। विचित्र लड़की और विचित्र कमरा—जिसकी हर वस्तु मानों विस्मय विमुग्ध होकर दीवार से सटी जा रही थी। पूजा के कोने में जलता दीप अस्वाभाविक प्रकाश उगल रहा था। ताम्बे की साँकल, जिससे दीप लटक रहा था, कमरे के बीच रखे भोजन की बड़ी मेज पर बिछी उजली चादर के ऊपर अपनी काँपती साया फेंक रही थी।

बच्चों सरीखी पतली आवाज़ में वह बोली: "मैं तुम्हारे बारे में बहुत सुन चुकी हूँ—अतः मुझे तुम्हें देखने का बड़ा कुतूहल था।"

लड़की दृष्टि गड़ा कर मुझे देख रही थी और उसके देखने से मैं गड़ा जा रहा था—ऐसा लग रहा था मानो बरछी की अनी मेरे शरीर में घुसी जा रही है। उन आँखों की गहरी नीलिमा में कोई चीज़ थी जिसके आगे मैं पारदर्शी हो गया था। बातें भी करूँ ऐसी लड़की से तो क्या? और कैसे? अतः मैं खड़ा रहा—ठगा सा—दृष्टि को दीवारों पर लटकती तसवीरों के ऊपर—हेरज़ेन, डारविन, गैरिबाल्डी के ऊपर—टाँगे।

एक लड़का जो मेरी ही उम्र का होगा—पटसन जैसे बाल और शोख़ आँखें—तेज़ी से दूकान की ओर से आया और रसोई में जाकर ग़ायब हो गया। कमरे से गुज़रते हुए उसने लड़कों की टनकदार आवाज़ में कहा:

"मारिया! तुम यहाँ क्या कर रही हो?"

लड़की ने मुझे बताया: "यह मेरा छोटा भाई है, अलेक्सी। मेरी मिडवाइफ़ की पढ़ाई चल रही थी, इसी बीच बीमार हो गयी।" फिर बोली: "तुम कुछ कहते क्यों नहीं? लजा रहे हो क्या?"

आंद्री देरेनकोव भी कमरे में आ पहुँचा। उसका लुँज हाथ बग़ल में था। अपनी बहन के रेशमी केशों को हाथ में लेकर वह उन्हें प्यार से सुलझाने लगा। मुझसे उसने पूछा कि मैं किस तरह का काम चाहता हूँ।

इतने में एक पतली-दुवली लड़की जिसके केश आग की लपटों की तरह लाल और आँखें सब्ज़ रंग की थीं, कमरे में आयी। उसने मेरी ओर इस तरह ताका मानो खा जायगी और श्वेतवसना बालिका को हाथ पकड़ कर बाहर ले गयी।

"चल बहुत हुआ मारिया!" वह बोली।

मारिया नाम उस बालिका के लिए बिल्कुल ही अनुपयुक्त था। कोमल तन्वंगी के लिए मारिया नाम! बिल्कुल भोंड़ा!

मैं भी वहाँ से विदा हो गया। पर दो दिन बाद एक शाम को मैं फिर उसी कमरे में मौजूद था—एक विचित्र कुतूहल एवं मौन जिज्ञासा से भरा हुआ। मैं जानना चाहता था इस घर में रहने वालों के रहस्यमय जीवन को।

कमरे के एक कोने में वही बूढ़ा बैठा हुआ था—स्तेपान इवानोविच। उसके श्वेत केश लगभग पारदर्शी मालूम होते थे और चेहरे की विनम्र शोभा देख कर हृदय आप-ही आप नत हो जाता था। उसके चेहरे पर मीठी मुसकान थी और श्यामल ओंठ यों हिल रहे थे मानो शान्ति और नीरवता की याचना कर रहे हों।

उसकी आशंका देखते ही बनती थी मानो किसी आसन्न खतरे की अपेक्षा कर रहा हो। यह उसे देखने से स्पष्ट हो रहा था।

लुँज आंद्री, भूरी जाकिट पहने, कमरे में आकर टहलने लगा। जाकिट के सामने का हिस्सा तेल और आटे से ऐसा कड़ा हो गया था जैसे कलफ किया हुआ हो। उसके चेहरे का सीधापन देखते ही बनता था—खीस निपोड़े, मानो शरारत करते हुए पकड़ा गया कोई बालक अभी-अभी क्षमा पाकर आया हो। छोटा भाई अलेक्सी दूकान के काम में उसकी मदद करता था। वह काहिल और रूखे स्वभाव का था। तीसरा भाई इवान नार्मल स्कूल का छात्र था और होस्टल में रहता था। वह केवल छुट्टियों में घर आता था। नाटे क़द का आदमी, इवान सदा साफ़-सफ़ाक़ कपड़े पहने रहता। अपने बालों को भी वह सावधानी से संवार कर रखता। देखने से वह किसी अधवयस मुछमुंडा किरानी जैसा लगता था। बीमार मारिया कोठे पर रहती थी। वह बहुत कम ही नीचे आती थी। पर जब वह आती तो मेरी शान्ति भंग हो जाती—ऐसा लगने लगता मानो रस्सियों में जकड़ कर किसी ने मुझे उसके सामने डाल दिया हो, बिल्कुल बेबस।

देरेनकोव की गृहस्थी की मैनेजर एक लम्बी, पतली-दुबली औरत थी जिसका चेहरा लकड़ी की गुड़ियों की तरह भावहीन था। उसकी आँखों में बूढ़ी भिक्षुणी की सी कठोरता थी। वह स्कोपेत्स पंथी मकान मालिक के यहाँ रहा करती थी। गृहस्थी के कामों में उसकी लड़की नास्त्या उसकी मदद किया करती थी। नास्त्या के बाल रक्त वर्ण और नाक नुकीली थी। उसकी सब्ज़ आँखें जिस वक़्त किसी आदमी को घूरना शुरू करतीं उसके नथुने काँपने लगते थे।

पर देरेनकोव की गृहस्थी के वास्तविक मालिक विद्यार्थी लोग थे जिनमें कुछ विश्वविद्यालय, कुछ धर्म-शिक्षणसंस्था और कुछ पशु-चिकित्सालय में पढ़ते थे। प्रायः ही उनकी एक पूरी टोली इस घर में जमी रहा करती थी। सारा घर उनके शोरगुल और बहस-मुबाहिसों से गूँजा करता था। उनकी अनन्त चर्चाओं का विषय था रूस की जनता की अवस्था और देश का भविष्य। अखबारों में प्रकाशित लेख, नयी किताबें या नगर और विश्वविद्यालय की घटनाओं से उत्तेजित और आन्दोलित होकर वे कज़ान के हर हिस्से से आकर शाम को इस दूकान में इकट्ठा होते थे। कमरा उनके गरम वाद-विवाद से गूँज उठता। अथवा किसी कोने में बैठ कर वे आपस में फुसफुसाना आरम्भ कर देते। वे मोटी-मोटी किताबें काँख तले दबाये आते और अक्सर तर्क के दौरान में एक दूसरे से गरज-गरज कर बातें करते हुए, उत्तेजित उँगलियों से, किताब खोल कर नव उद्घाटित सत्यों के उद्धरण पेश करते।

कहने की जरूरत नहीं कि उनके इन बहस-मुबाहिसों में मेरे पल्ले मुश्किल ही से कुछ पड़ता। अटपटे शब्दों के वाक्-प्रवाह में उनका तर्क यों डूब जाता जैसे किसी ग़रीब परिवार में पकने वाले पतले शोरबे में मांस के इक्के-दुक्के टुकड़े। बाज़ विद्यार्थी मुझे पोवोल्भये के जीर्ण-शीर्ण धर्मशास्त्रियों की याद दिलाते थे। पर एक चीज़ मैं अवश्य महसूस करता था—ये लोग हमारे जीवन को बदलना चाहते हैं, उसे बेहतर बनाना चाहते हैं। अतः, प्रवीण शब्द-जाल और वाक्-प्रवाह में उनके उद्देश्य की सचाई यद्यपि ऊब-डूब हो जाती—यहाँ तक कि कई घूँट जल उसके पेट में चला

जाता—फिर भी वह डूबती या विलीन नहीं होती थी। जिन समस्याओं को वे हल करना चाहते थे उनकी जानकारी मुझे अवश्य हो जाती थी अतः उनके प्रयास की सफलता मेरे लिए गहरी व्यक्तिगत दिलचस्पी का विषय बन जाती थी। कभी-कभी मेरे ही अव्यक्त विचार उन तर्कों में मुखरित होते। मैं उन लोगों के प्रति असीम श्रद्धाभावना से भर जाता जैसे मुक्ति का आश्वासन देने वाले के प्रति कारागार में पड़ा क़ैदी।

और वे मुझे यों देखते जैसे बढ़ई हाथ की लकड़ी को देखता है, ऐसी लकड़ी को जिसके विषय में उसका ख़याल है कि इससे कोई ऐसी वस्तु गढ़ी जा सकती है जो सर्वथा साधारण नहीं होगी।

विद्यार्थी-बन्धु नये साथियों से मेरा परिचय लेते हुए कहते थे: "यह साहब हैं तो 'देशी' पर छिपे जौहर हैं।" उनके बोलने में वही गर्व का भाव होता जो नाली में ताम्बे का टुकड़ा पड़ा पा जाने पर खानाबदोश लड़के अपने साथी को दिखाते वक़्त महसूस करते हैं। "देशी जौहर" या "देशी जनता का पूत" कहा जाना मुझे अच्छा नहीं लगता था। मैं "जनता का पूत" नहीं वरन जीवन का सौतेला पूत था। हमारे नये मित्र मुझे "देशी" समझते और मनचाहे ढंग से मेरा मानसिक विकास करना अपना अधिकार मानते थे। यह मुझे अक्सर ज़्यादती मालूम होती थी। मसलन, एक दिन किसी किताब की दूकान पर मैंने "सूत्र और भाष्य" नामक एक पुस्तक देखी। इन शब्दों का अर्थ मुझे ज्ञात नहीं था, पर इस किताब को पढ़ डालने की मेरे मन में तीव्र जिज्ञासा हुई। धार्मिक शिक्षणसंस्था के एक विद्यार्थी से मैंने पढ़ने के लिए वह पुस्तक माँगी।

"अच्छा तो, अब आप 'सूत्र और भाष्य' पढ़ेंगे!" उस भावी आर्चबिशप ने व्यंग से जवाब दिया। इस युवक के केश हबशियों जैसे घुँघराले, ओंठ मोटे और दांत मोतियों की पाँत की तरह सफ़ेद थे। वह मुझे उपदेश देते हुए बोला: "इन पचड़ों में नहीं पड़ा करते, भाईजान। अभी जो आपको दिया जाता है बस उतना ही पढ़ो। बाक़ी की फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं।"

गुरुजी की उद्दण्ड उक्ति मेरे कलेजे में चुभ गयी। कुछ गोदियों की कमाई से और कुछ आंद्री देरेनकोव से उधार लेकर मैंने किताब ख़रीद ही डाली। वह मेरी पहली गम्भीर पुस्तक थी और आज तक मेरे पास है।

मेरे विद्यार्थी-वंधु मेरे साथ पूरी गुरुवत सख्ती बरतते थे। एक बार मैं "समाज विज्ञान का क-ख-ग" नामक पुस्तक पढ़ रहा था। मुझे लगा कि लेखक ने सभ्यता के विकास में कृषि-क़बीलों की भूमिका को बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया है और साहसिक शिकारी-क़बीलों के महत्व को अकारण ही घटा कर आँकने की कोशिश की है। शिक्षक महोदय को मैंने अपनी यह आलोचना सुनायी। यह सज्जन भाषाशास्त्र के विद्यार्थी थे। मेरी बात सुन कर उन्होंने "आलोचना का अधिकार" नामक गूढ़ विषय पर मुझे एक घंटे तक लेक्चर पिलाया। अपने ज़नाने चेहरे पर गुरुता का गम्भीर भाव लाने का लगातार कठिन प्रयत्न करते हुए उन्होंने कहा:

"आलोचना करने का अधिकार प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि आदमी स्वयं किसी निश्चित सत्य में विश्वास करे। है आपके पास कोई सत्य जिसमें आप विश्वास करते हैं?"

हमारे इन गुरु महाराज को पढ़ने का बेहद शौक़ था—उनके हाथ में सदा कोई न कोई किताब रहा करती थी। यहाँ तक कि सड़क पर चलते समय भी किताब पढ़ते रहते थे। उनकी हालत यह थी कि पटरी पर चले जा रहे हैं, मुँह के सामने खुली किताब है और आने-जाने वालों से टकरा रहे हैं। वह एक गन्दे अन्धेरे कमरे में रहते थे। एक बार टाइफ़स का शिकार होकर वह वहीं पड़े हुए थे और बेहोशी की हालत में बक रहे थे:

"नैतिकता में विचार-स्वातंत्र्य एवं दबाव का सुन्दर समन्वय होना आवश्यक है! सुन्दर समन्वय! सु-न्द-र स-म-न्व-य...।"

हृदय का अत्यन्त कोमल, पर्याप्त भोजन न मिलने के कारण शरीर से कमज़ोर और शाश्वत सत्य की खोज में निरन्तर लीन रहने की वजह से जीवन के सभी आनन्दों से वंचित, इस व्यक्ति के लिए रस का एकमात्र स्रोत थीं किताबें। उसे एक ही धुन थी—किस तरह दो शक्तिशाली मस्तिष्कों का समन्वय किया जाय। जब उसे ऐसा ज्ञात होता कि दोनों के विरोधों का समन्वय उसने प्राप्त कर लिया है तो उसकी काली प्यारी आँखों में बालोचित प्रसन्नता झलक उठती। कज़ान के परिचय के लगभग दस वर्ष बाद मेरी मुलाक़ात उससे खारकोव में हुई। पाँच साल केम में निर्वासित रहने के बाद उसने खारकोव के विश्वविद्यालय में नाम लिखाया था। मुझे लगा इस शख्स की ज़िन्दगी असंख्य विरोधी विचारों के बियाबान में खो गयी है। यक्ष्मा ने उसे धर दबोचा था, मुँह से खून आ रहा था, पर आजकल उसे मार्क्स और नित्शे का समन्वय करने की धुन सवार थी। अपनी ठंढी, पसीने से भरी हथेलियों में मेरा हाथ लेकर, हाँफता हुआ वह बोला:

"बिना समन्वय भी भला जीवन है—असम्भव!"

उसकी एक दिन अचानक मृत्यु हो गयी। वह ट्राम में विश्वविद्यालय जा रहा था—रास्ते में ही खतम।

तर्क और बुद्धि की वेदी पर बलि हो जाने वाले ऐसे न जाने कितने शहीद मुझे इस जीवन में मिले हैं। उनकी याद मेरे लिए पवित्र है।

इसी तरह के लगभग बीस आदमी देरेनकोव के अड्डे पर जमा हुआ करते थे। उनमें एक जापानी भी था। वह धार्मिकशिक्षण संस्था में पढ़ता था—नाम था पंतिलिमोन सातो। इन मजलिसों में कभी-कभी विशालकाय, चौड़ी छाती वाला एक दढ़ियल व्यक्ति शरीक हुआ करता था जिसने अपना सिर तातारों की तरह मुड़ा रखा था। उसका लम्बा भूरा कज़कीन,* जिसके सभी बटन वह बन्द रखता था, ऐसा लगता था मानो शरीर पर मढ़ा हुआ हो। आम तौर से वह अकेला ही एक कोने में बैठता। वहीं से अपने नाटे पाइप द्वारा धुएँ के कश खींचता हुआ वह कमरे में बैठे अन्य लोगों को विचारपूर्ण मुद्रा से निहारा करता था। उसकी चिन्तनशील दृष्टि अक्सर मेरे चेहरे पर आकर टिक जाती थी। मुझे लगता कि वह मुझे आँखों ही आँखों में तौल रहा है तथा उसके मनस्वी मस्तिष्क में मेरा परीक्षण चल रहा है। न जाने क्यों इस आदमी के आगे मैं सदा सकुच जाता था। उसके मौन से मुझे हैरानी होती थी। अन्य लोग थे कि ज़ोर-ज़ोर से बातें करते थे।

---

* कज़कीन—लम्बा अंगरखा जिसमें कमर पर तहें पड़ी होती हैं और सामने घुंडियां।

उनकी बक-बक बन्द ही नहीं होती थी और जो भी वे कहते ताल ठोंक कर। और जितने ही ज़ोर से और निश्चयात्मकता के साथ बात कही जाती मुझे वह उतनी ही अधिक पसन्द आती थी। अभी मुझे यह तजुरबा हासिल करना बाक़ी था कि तेज़ तर्रार शब्दों के परदे में अक्सर तुच्छ और आडंबरपूर्ण विचार छिपे रहते हैं। केवल यह दाढ़ी वाला विशालकाय व्यक्ति था कि इस मण्डली में भी चुप ही बैठा रहता।

उसे लोग "खोखोल" कह कर पुकारते थे। मेरा ख़याल है कि आंद्री को छोड़ उसका असली नाम कोई नहीं जानता था। शीघ्र ही मुझे पता चला कि वह दस साल साकुत्सक प्रदेश में निर्वासित जीवन बिताने के बाद अभी हाल ही में लौटा है। इस सूचना से उसमें मेरी दिलचस्पी बढ़ गयी। पर अभी तक उससे परिचय करने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। यह नहीं कह सकता कि मैं डरपोक या झेंपू प्रकृति का था। बल्कि, मैं स्वभाव से अत्यन्त जिज्ञासु था। एक अनंत जिज्ञासु था। एक अनंत अपूर्ण जिज्ञासा मुझे निरंतर कुरेदा करती थी। मैं सब कुछ जान लेने को उतावला और बेचैन रहता। और यह उतावली जीवन में मेरा भारी अवगुण बन गयी है; क्योंकि उसके कारण जम कर किसी एक चीज़ का अध्ययन करना मेरे लिए कठिन हो गया है।

ये लोग जब जनता की बातें करने लगते तो मुझे विस्मय होता था, क्योंकि इस विषय पर मेरे अपने निष्कर्ष भिन्न थे। उनकी बातों से अपने निष्कर्षों के प्रति मेरी आस्था डोलने लगती, फिर भी मैं महसूस करता कि इस विषय पर उनके विचार मुझसे भिन्न रहेंगे।

उनके लिए जनता बुद्धि, सहृदयता एवं आध्यात्मिक सौन्दर्य का मूर्त रूप थी, देवताओं से कुछ ही नीचे—सत्यम, शिवम्, सुन्दरम का साकार स्वरूप। पर जनता के सम्बन्ध में मेरा दृष्टिकोण भिन्न था। जनता की चर्चा आने पर मेरे सामने बढ़इयों, गोदी-मज़दूरों और राज-मिस्त्रियों के चित्र सामने आ जाते जिनसे मेरा साक्षात् हो चुका था—याकोव, ओसिप, ग्रिगोरी जैसे लोग। लेकिन ये लोग जनता की कल्पना किसी अभूत समष्टि के रूप में करते थे। वक्तागण इस अमूर्त "जनता" के विषय में बड़े संभ्रम के साथ बात करते, मानो वह देवताओं की कोई कोटि हो और वे स्वयं हों उसकी इच्छाशक्ति के असहाय आश्रित। किन्तु मुझे लगता कि जो सौन्दर्य है, बुद्धि है और क्षमता है वह तो इन्हीं वक्ताओं में केन्द्रीभूत है। उन्हीं के अन्दर वह लौ है जो जीवन की करुणामय सत्ता का समादर करती है और मानवता के प्रति प्रेम के आधार पर जीवन का नवनिर्माण करना चाहती है।

मैं जिस जनता के बीच रह चुका था उसके अन्दर प्रेम की यह भावना कहाँ दृष्टिगोचर होती थी; वह तो बिल्कुल साधारण प्राणी थे—तुच्छ। पर यहाँ सबों के हर शब्द में, हर निगाह में, प्रेम की दीपशिखा जला करती।

जनता को पूजने वालों की इस जमात की बातें मेरे हृदय को वर्षा की शीतल बूँदों की तरह प्लावित कर देती थीं। देहाती जीवन की तथाकथित सौम्यता एवं किसानों के शहादत भरे जीवन की भूरि-भूरि प्रशंसा करने वाली किताबों ने मेरी भावना को पुष्ट किया। मेरे अन्दर यह नवीन ज्ञान उदित होने लगा कि मानवमात्र

के प्रति प्रगाढ़ प्रेम से ही जीवन के वास्तविक महत्व को समझने की प्रेरणा और शक्ति प्राप्त हो सकती है। मैंने अपने बारे में सोचना बन्द कर दिया और दूसरों की बातें अधिक ध्यानपूर्वक सुनने लगा।

सरल हृदय देरेनकोव ने एक दिन मुझे बताया कि उसकी दूकान से जो थोड़ी बहुत आमदनी होती है वह सब की सब "जनता का कल्याण—सर्वोपरि" के सिद्धान्त के मानने वालों की सहायता में अर्पित हो जाती है। उस मण्डली में उसका व्यवहार कुछ ऐसा ही होता जैसा आर्चबिशप द्वारा प्रार्थना के वक़्त उनके प्रति सच्चे धर्मभीरु छोटे पादरी का हुआ करता है। किताबी कीड़ों की विद्वत्ता के प्रति उसे अन्ध श्रद्धा थी। बग़ल में अपने लुँज हाथ को घुसाए, मुख पर आनंदपूर्ण मुस्कान लिए, अपनी रेशम जैसी मुलायम दाढ़ी को हिला कर वह मुझसे कहता:

"सुन्दर! कितना सुन्दर? क्यों, है न सुन्दर?"

जब पशु-चिकित्सा विज्ञान का विद्यार्थी लावरोव—जिसकी आवाज़ बत्तखों जैसी थी—नारोद्‌निकों के विरुद्ध अपना जिहाद आरम्भ कर देता था उस वक़्त देरेनकोव की हालत ऐसी हो जाती जैसे भक्त को जबरन कान से भगवान की निन्दा सुननी पड़ रही हो। आँखें नीची करके धीमे स्वर में वह कह उठता:

"देखो तो ज़रा, कैसी दुष्टतापूर्वक बातें कर रहा है!"

नारोद्‌निकों के प्रति देरेनकोव का दृष्टिकोण वैसा ही था जैसा मेरा। पर विद्यार्थीगण उसके साथ जो व्यवहार करते थे वह मुझे अशिष्ट और उदण्डतापूर्ण मालूम होता था, वैसा जैसा रईसज़ादे

नौकरों से किया करते हैं। स्वयं देरेनकोव की ऐसी भावना न थी। अक्सर मित्र-मण्डली के बिदा हो जाने के बाद वह मुझसे रात को वहीं ठहर जाने का अनुरोध करता था। हम दोनों मिल कर कमरे के अस्तव्यस्त सामानों को करीने से रख देते। इसके बाद फ़र्श पर नमदे बिछा कर हम लेट जाते और फुसफुसा कर बातचीत शुरू कर देते। पूजा के कोने में रखे दीपक के शीर्ण प्रकाश के अतिरिक्त कमरे में अंधकार छाया रहता और हम लोग बड़ी रात गये तक बातचीत करते रहते। देरेनकोव का सरल विश्वास अडिग था। वह विभोर होकर कहता:

"समय पाकर इस मत को मानने वालों की संख्या हज़ारों-हज़ार हो जाएगी। पूरे रूस के अंदर हर प्रमुख पद के ऊपर इन्हीं लोगों का अधिकार हो जाएगा और तब हम बात की बात में जीवन का पुनर्निर्माण कर डालेंगे!"

देरेनकोव उम्र में हमसे कोई दस साल बड़ा होगा। मैं स्पष्ट देखता था कि लालकेशी नास्त्या पर वह मोहित था। नास्त्या की आँखों में शोखी थी। वह उससे नज़र नहीं मिलाता था और दूसरों की मौजूदगी में उसके साथ नौकरानी के प्रति मालिक का सा रूखा एवं आदेशपूर्ण व्यवहार करता था। पर पीठ फिरते ही उसकी लालसापूर्ण दृष्टि उसके ऊपर गड़ जाती थी। अकेले में सामना होने पर वह संकुचित हो जाता और झेंप कर उससे बातें करता था।

उसकी छोटी बहन भी कमरे के कोने में बैठी विस्फारित नयनों से वाक् वाणों का छूटना देखा करती थी। ध्यान को केंद्रित रखने के प्रयास में उसके पतले ओठ बच्चों की तरह भिंच जाते।

कभी-कभी जब असाधारण रूप से तीखे वाण लगते तो उसके मुँह से चीख निकल जाती मानो किसी ने अचानक बर्फ़ जैसा ठंढा पानी ऊपर डाल दिया हो। उस मण्डली में ललछंहू केश वाला एक विद्यार्थी था जो डाक्टरी पढ़ रहा था। वह ठीक उसी कोने में फूले हुए मुर्ग़ की तरह चहलक़दमी किया करता था जिसमें वह बैठती थी। उससे बातें करते समय उसका स्वर रहस्यमय ढंग से धीमा हो जाता और भौंहें बाँकी हो जातीं। मुझे ये चीजें अत्यन्त दिलचस्प मालूम होतीं।

लेकिन पतझड़ के दिन तेज़ी से आ रहे थे। बिना पक्की रोज़ी का कोई सिलसिला किए काम चलना असम्भव प्रतीत हो रहा था। नयी संगत में फंसने के कारण काम-धंधे की ओर से मेरा ध्यान बंट गया था और आमदनी दिनोंदिन घटती जा रही थी। अब रोटी के लिए ज्यादातर दूसरों पर निर्भर रहने लगा था। पर दूसरों की रोटी सदा कड़वी होती है। अत: जाड़े में अपने लिए कोई "जगह" ढूँढ़ निकालना अत्यंत आवश्यक हो गया। आख़िर वासिली सेम्योनोव के नमकीन बिसकुट बनाने के कारखाने में मुझे जगह मिल गयी।

अपने जीवन के इस अध्याय का वर्णन मैंने "उस्ताद", "कोनोवालोव" तथा "छब्बीस और एक" नामक कहानियों में किया है। बड़ी कम्बख़्ती का जीवन था वह! लेकिन तजुरबों से भरा हुआ।

शारीरिक दृष्टि से दर्दनाक हालत थी और मानसिक दृष्टि से तो और भी ज्यादा दर्दनाक।

बिसकुट का यह कारख़ाना एक मकान के सब से निचले भाग में था। उसमें जाने के बाद अपने मित्रों की मंडली — जिसका सत्संग

और सलाह मेरे लिए अत्यन्त आवश्यक हो गयी थी—और अपने बीच "विस्मृति की दीवार" सी खड़ी हो गयी। उनमें कोई ऐसा न था जो इस कारख़ाने में मुझसे मिलने को आता। यहाँ दिन में चौदह घंटे की खटनी थी। फलस्वरूप सप्ताह में ६ दिन देरेनकोव के घर जाने का सवाल ही नहीं उठता था। और सातवें दिन, जिस दिन छुट्टी होती थी, या तो मैं दिन भर सोता रहता या कारखाने के अपने साथियों के बीच वक़्त काटता। इनमें कुछ तो मुझे मूर्ख समझते थे—ऐसा मूर्ख जिससे सभी का दिल बहलता हो; और कुछ मुझे प्यार करते थे उसी तरह जिस तरह बच्चे मजेदार कहानियाँ सुनाने वाले को प्यार करते हैं। ख़ुदा ही जानता है कि मैं इन लोगों से क्या कहा करता था; पर इतना निश्चित है कि मैं उन्हें इस आशा से प्रेरित करने की भरसक कोशिश किया करता था कि उनके लिए दूसरे प्रकार का जीवन सम्भव है—ऐसा जीवन जो इतना कष्टपूर्ण नहीं होगा, जिसमें तुक होगी और प्रयोजन होगा। इसमें मुझे कभी-कभी सफलता भी प्राप्त होती थी। उनके सूजे चेहरों पर मानवीय विषाद की झलक आ जाती या कभी-कभी आँखें रोष और क्षोभ से जल उठतीं। तब मेरा हृदय सन्तोष से भर जाता। मुझे गर्व होता कि मैं "जनता के बीच काम कर रहा हूं", उसे "शिक्षित और सचेत" बना रहा हूं।

लेकिन ज्यादातर अस फलता ही हाथ लगती, जो कि स्वाभाविक थी। अपने को ही ज्ञान का प्रकाश न रहने के कारण मैं प्रायः जीवन एवं अपने वातावरण द्वारा पेश अत्यन्त साधारण सवालों का भी उत्तर नहीं दे पाता था। उस वक़्त मुझे महसूस होता कि मैं

अंधेरे गढ़े में आ गिरा हूँ जहाँ दिशा-भ्रष्ट इंसान कीड़ों की तरह कुलबुल कर रहे हैं, जहाँ वे वास्तविकता को भूल जाने को व्याकुल हैं और शराब की बोतलों या वेश्याओं के सर्द आलिंगन में ग़मग़लत करते हैं।

तनखा पाने के दिन वेश्याओं के यहाँ जाना आवश्यक था। कुछ हमारे साथी एक हफ़्ते पहले ही से उस रस की कल्पना में विभोर हो जाते। वही पारस्परिक चर्चा का विषय बन जाता तथा उसके बाद देर तक जो मज़ा लूटा गया उसकी तफ़सीलवार चर्चा चला करती थी। इन प्रसंगों में बड़ी निर्लज्जता के साथ अपनी मर्दाना ताक़त का बखान किया जाता तथा औरतों का निर्मम मज़ाक बनाया जाता। औरतों का प्रसंग आने पर वे वीभत्स ढंग से थूक देते।

फिर भी आश्चर्य यह है कि वे जब ये कहानियाँ सुनाते तो मुझे लगता कि उनकी आत्मा में दुख और लाज बोल रही है। वेश्याओं के अड्डों को, जहाँ एक रूबल देने पर रात भर के लिए औरत खरीदी जा सकती थी, "साँत्वना-गृह" कहा करते थे। मेरे साथी वहाँ जाने पर झेंपे हुए से रहते थे जो मुझे स्वाभाविक प्रतीत होता था। कुछ ज़रूरत से ज़्यादा तपाक से बातें करते। भीतरी झेंप को वे गाल बजा कर मिटाने की कोशिश करते थे। यौन-सम्बन्धों के बारे में मेरा कुतूहल तीव्र था। अतः इन सारी चीज़ों को मैं पैनी अन्तर्दृष्टि से देखा करता था। औरत के आलिंगन-चुम्बन का अनुभव मुझे नहीं प्राप्त हुआ था। कंठीधारी बने रहने के कारण मैं काफ़ी मुश्किल में पड़ गया—मेरे साथी और औरतें दोनों ही मुझसे बुरा मानतीं और मेरे ऊपर आवाज़ाकशी किया करती थीं। शीघ्र

5•

ही उन्होंने "सांत्वना-गृहों" में चलने के लिए मुझे न्योतना बन्द कर दिया। एक दिन खुल कर कह दिया उन्होंने:

"भाईजान, आपके चलने की ज़रूरत नहीं है हम लोगों के साथ।"

मैंने पूछा: "क्यों?"

साफ़ जवाब मिला:

"आपके रहने से मज़ा किरकिरा हो जाता है।"

इन शब्दों को मैंने आग्रहपूर्वक धर लिया। वे मुझे अपने लिए बड़े महत्वपूर्ण ज्ञात हुए, पर उनका स्पष्ट मतलब मैं नहीं समझ सका।

एक दिन वे फिर बोले:

"कैसे आदमी हो जी! एक बार कह दिया—हम लोगों के साथ मत आया करो। तुम्हारे रहने से सारा आनंद बिगड़ जाता है...।"

और सिर्फ़ आर्तेम ने कड़वी मुस्कुराहट के साथ कहा:

"तुम रहते हो तो ऐसा लगता है कि पादरी साहब खड़े हैं, या अपना बाप ही रंग में भंग डालने पहुँच गया है।"

पहले तो लड़कियाँ मेरे आत्मप्रतिबन्ध की हँसी उड़ाया करती थीं। बाद में उन्होंने क्षोभ व्यक्त करना शुरू किया। बोलीं:

"ये साहब लगाते हैं अपने को... हम लोग इनके लायक़ नहीं हैं जी।"

अड्डे की नायिका तेरेज़ा बोरुता नामक चालीस वर्षीया "छोकरी" थी—मोटी-ताज़ी और देखने में सुन्दर। वह अच्छी जाति के कुत्ते जैसी चालाक आँखों से मुझे ग़ौर से देखने के बाद कहती:

"देखो छोरियो! इन बेचारे को तंग करने से कोई फ़ायदा नहीं। ये अपना दिल कहीं और दिये बैठे हैं। क्यों जी है न यही बात? ऐसा तगड़ा जवान और यह हाल—ज़रूर कहीं कोई माशूका है इनकी। इसीलिये इन्हें हम लोगों की ज़रूरत नहीं। नहीं तो इस बेरुखी का भला क्या कारण हो सकता है?"

उसे नशेबाज़ी की बुरी लत लग चुकी थी। पीते-पीते वह बुत बन जाती। उस वक़्त उसके ऐसा वीभत्स कोई नहीं। पर जिस वक़्त होशहवास दुरुस्त रहते उसकी बुद्धिमानी भरी बातों से मैं विस्मित हो जाता था। दूसरे लोगों के व्यवहार का वह बड़े ठंढे दिल से विश्लेषण करती। कहती:

"सबसे अजीब रवैया कालेज के विद्यार्थियों का है। उनके ढंग ही नहीं समझ में आते। फ़र्श पर खूब साबुन का झाग मलवा कर वे उसपर चार चीनी की तश्तरियाँ रखवा देते हैं। उनपर छोकरियों को नंगी कराके बकैयां बैठा देते हैं और पीछे से ज़ोर से ठेलते हैं—यह देखने के लिए कि वह कितनी दूर तक फिसलती है। एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी लड़की के साथ वे यही खेल करते हैं। यह क्यों?"

मैं चिल्ला पड़ा:

"तुम झूठ बोल रही हो!"

उसने शान्तिपूर्वक, बिना बुरा माने, जवाब दिया:

"मैं बिलकुल ठीक कह रही हूँ।" और उसकी उस शांतचित्तता ने मुझे अत्यधिक खिन्न कर दिया।

मैं ने कहा:

"तुम गढ़ कर ऐसी बातें कह रही हो।"

वह आँखें फाड़ कर मुझे देखने लगी और बोली: "लड़कियाँ भला ऐसी बातें क्यों गढ़ेंगी? और न मेरा ही माथा फिर गया है।"

लोग बड़ी दिलचस्पी के साथ हम लोगों की इस बहस को सुन रहे थे। तेरेज़ा बोलती ही जा रही थी—एक ऐसे व्यक्ति के आवेशहीन स्वर में जो केवल चीज़ों को समझना चाहता है, ऐसी पहेलियों का रहस्य जानना चाहता है। वह अड्डे में आने वालों के नये-नये खेलों का वर्णन करती रही।

सुनने वालों ने घृणा से ज़मीन पर थूक दिया और लगे विद्यार्थियों को गालियाँ देने। मेरे सामने उस वक़्त एक ही विचार था—तेरेज़ा इन लोगों के मस्तिष्क में ऐसी जमात के विषय में विष बो रही है जिन्हें मैं सम्पूर्ण हृदय से श्रद्धा करता हूँ। मैंने कहा कि विद्यार्थी लोग तो जनता के प्रेमी हैं, उनकी तो एकमात्र इच्छा जनता की सेवा करना है।

तेरेज़ा बोली:

"तुम वोस्क्रेसेंस्काया स्ट्रीट के विद्यार्थियों की बात कर रहे हो— विश्वविद्यालय में पढ़ने वालों की। यह क़िस्सा आस्कोंये पोले के विद्यार्थियों का है जो पादरी बनने की पढ़ाई कर रहे हैं—गिर्जाघर वाले विद्यार्थी। वे सभी के सभी यतीम लड़के हैं और यतीमों का हमेशा यही हाल होता है—या तो वे चोर निकल जाते हैं या लुच्चे और बदमाश। बे माँ-बाप के लड़के कभी अच्छे नहीं निकल सकते, क्योंकि उनकी रोकथाम करने वाला कोई नहीं होता!"

नायिका की ये कहानियाँ, और विद्यार्थियों, सरकारी मुलाज़िमों तथा आम तौर से सभी सफ़ेदपोशों के बारे में अड्डे की छोकरियों

की रोषपूर्ण शिकायतें हमारे साथियों के ऊपर दूसरा ही रंग चढ़ा रही थीं। उनके अन्दर घृणा जाग्रत होने के अलावा एक प्रकार के सन्तोष का भाव भी उठता था जो निम्न उक्ति में व्यक्त होता था:

"अच्छा! तो पढ़े-लिखे बाबू लोग हम लोगों से भी गये गुज़रे हैं!"

इस तरह की बातें सुनकर मुझे बड़ी पीड़ा होती थी। वेश्यागृह के तंग अंधेरे कमरे मानो सड़े हुए नाबदान थे जहाँ शहर भर की नालियों का गदला पानी आकर जमा होता और उबल कर विषमय धुएँ का रूप धारण करता—वैमनस्य और द्वेष का धुआँ जो अपने नये रूप में लौट कर फिर सारे शहर पर छा जाता है। पाशविक वासनाओं और कठिन जीवन की घुटन के कारण लोग इन गंदी कोठरियों में आते थे। वहाँ अटपटे बैन प्रेम और विरह के व्यथापूर्ण गीतों में परिवर्तित हो जाते; "पढ़े-लिखे बाबुओं" के जीवन के बारे में कुत्सित कहानियों का जन्म होता और अपनी समझदारी के बाहर की वस्तुओं के प्रति तिरस्कार और द्वेष की भावनाओं का उदय होता। मैंने स्पष्ट देखा कि "सांत्वना-गृह" एक प्रकार के विश्वविद्यालय हैं जहाँ हमारे साथी भयानक विषमय शिक्षाओं से अभिभूत हो रहे हैं।

उन कोठरियों के गंदे फ़र्शों पर वारांगनाएँ हार्मोनियम की अथक चिल्लपों या टूटे प्यानो की माथा खा जाने वाली टाँय-टाँय की ताल पर कुत्सित हावभाव के साथ छाती और चूतड़ मटकाती अपना नाच दिखाती थीं। उन्हें देख कर मेरे मस्तिष्क में नये विचार—अस्पष्ट किन्तु मन को अस्थिर एवं अशान्त कर देने वाले

विचार—उदित होते। पूरे वातावरण में ऊब एवं आत्मा में कड़ुवाहट भर जाती। जी में वहाँ से उठ कर चल देने की बेबस प्रेरणा होने लगती।

बिस्कुट कारखाने में जब मैं उन लोगों की चर्चा छेड़ता जो जनता की आज़ादी एवं सुख का मार्ग बिना किसी स्वार्थ के खोजने में लीन हैं तो झट जवाब मिलता:

"लेकिन छोकरियाँ तो इन साहबज़ादों के और ही ढंग बतलाती हैं।"

वे निर्ममता के साथ मेरी हंसी उड़ाते। उनकी क्षुब्ध आस्थाहीनता मुझे बेक़रार कर देती। पर मेरी भी प्रवृत्ति विद्रोही थी। मुझे अपने में विश्वास था—अपने से अधिक उम्र वाले इन जानवरों से बुद्धि और साहस में मैं किसी तरह कम नहीं हूं, बल्कि ज्यादा। और मैं भी क्रुद्ध हो जाता। मैं महसूस करने लगा था कि जीवन के विषय में मनन करना स्वयं जीवन से कम दुष्कर नहीं है। और कभी-कभी अपने साथियों की गधों जैसी सहनशीलता पर मेरा हृदय घृणा से भर जाता। सदा नशे में चूर रहने वाला हमारे कारख़ाने का मालिक उन्हें बुरी तरह बेइज्ज़त किया करता था, पर वे थे कि चुपचाप बेइज्ज़ती सह लेते, मूक पशुओं की तरह। यह चीज मुझे सबसे अधिक आपे से बाहर कर देती।

और इत्तिफ़ाक़ की बात कि ठीक इन सख्त दिनों में मेरी मुठभेड़ एक ऐसी विचारधारा से हुई जो मेरे लिए सर्वथा नवीन थी—एक ऐसी विचारधारा जो मेरी प्रकृति से मूलतः भिन्न थी, फिर भी जिसने मेरे मस्तिष्क को बेतरह झकझोर दिया।

एक रात मैं देरेनकोव के घर से कारखाने लौट रहा था। वह भीषण रात थी। बाहर भयानक आँधी चल रही थी। हवा चीत्कार करती हुई बह रही थी। ऐसा लगता था कि उसके थपेड़ों से भूरा आकाश चकनाचूर होकर बारीक बरफ़ के गालों के रूप में चू रहा है— धरती को दफ़ना देने के लिए। मानो प्रलय का दिन आ गया था और सूरज का गोला सदा के लिए बुझ चुका था। उस चंचल, चीखते वातावरण में मैं टटोलता हुआ आगे बढ़ रहा था। हवा के थपेड़ों के कारण मैंने हाथों से अपनी आँखें मूँद रखी थीं। यकायक किसी चीज़ से ठोकर लगी और मैं ज़मीन पर आ रहा। सड़क की पटरी के बीचोबीच एक आदमी बर्फ़ में लम्बा पड़ा हुआ था। मेरे पांव उसी से टकरा गये थे। हम दोनों के मुँह से गाली निकल पड़ी— मेरे मुँह से रूसी में और उसके मुँह से फ़्रांसीसी भाषा में।

मुझे अचंभा हुआ। मैंने घसीट कर उसे ज़मीन से उठाया और खड़ा कर दिया। वह नाटे क़द का हलका-फुलका आदमी था। उठते ही उसने ज़ोर से मेरी बाँहें पकड़ कर गुस्से से कहा:

"अबे! मेरी टोपी कहाँ है? ला मेरी टोपी तो दे! नहीं तो मैं यहीं ठिठुर कर रह जाऊँगा!"

उसकी टोपी बर्फ़ में पड़ी थी। उसे झाड़ कर मैंने उसके माथे पर, जिसके बाल खड़े थे, डाल दिया। पर वह टोपी नीचे खींच कर, हाथ झुलाते हुए मुझे दो भाषाओं में गालियां देने लगा:

"भाग यहाँ से!"

अचानक वह दौड़ कर वहाँ से भागा और हिम वर्षा में खो गया। पर थोड़ी ही देर बाद वह फिर मिला— सड़क की एक

बुझी हुई लालटेन के खंभे से टिका हुआ। वह खड़ा आप ही आप बुदबुदा रहा था:

"लेना, मैं मरा. . . लेना. . .।"

स्पष्ट था, उसने बुरी तरह पी ली है। यदि मैं उसे छोड़ देता तो वह सम्भवतः रात में वहीं ठिठुर कर मर जाता। मैंने पूछा, कहाँ रहते हो? वह रोने लगा और बोला:

"यह कौन महल्ला है? मैं रास्ता ही भूल गया हूँ।"

कमर में हाथ डाल कर मैं उसे ले चला और पूछने लगा कि उसका घर कहाँ है।

वह थर-थर काँप रहा था। अस्फुट स्वर में बोला:

"बुलाक में...। बुलाक में... वहीं एक घर है... उसके हाते में गुस्लखाना है...।"

रह-रह कर उसके पाँव लड़खड़ा पड़ते और वह भहरा कर गिरने-गिरने हो जाता। उसे सहारा देकर ले चलने में बड़ी कठिनाई हो रही थी। जाड़े से उसके दांत कटकटा रहे थे। मेरे ऊपर भार देता हुआ वह फ़्रांसीसी ज़बान में कुछ बोला:

"सी तू सावे,"

मैंने कहा:

"मैं तुम्हारी बोली नहीं समझता।"

वह अचानक रुक गया और हाथ ऊपर करके अभिमान के साथ, एक-एक शब्द का स्पष्ट उच्चारण करते हुए, अपनी भाषा में, फिर बोला:

"सी तू सावे उ जे ते में..."

इसके बाद उसने मुँह में उंगलियां डाल लीं, ज़ोर से लड़खड़ाया और गिरते-गिरते बचा। मैंने घुटनों के बल बैठ कर उसे अपनी पीठ पर लाद लिया। जब चला तो मेरी खोपड़ी में अपनी ठुड्डी रगड़ते हुए वह फिर बुदबुदाने लगा:

"सी तू सावे उ... या भगवान! मैं ठिठुरा जा रहा हूँ...।"

बुलाक पहुँचने के बाद मुझे बार-बार पूछना पड़ा कि उसका घर कौनसा है। बड़ी देर के बाद हम लोग एक मकान के आँगन के पिछले भाग में, हिम वर्षा के कारण छिपे, एक छोटे से घर के तंग गलियारे में घुसे। वह टटोलता हुआ घर के भीतरी दरवाज़े पर पहुँचा और उसे हलके हाथों से खटखटाने लगा। मुझसे बोला:

"श्शश! शोर नहीं करना...।"

किसी औरत ने आकर दरवाज़ा खोला। वह लाल ड्रेसिंग-गाउन लपेटे हुए थी। हाथ में मोमबत्ती थी। दरवाज़ा खोल कर वह चुपचाप ज़रा सा किनारे हो गयी ताकि हम लोग अन्दर दाखिल हो सकें। मैं जब भीतर घुसा तो उसने कहीं से मूठ वाला चश्मा निकाला और उसे आँख के सामने रख कर मुझे बड़े ग़ौर से देखने लगी।

मैंने उससे कहा कि उसके आदमी के हाथ में सम्भवतः पाला लग गया है और उसको फ़ौरन कपड़े उतार कर चारपाई पर लिटा देने की आवश्यकता है।

"हाँ?" उसने जिज्ञासा के स्वर में कहा। उसके स्वर में युवा अवस्था की तेज़ी और मिठास थी।

मैं कहता गया:

"और उसके हाथों पर ठंडा पानी डालना होगा...।"

बिना कुछ कहे, उसने हाथ के चश्मे से कमरे के एक कोने की ओर इशारा कर दिया। वहाँ कुछ नहीं था—केवल चित्रकारी का एक फ़्रेम खड़ा था जिसपर वृक्ष और नदी का एक चित्र जड़ा हुआ था। मैं हैरानी में पड़ गया और लगा नज़दीक से उस औरत का मुँह निहारने। पर उसकी आकृति आश्चर्यजनक रूप से निश्चल बनी रही। मेरे पास से हट कर वह दूसरे कोने में चली गयी जहाँ मेज़ के ऊपर गुलाबी शेड के नीचे एक लैम्प जल रहा था। वह बैठ गयी और मेज़ से पान का ग़ुलाम उठा कर उसे बड़े ग़ौर से देखने लगी।

मैंने आवाज़ ऊँची करके कहा:

"आपके पास थोड़ी वोद्का होगी?" — पर कोई जवाब नहीं। वह मेज़ पर ताश के पत्ते बिछा रही थी। आदमी कुर्सी पर बैठा हुआ था—मस्तक सीने के ऊपर, दोनों हाथ लाल और लुंज। मैंने उसे कोच के ऊपर लिटा दिया और लगा उसके कपड़े खोलने। क्या हो रहा है, इसका मुझे पता नहीं था। ऐसा लगता था मानो सपने में हूँ। कोच के पास की दीवार पर इतने बहुत से फ़ोटो टंगे हुए थे कि दीवार छिप गयी थी। उनके बीच एक सुनहले रंग की माला लटक रही थी जिसमें सफ़ेद रिबन लपेटा हुआ था। रिबन के छोर पर सुनहली लिखावट में लिखा था:

"अतुलनीय जिल्डा को"

मैं उसकी बाहों की मालिश करने लगा तो वह कराहा:
"अबे! सम्भाल के!"

औरत एकाग्रचित और चुपचाप ताश की पत्तियाँ सजा रही थी। नुकीली नाक के कारण उसका चेहरा कुछ-कुछ पक्षियों जैसा लग रहा था। दो बड़ी-बड़ी अचल आँखें चेहरे पर रोशनी फेंक रही थीं। उसने हाथ उठा कर अपने बालों को संवारा। वे युवती के हाथ थे। और उसके श्वेत बाल जजों के कृत्रिम केशों की तरह लहरदार थे। मंद किन्तु स्पष्ट स्वर में उसने पूछा:

"मिशा से भेंट हुई, जार्ज?"

मुझे ठेल कर जार्ज फुर्ती से उठ बैठा और जल्दी-जल्दी कहने लगा:

"मिशा तो तुम्हें मालूम ही है कि कीव चला गया है...।"

"हाँ, कीव," औरत ने दुहराया, ताश के पत्तों से नज़र हटाए बिना। मैंने देखा, उसका स्वर भावहीन और असाधारण रूप से सम था। जार्ज बोला:

"वह जल्दी ही लौट आयेगा...।"

"हाँ?"

"हाँ, हाँ! बहुत जल्द!"

"हाँ?" औरत ने दुहराया।

जार्ज, जिसकी देह पर पूरे कपड़े नहीं थे, कोच से कूद कर नीचे आया और दौड़ कर उसके पास चला गया। उसके पाँवों के पास घुटनों के बल बैठ कर उसने फ़्रांसीसी में कुछ कहा। उसने रूसी में जवाब दिया:

"मेरा मन बिल्कुल स्थिर है।"

वह कहने लगा:

"जानती हो—मैं रास्ता ही भूल गया, और आंधी और बर्फ़ की वर्षा ऐसी थी कि कुछ पूछो मत। मुझे तो लगा कि आज ठंड से ठिठुर कर यहीं रह जाऊँगा।" वह बड़ी तेज़ी से बोल रहा था और उसके हाथ को जो, निष्क्रिय घुटने के ऊपर पड़े थे, अपने हाथों से सहलाता जा रहा था। उसकी उम्र लगभग चालीस की होगी। चेहरा लाल, काली मूँछों के नीचे मोटे ओठ। न जाने क्यों वह अत्यन्त उद्विग्न और भीत सा मालूम हो रहा था। उसकी गोल खोपड़ी के ऊपर श्वेत केश सीधे खड़े थे जिन्हें वह रगड़ रहा था। नशा हिरन होता जा रहा था।

औरत बोली:

"हम लोग कल कीव चलेंगे।" उसके सम स्वर के कारण यह कहना कठिन था कि वह प्रश्न पूछ रही है या चलने की सूचना दे रही है।

"ठीक। कल ही चलेंगे हम लोग! इसलिए अब आराम करो। इतनी रात जा चुकी है। तुम सोती क्यों नहीं?"

"और मिशा नहीं आयेगा आज?"

"नहीं, बीबी! भला ऐसी आँधी-पानी में कोई कैसे आ सकता है?.. अच्छा अब जाओ सो रहो...।"

उसने लैम्प हाथ में उठा लिया और उसे एक छोटे से दरवाज़े से होकर, जो किताबों से भरी आलमारी की आड़ में छिपा हुआ था, अन्दर लिवा ले गया। बड़ी देर तक मैं कमरे में अकेला बैठा रहा। मेरा माथा काम नहीं कर रहा था। केवल कानों में बग़ल के कमरे के अंदर से उसकी फुसफुसाहट की आवाज़ आ रही थी।

खिड़कियों पर बरफ़ीली आँधी अपने पंजेदार हाथों से दस्तक दे रही थी। फ़र्श पर एक जगह गढ़े में पिघला हुआ बर्फ़ जमा हो गया था जिसमें मोमबत्ती की कांपती लौ प्रतिबिम्बित हो रही थी। कोठरी असबाब से ठसाठस भरी हुई थी। हर ओर से एक अनोखी उष्ण गन्ध उठ रही थी जिससे मस्तिष्क पर ग़फ़लत हावी होती जा रही थी।

बड़ी देर के बाद जार्ज लौटा, हाथ में लैम्प लिए, लड़खड़ाता हुआ। लेकर चलने से लैम्प का शीशा शेड के साथ रगड़ खा रहा था। वह बोला:

"सो गयी!"

लैम्प को उसने मेज़ पर रख दिया और तल्लीन हो गया मानो किसी विचार में। एकबार कमरे के बीचोबीच रुक कर वह कुछ बोलने लगा, पर बिना मेरी ओर देखे हुए:

"क्या कहूँ मैं? आज तो ख़तम ही था। तुमने जान बचा ली...। धन्यवाद तुम्हें! पर तुम हो कौन?"

उसने कान एक ओर कर ध्यान से सुनना शुरू किया। बग़ल वाले कमरे से किसी चीज़ के हिलने की हलकी आवाज़ आयी तो वह घबरा गया। मैंने बड़ी नरम आवाज़ में पूछा:

"यह आपकी पत्नी हैं?"

"हाँ, मेरी पत्नी। मेरी सर्वस्व। मेरे जीवन की एकमात्र पूँजी," उसने मंद आवाज़ में कहा, नज़र फ़र्श पर ही गड़ाये हुए। फिर उसने अपना माथा ज़ोर से रगड़ना शुरू किया। और बोला:

"थोड़ी चाय पीनी चाहिये—क्यों?"

और वह, खोया हुआ सा, दरवाज़े की ओर बढ़ा, पर बीच ही में याद आयी कि नौकरानी बीमार होकर अस्पताल चली गयी है। वह रुक गया।

मैंने कहा:

"लाइए समावार, मैं सुलगा दूँ।"

उसने सिर हिला कर सहमति प्रगट की और इस बात का ख़याल किये बिना कि वह आधी ही पोशाक में है भीगे फ़र्श पर नंगे पैरों से रसोईघर की ओर चला। रसोई का कमरा बिलकुल छोटा सा था। वहाँ चूल्हे से सट कर उसने फिर कहा:

"तुम नहीं मदद करते तो आज मैं बर्फ़ में ठिठुर कर ख़तम ही हो जाता। धन्यवाद है तुम्हें!"

और अचानक कोई बात उसके दिमाग़ में आयी जिससे आँखें फाड़ कर वह मेरी ओर देखने लगा—आतंकित और भयभीत। बोला:

"या ईश्वर! क्या होता उसका यदि...?"

फुसफुसा कर आँखें बग़ल के कमरे के दरवाज़े की ओर किए, वह कहने लगा:

"उसकी दिमाग़ी हालत ठीक नहीं है। तुमने तो देखा ही। उसका एक बेटा था जो मास्को में गायक था—उसने आत्महत्या कर ली। पर उसके दिमाग़ में वहम समा गया है कि वह लौट आयेगा। दो वर्षों से उसकी यही हालत है।"

दोनों आदमी चाय पीने बैठे तो वह लगा अपनी कहानी बतलाने। वह बोलता जा रहा था। कोई श्रृंखला न थी उसके बोलने में, न उसके शब्द ही साधारण बातचीत के परिचित शब्द थे।

औरत पहले एक ज़मींदारिन थी और वह था इतिहास का मास्टर। उसके लड़के को पढ़ाने के लिए वह ट्यूटर रखा गया था। उसी वक़्त दोनों में प्रेम हो गया। औरत का पति एक जर्मन बैरन था। उसने अपने पति को छोड़ दिया उसके कारण। वह ऑपरा में गाने वाली का काम करने लगी। दोनों की ज़िन्दगी बड़े सुख से कट रही थी यद्यपि बैरन ने उसके रास्ते में काँटे बोने की कोशिश उठा न रखी थी।

जिस वक़्त वह बोल रहा था उसकी आँखें सिकुड़ी हुई थीं। नजर धुएँ से काले रसोईघर के चूल्हे के नज़दीक वाले अंधेरे कोने पर टंकी हुई थी जिसके पास फ़र्श की लकड़ी सड़ जाने से गढ़ा हो गया था। बातों में भूल कर उसने गरम चाय मुँह में उंडेल ली। जीभ जल जाने से मुँह पर पीड़ा का भाव छा गया। उसकी गोल आँखों में उद्विग्नता थी।

उसने मुझसे दुबारा पूछा:

"तुम कौन हो?" मैंने जवाब दिया तो वह बोला: "ओ, ठीक। तुम बिस्कुट कारखाने में काम करते हो। पर तुम्हें देख कर कोई नहीं कहेगा कि तुम मज़दूर का काम करते हो। ऐसा क्यों है?"

उसके स्वर में भय का भाव था और आँखों में शंका—जाल में फंसे आदमी जैसी।

संक्षेप में मैंने उसे अपनी कहानी सुना दी।

वह मुलायम स्वर में बोला: "अच्छा! यह बात है—यों है माजरा!"

अचानक बड़ी घनिष्टता के साथ उत्तेजित होकर बोला:

"तुमने 'बदसूरत बत्तख वाली कहानी' पढ़ी है न?"

उसकी आकृति अनोखे ढंग से विकृत हो गयी। स्वर में रोष भर गया और आवाज़ अस्वाभाविक ढंग से ऊँची होती गयी। वह कहने लगा:

"ऐसी कहानियाँ आदमियों को फुसलाने के लिए लिखी जाती हैं। तुम्हारी उम्र का था तो मैं भी तुम्हारी ही तरह सोचा करता मैं भी हंस बन सकता हूँ। मेरे बाप पादरी थे। वह मुझे धर्मशिक्षण संस्था में पढ़ाना चाहते थे, पर मैंने विश्वविद्यालय में नाम लिखा लिया। उन्हों ने मुझे निकाल दिया। आख़िर मैं पैरिस जाकर इतिहास पढ़ने लगा—मनुष्य-जाति की बदनसीबी का इतिहास, प्रगति का इतिहास। बल्कि मैंने ख़ुद भी इतिहास लिखने की कोशिश की। सभी के साथ, भैया! ऐसे ही होता है...।"

सहसा चौंक कर वह दो क्षण के लिए कान लगा कर सुनने लगा। फिर बोला:

"प्रगति—यह भी एक ढकोसला है जिसे आदमी ने अपना मन बहलाने के लिए गढ़ रखा है। वास्तव में जीवन में कोई तुक नहीं। बिना ग़ुलामी के प्रगति हो ही नहीं सकती। इसीलिए जिस दिन बहुसंख्यकों पर अल्पसंख्यकों का शासन खतम हो जायगा मनुष्य-जाति जकथक की हालत में पहुँच जायगी। आदमी जीवन को सुगम बनाना चाहता है, श्रम का भार हलका करना चाहता है, पर वास्तव में यह क्रिया जीवन को और जटिल बना देती है, श्रम का बोझ और भी बढ़ जाता है। हम मशीनें बनाते हैं और कारख़ाने खड़े करते हैं। किस लिए, भाई? मशीनों से नयी मशीनें तैयार करने के लिए। इसे कहते हैं मूर्खता की हद। दुनिया में

कारखानों में काम करने वालों की ही संख्या बढ़ती जा रही है जब कि ज़रूरत है किसानों की — अन्न उपजाने वालों की। मानव श्रम का बस एक लक्ष्य होना चाहिये — भोजन। केवल वही अपने हाथ की ताक़त से प्रकृति से उगाहना काफ़ी है। आदमी की ज़रूरतें जितनी ही कम हों उतना ही अधिक वह सुखी है। और जितनी ही ज़्यादा ज़रूरतें बढ़ती हैं उतनी ही आदमी की आज़ादी नष्ट होती जाती है।"

सम्भवतः ये शब्द हूबहू वही नहीं हैं जो उसने कहे थे पर भाव यही था। ये विचार मेरे लिए सर्वथा नवीन और अभूतपूर्व थे। उनके थपेड़ों ने मुझे झकझोर दिया। उन विचारों से, नग्न, आवरणहीन — मेरी यह पहली मुठभेड़ थी। जिस वक़्त बातों का उसका उपरोक्त सिलसिला खतम हुआ वह अत्यन्त उत्तेजित स्वर में बोल रहा था। यकायक बोलना बन्द कर उसने उद्विग्न दृष्टि से खुले दरवाज़े की ओर ताका जिससे घर के दूसरे कमरों में जाने का रास्ता था और एक क्षण कनौती देकर सुनता रहा। इसके बाद फिर बोलना शुरू किया — आवाज़ दबा कर फुंकार छोड़ता हुआ :

"एक बात गाँठ बाँध लो — आदमी की आवश्यकताएँ स्वल्प हैं — बस एक टुकड़ा रोटी, और औरत...।"

नारी का प्रसंग आने पर उसका स्वर धीमा और रहस्यपूर्ण हो गया। उस वक़्त उसके मुंह से अनूठे शब्द और ऐसी कविताएँ निकलने लगीं जिन्हें मैंने पहले कभी नहीं सुना था। सहसा मुझे चोट्टे बाश्किन की याद आ गयी।

वह नये-नये नाम सुनाने लगा — "बेट्रिस, फ़्यामेत्ता, लौरा, निनोन"। मैंने ये नाम पहले नहीं सुने थे। वह बादशाहों और कवियों

के इश्क़ की कहानियाँ सुनाने लगा। बीच-बीच में फ़्रांसीसी कविताएँ जिनका उच्चारण करते वक़्त वह अपने पतले बाज़ुओं को, जो कोहनी तक खुले हुए थे, हिलाने लगता था।

उत्तेजित स्वर में उसने कहा :

"संसार में दो ही शक्तियों का साम्राज्य है — एक प्रेम और दूसरी भूख।" ये शब्द मैं पहले सुन चुका था। मैंने "क्षुधा महारानी" शीर्षक क्रांतिकारी पुस्तिका देखी थी। उपरोक्त वाक्य उसके शीर्षक के ठीक नीचे लिखा हुआ था जिससे मेरे लिए उसने खास वजन और अहमियत अख़्तियार कर ली थी।

उसने फिर कहा :

"मनुष्य भूलना, सन्तोष पाना चाहता है, जानना नहीं।"

उसके विचारों की इस चरम परिणति ने मुझे धराशायी कर दिया।

दीवार पर टंगी छोटी सी घड़ी ने छ बज कर कुछ मिनट का संकेत किया। सवेरा हो चला। तब मैंने उस रसोईघर से विदाई ली। चारों ओर अभी भी अंधेरा और घना कुहासा छाया हुआ था। तूफ़ान का गरजना जारी था। और कानों में उस आदमी की फुंकार गूँज रही थी। ऐसी अवस्था में रास्ते में जमे बर्फ़ के ढेरों को रौंदता मैं चला जा रहा था। मुझे भास हुआ कि जो बातें उस आदमी ने कही थीं वे कड़वी औषधि के घूँट हैं जिन्हें गले से उतारना मेरे लिए सम्भव नहीं था। वे गले में अटक गये और मेरा दम घुटने लगा। मैं घर वापस नहीं जाना चाहता था। कारखाने में, आदमियों की संगत में, जाने की मुझे इच्छा नहीं हो रही थी। मेरे कंधों पर बर्फ़ की फुज्जियों का अंबार लगता जा रहा था पर मैं तातारों के महल्ले में

यों ही चक्कर लगा रहा था। आखिर पौ फटी और इक्के-दुक्के नगरवासी बर्फ़ के ढेरों को पार करते दिखायी पड़ने लगे।

इतिहास के उस मास्टर से मेरी फिर मुलाक़ात नहीं हुई; न उससे मुलाक़ात करने की मेरी इच्छा ही थी। लेकिन जीवन की निस्सारता एवं श्रम की निष्फलता सम्बन्धी वे विचार मुझे कई बार सुनने को मिले। मैंने उन्हें अपढ़ खानाबदोशों के मुँह से सुना और सुना सुसंस्कृत मर्द और औरतों के और "तोलस्तोयवादियों" के मुँह से। मैंने एक प्रकांड धर्मशास्त्री के मुँह से इस तरह की बातें सुनीं। एक रसायनशास्त्री ने, जो विस्फोटक पदार्थों के सम्बन्ध में अन्वेषण कर रहा था, मुझसे ऐसे ही विचार व्यक्त किये। और यही विचार मुझे एक जीवविज्ञानी से सुनने को मिले जो नवीन चेतनतत्त्ववाद (निओविटालिस्ट) के सिद्धान्त को मानता था। लेकिन उस रात की पहली भेंट में मैं जिस तरह चित्त हुआ था वैसा इन बाद की मुठभेड़ों में नहीं।

और अभी साल-दो-साल हुए होंगे — यानी, इतिहास के उस मास्टर से मुलाक़ात के तीस से अधिक वर्षों के बाद — अचानक बिलकुल वही विचार, लगभग बिलकुल उन्हीं शब्दों में वेविचार, मुझे अपने एक पुराने जानपहचानी के मुँह से सुनने को मिले जो मज़दूर हैं।

हम लोगों में खुल कर विचारों का आदान-प्रदान हो रहा था। हमारे ये दोस्त, जो अपने को "राजनीतिक खंखाड़" कहते थे, संजीदगी से मुस्कुराये और बेधड़क साफ़गोई से — ऐसी साफ़गोई जिसमें शायद हमारी रूसी जाति बेजोड़ है — कहने लगे:

"सुनो, प्यारे भाई! तुम्हारा यह विज्ञान, तुम्हारी वैज्ञानिक

संस्थाएँ और तुम्हारे हवाई जहाज़ — इन चीज़ों से मुझे कुछ लेना-देना नहीं। क्या फ़ायदा इस नयी इल्लत से? यहाँ तो बस चुपचाप पड़ रहने को एक कोना चाहिये, और बस एक औरत जिसे इच्छा होने पर गले से लगा कर कलेजा शीतल कर सकूँ और जो मेरे आलिंगन-चुम्बन का तन और मन से जवाब दे सके। बस। पर तुम हो कि बुद्धि और विवेक के नागपाश में बंधे हुए हो। तुम दूसरी ही पंगत के जीव हो गए। तुम्हारा माथा विषाक्त हो चुका है। तुम्हारे लिए विचार गुरु हैं और आदमी तुच्छ। तुम्हारा हाल यहूदियों का सा है जो समझते हैं कि इंसान बनाया गया है इबादत के लिए। क्यों?"

"पर यहूदियों का ऐसा मत कहाँ है?"

उन्होंने जवाब दिया:

"यह तो ख़ुदा ही जाने कि उनका क्या मत है और वे क्या सोचते हैं। मुझे तो, भई, उनकी बातें समझ ही में नहीं आतीं।" यह कहते हुए उन्होंने हाथ की सिगरेट नदी में फेंक दी और मौन होकर उसका गिरना देखने लगे।

पतझड़ की रात थी। आसमान में चन्द्रमा उगा हुआ था। हम दोनों नीवा नदी के तट पर पत्थर की बेंच पर बैठे हुए थे। दिन भर का समय हम लोगों ने किसी अच्छे और उपयोगी उद्देश्य के तार्किक अन्वेषण में बिताया था और अब चुपचाप बैठे हुए थे भावों की तरंग में हाथ-पैर मारने के बाद थकान से चूर होकर।

मेरे मित्र स्थिर एवं विचारपूर्ण स्वर में कहने लगे:

"मैं कहता हूँ तुम हमारे साथ हो, और फिर भी हमारे तो नहीं। बुद्धिजीवियों की सदा से यही आदत रही है — शहर के अंदेशे से दुबले। इतिहास के आरम्भ से ही उन्होंने सदा बग़ावतों का साथ दिया है। ईसा

को ही ले लो। वह आदर्शवादी था और उस पार की दुनिया के वास्ते बाग़ी बन गया। बुद्धिजीवियों की पूरी जमात ही ऐसी है — हवाई ख़यालों के वास्ते विद्रोह का रास्ता थामने वाली। जब आदर्शवादी बग़ावत का झंडा उठाता है तो समाज के सभी नाकारे, लुच्चे बदमाश उसके पीछे हो लेते हैं — केवल द्वेषवश, इसलिये कि समाज में उनका उपयोगी स्थान नहीं है। मज़दूर क्रान्ति के लिए बग़ावत करते हैं। उन्हें श्रम के साधनों और उत्पादनों का उचित वितरण चाहिए। जब सत्ता उनके हाथ में भली प्रकार आ जायगी तो क्या समझते हो कि वे राज्य को रहने देंगे? हरगिज़ नहीं। सब एक दूसरे से टूटकर बिखर जायंगे और हरेक अपने लिये अलग एक शान्तिपूर्ण कोना ढूँढ़ने लगेगा जहाँ एकांत और चैन की ज़िंदगी काटी जा सके . . .।

"मशीनों को ही ले लो — इस यंत्रकला को, उससे क्या होगा? आदमी और भी फंदे में जकड़ जायगा। क्या हम यही चाहते हैं? बिलकुल नहीं। हमें तो व्यर्थ का श्रम बचाना है। आदमी खोजता है दो घड़ी का चैन। पर ये कारख़ाने और तुम्हारा यह विज्ञान आदमी का चैन खा जायंगे। अकेले आदमी की आवश्यकताएँ ही कितनी हैं? बिलकुल स्वल्प। जब हमारा काम एक छोटे से घर से चल जाता है तो बड़े-बड़े शहर क्यों बसायें? आदमी जब गोल बाँध कर रहने लगता है तभी उसे नयी-नयी सुविधाएँ दरकार होती हैं — जल-कल, बिजली, फ्लश की नालियाँ और न जाने क्या-क्या। लेकिन अगर सभी आत्मनिर्भर जीवन बिताने की कोशिश आरंभ कर दें तो इन चीज़ों की ज़रूरत नहीं पड़ेगी — जीवन

अत्यन्त सरल हो जाएगा। अब तुम चाहे जो कहो, इसमें संदेह नहीं कि हम लोगों ने अपने को व्यर्थ की हज़ारों चीज़ों से घेर रखा है और वे बुद्धिजीवियों की देन हैं। इसीलिये मैं कहता हूँ कि बुद्धिजीवियों की जमात बिलकुल नाकारों की जमात है — हानिकर और अपकारी।"

मैंने कहा कि जीवन को पूर्णत: — और बेहिचक — सभी अर्थों और उद्देश्यों से शून्य बनाने में हम रूसियों ने सब को मात कर ही रखा है।

मेरे दोस्त ने सूखी हँसी हँसते हुए फ़ौरन जवाब दिया:

"हम रूसी सभी जातियों से अधिक स्वच्छंद प्रकृति के हैं।" फिर बोले: "इसमें बुरा मानने की बात नहीं है — मैं जो कह रहा हूँ बिलकुल ठीक। लाखोंलाख आदमियों के मन में यही विचार है। बस शब्द नहीं हैं उनके पास कि उसे व्यक्त कर सकें...। वे चाहते हैं कि जीवन अधिक सादा बनाया जाय। तब जीवन भी हमारे प्रति अधिक मोह दिखलायेगा...।"

हमारे दोस्त "तोलस्तोयवादी" नहीं थे; और न उन्होंने कभी अराजकतावादी प्रवृत्तियों का ही परिचय दिया था। उनके बौद्धिक विकास-क्रम की मुझे अच्छी तरह जानकारी थी।

उनके साथ के इस वार्तालाप के बाद बरबस मेरे मन में शंका उठी: सचमुच ही तो नहीं लाखोंलाख रूसी नर-नारी क्रांति की सारी मुसीबतें केवल इसलिये झेल रहे हैं कि हृदय के अंतरतम में वे श्रम से मुक्ति पाने का अरमान पाले हुए हैं? कम से कम काम और ज़्यादा से ज़्यादा आराम हो — कितनी लुभावनी है यह धारणा? यह

भी एक हवाई खयाल है — अप्राप्य आदर्श का सब्ज़बाग़ — जो जनता को मोहित कर लेता है।

और मुझे इब्सेन की नीचे लिखी पंक्तियाँ याद आ गयीं:

तुम कहते हो कि मैं दकियानूस बन गया? आश्चर्य!
क्योंकि मैं तो वही रहा जो था। मैंने कब कहा कि
प्यादे को हटाओ और फ़र्ज़ी को बढ़ाओ।
मैं तो कहता हूँ, मारो गोली पूरे खेल को ही। बस क्रांति
तो जगती-तल पर केवल एक हुई जो क्रांति थी सच्ची — न
धोखा, न फ़रेब जिसके आगे बाद की सारी क्रांतियाँ मात
हैं, वह था हुआ प्रलय*।
पर उस वक़्त भी लुसिफ़र खा गया गच्चा क्योंकि नोआ, आर्क
पर बैठा, बन गया तानाशाह सच्चा। तो आओ! उग्रपंथी दोस्तो,
आओ! नये सिरे से ज़ोर लगाओ,
ऐसा कि काम अंजाम हो, इसलिए लड़ाकों और वक्ताओं को
बुलाओ —
सब मिल कर फिर जगती-तल पर प्रलय का दिन लायें,
और इस बार आर्क में भी चुपके से आग लगायें!

देरेनकोव की दूकान की आमदनी महज़ मामूली थी; पर सहायता चाहने वाले व्यक्तियों और संस्थाओं की संख्या लगातार बढ़ती जा रही थी।

---

* दिल्यूज — प्रलय की ईसाई मतावलम्बी कल्पना जिसमें सारा जग जलमय हो गया। केवल आर्क (काठ की बड़ी नाव) पर बैठा नोआ बच रहा — अ०

आंद्री अपनी दाढ़ी में उँगली उलझा कर चिंता से कहता:

"कोई रास्ता ढूंढ़ना ही होगा।" और यह कह कर आजिज़ी से मुस्कुराने लगता था, दीर्घ निश्वास छोड़ता।

इस आदमी ने मानवता के लिये अपने को मिटा देने का जौहर व्रत ले लिया था। उसे विश्वास था कि ज़िंदगी कठिन मुसीबतों में ही बीतनी है। फिर भी कभी-कभी ऐसे मौक़े आते कि गाड़ी का घिसटना मुश्किल मालूम होने लगता।

कई बार — भिन्न-भिन्न तरीक़ों से — मैंने उससे पूछा था:

"आखिर तुम ऐसा क्यों करते हो?"

स्पष्ट था कि वह मेरा मतलब नहीं समझा। वह सदा "क्यों?" के बदले "किस लिये?" का जवाब देने लगता — तोतारटंत जवाब जनता के कष्टमय जीवन और उसके पास ज्ञान का प्रकाश पहुँचाने की बातें। मैंने सवाल किया:

"पर आदमी को क्या ज्ञान की तलाश है?" वह क्या ज्ञान-प्राप्ति की कामना करता है?"

"बेशक! क्यों नहीं? तुम ज्ञान के लिये मरते हो कि नहीं? बताओ तो!" उसने जवाब दिया।

निस्संदेह मैं ज्ञान-प्राप्ति के लिये लालायित था। पर मुझे इतिहास के मास्टर के शब्द याद आये:

"मनुष्य भूलना, संतोष पाना चाहता है। जानना नहीं।"

स्पष्ट है कि ऐसे धारदार विचारों का सत्तरह साल के कमउम्र जवानों के पास पहुँचना हानिकर है। ऐसी मुलाक़ातों में विचारों

की पैनी धार तो मोथरी हो ही जाती है, ये कमउम्र जवान भी उनसे लाभ नहीं प्राप्त कर पाते।

मेरी कल्पना विकृत हो गयी — सदा ऐसा लगने लगा कि एक ही चीज़ है जो हर जगह दिखायी देती है, दिलचस्प से दिलचस्प कहानी लोगों को केवल इसलिये अच्छी लगती है कि उससे उनके हतभाग्य जीवन में, जिसके वे आदी हो गये हैं, दो घड़ी को गम-ग़लत होता है; कहानी में जितनी ही अधिक "कल्पना" से काम लिया जाता है उतनी ही अधिक चाह से लोग उसे सुनते हैं; वे ही किताबें सब से ज्यादा चाव से पढ़ी जाती हैं जिनमें "मनगढ़ंत" कहानियों का बाहुल्य होता है। दो शब्दों में, मैं घने कुहासे में मार्ग भटक गया।

देरेनकोव ने नान का कारख़ाना खोलने का निर्णय किया। उसकी सारी तफ़सीलें तै कर ली गयीं और पेशगी हिसाब लगा कर देखा गया कि पैंतीस प्रतिशत मुनाफ़ा हुआ करेगा। मैं कारख़ाने में नान-बाई के सहायक का काम करूँगा। "दल का सदस्य" होने के नाते मेरा काम होगा नानबाई पर नज़र रखना ताकि वह आटा, अंडा, मक्खन या तैयार सामानों की चोरी न करने पाये।

और मैं नये नान कारख़ाने में आ गया। यह कारख़ाना भी एक मकान के सब से निचले हिस्से में था। पर मेरा पहला कारख़ाना बड़ा और गंदा था। यह छोटा और साफ़। इसकी सफ़ाई मेरे ही ज़िम्मे थी। पहले कारख़ाने में चालीस मज़दूरों का संघ काम करता था। यहाँ मेरा साबिक़ा केवल एक आदमी से था — वह था नानबाई या कारख़ाने का कारीगर। उसके बाल श्वेत हो चले थे; दाढ़ी छोटी और नुकीली

थी; चेहरा सूखा पतला और लगातार चूल्हे की आग के नज़दीक बैठने से झुराया हुआ। उसकी आंखें काली और चिंतनशील थीं। मुंह अजीब तरह का था जैसे मछली का। मोटे, मुलायम ओंठ बराबर इस तरह सटे रहते थे मानो कल्पनालोक में किसी को चुम्बन कर रहे हो। उसकी आँखों की अतल गहराई में व्यंग झलका करता था।

कहने की ज़रूरत नहीं कि वह सामानों पर चुपके से हाथ साफ़ किया करता था। पहली ही रात उसने दस अंडे, लगभग तीन फ़ुंट आटा और मक्खन का एक बड़ा सा टुकड़ा निकाल कर छिपा दिया। मैंने पूछा:

"इसका क्या होगा?"

"एक लड़की है बेचारी — उसी के लिये है," उसने बेतकल्लुफ़ी से जवाब दिया और फिर माथे पर शिकन डाल कर बोला: "बड़ी प्यारी सी लड़की है!"

मैंने उसे समझाना चाहा कि चोरी करना पाप है। किन्तु स्पष्ट है कि मेरी वाक्शक्ति पर्याप्त न थी। अथवा, सम्भव है कि मैं उसे जो समझाना चाहता था उसमें मेरी आस्था स्वयं ही कच्ची थी। बात जो भी रही हो, मेरे कहने का उसके ऊपर कोई असर नहीं हुआ।

वह आटे के सन्दूक़ के ढक्कन पर लेट गया और खिड़की के बाहर सितारों पर नज़र गड़ा कर बुदबुदाने लगा:

"क्या आदमी से पाला पड़ा है! एक दिन की जानपहचान है उसी में लगे मुझे लेकचर पिलाने। यह भी नहीं सोचा कि उम्र में मैं कुछ नहीं तो तिगुना हूंगा। क्या तमाशा है...।"

सितारों का उसका पर्यवेक्षण समाप्त हो चुका तो उसने मुझसे पूछा:

"इसके पहले तुम कहाँ काम करते थे? लगता है तुम्हें कहीं देखा है? कहाँ थे तुम—सेम्योनोव के कारखाने में? वही न, जहाँ एक बार दंगा हुआ था? नहीं? तो कहीं सपने में तुम्हें देखा होगा...।"

कुछ ही दिनों बाद मुझे पता चल गया कि यह आदमी सोने में हातिम है। सुबह हो, दोपहर हो या शाम वह मौक़ा पाते ही एक नींद ले लेता था। और सोने के लिये उसे चारपाई या कुर्सी पर लेटने की ज़रूरत नहीं थी। खड़ा-खड़ा भी वह नींद ले सकता था। चूल्हे में पाव-रोटी डालने वाली लकड़ी की बेंट पर भार देकर वह खड़ा ही खड़ा सो जाया करता था। सोते वक़्त उसकी भौंहें खिंच जातीं, और चेहरे पर व्यंग मिश्रित विस्मय का अनूठा भाव फैल जाता। उसकी बातचीत के दो प्रिय विषय थे—एक गढ़े खज़ाने और दूसरा स्वप्न। वह पूरे विश्वास के साथ कहा करता था:

"मैं धरती के आर-पार देख सकता हूं। जैसे लड्डू में मेवे भरे रहते हैं वैसे ही वह गुप्त खज़ानों से भरी हुई है। हर जगह सोने-चांदी के सिक्कों से भरे हंडे और सन्दूक़ गढ़े हुए हैं। कई बार सपने में मैंने ऐसी जगहों का पता लगाया है। एक बार एक गुस्लखाना था। मैंने सपना देखा कि उसी के एक कोने में एक सन्दूक़ में चाँदी की तश्तरियां गढ़ी हुई हैं। बस नींद खुलते ही मैं पहुंच गया वहाँ और लगा ज़मीन खोदने। रात का वक़्त था। थोड़ी

ही दूर खोदा होगा कि कोई चीज़ हाथ लगी। बूझ सकते हो क्या था—कोयलों का चूर और कुत्ते की खोपड़ी। मैं समझ गया कि ठीक खज़ाने पर पहुंच गया हूँ। लेकिन हठात् खिड़की पर कोई चीज़ आकर गिरी और वह चूर-चूर हो गयी। इतने में कोई मूर्ख औरत हल्ला मचाने लगी: "चोर! चोर! दौड़ो!" मैं भागा वहाँ से क्योंकि पकड़े जाने पर बड़ी मार पड़ती। सचमुच बड़ा तमाशा हुआ था उस दिन।"

"बड़ा तमाशा" उसका तकिया-कलाम सा था। पर हमारा नानबाई इवान कोज़मिच लुतोनिन हँसता नहीं था। हँसी की जगह उसके माथे पर शिकन पड़ जाती, नथुने फूल जाते और पलकें सिकुड़ जातीं जिनसे कुल मिला कर एक तरह का मुस्कुराहट का भाव लक्षित होने लगता।

उसके सपने वास्तविक जीवन से भिन्न नहीं होते थे—बल्कि वैसे ही नीरस और आमफ़हम। उनमें कल्पना की कुलाँच नहीं होती थी। मुझे समझ ही में नहीं आता था कि ऐसे सपनों को सुनाने में उसे क्या मज़ा मिलता है। तुर्रा यह कि जीवन की वास्तविकताओं की चर्चा उसे पसन्द न थी।

एक दिन चाय के एक धनी व्यापारी की लड़की ने इच्छा के विरुद्ध शादी होने के कारण विवाह समारोह समाप्त होने के बाद ही गोली खा कर आत्महत्या कर ली। इस घटना से पूरे नगर में हलचल मच गयी। हज़ारों नौजवान उसकी अर्थी के साथ जलूस बनाकर गये और विद्यार्थियों ने उसकी क़ब्र पर खड़े होकर भाषण दिये। आख़िर पुलिस ने आकर भीड़ को तितर-बितर किया। हमारी

दूकान में हर आदमी ज़ोर-ज़ोर से इसी कांड की चर्चा कर रहा था। दूकान के पीछे वाले कमरे में उत्तेजित विद्यार्थियों का मजमा लगा हुआ था। उनकी रोषपूर्ण आवाज़ कारखाने में सुनायी पड़ रही थी।

पर लुतोनिन बोला:

"छुटपन में ही लड़की को खूब पीटना चाहिए था"। और दूसरे ही क्षण लगा अपने सपने सुनाने। बोला:

"कल मैंने सपना देखा कि तालाब में मछली पकड़ रहा हूं। मैं बंसी डाल ही रहा था कि देखता क्या हूं कि पुलिस का सिपाही खड़ा है। वह डाँट कर बोला: 'ऐ! तुम्हें किसने इस तालाव में मछली मारने को कहा?' अब मैं भाँगू तो किधर? बस झट पानी में कूद पड़ा। और उसी वक़्त नींद खुल गयी...।"

इस तरह, वास्तविक जीवन की धारा मानो उससे अदृष्ट होकर ही बहा करती थी। फिर भी इस दूकान में कोई अनोखापन है, यह बात उससे छिपी नहीं रही। यहाँ बेयरा का काम किताब पढ़ने वाली लड़कियाँ किया करती थीं। उनमें एक तो खुद मालिक की बहन थी। दूसरी उसी की एक सखी थी—लम्बी, लाल गालों और सरस आँखों वाली। हर रोज़ दूकान में बहुत से विद्यार्थी आते थे और घंटों पीछे के कमरे में बैठ कर ज़ोर-ज़ोर से बहस या कोने में फुसफुस मंत्रणाएं किया करते थे। दूकान का मालिक शायद ही कभी आता था। और मैं, जो सहायक मात्र था, वस्तुतः मैनेजर की हैसियत रखता था।

एक दिन लुतोनिन ने पूछा:

"तुम मालिक के रिश्तेदार लगते हो? या, वह तुम्हें अपना बहनोई तो नहीं बनाना चाहता? नहीं? तब तो बड़ा तमाशा मालूम होता है। और ये जो कालिज के लड़के इतने इकट्ठे होते हैं यहाँ, वह किस लिये? लड़कियों के लिए? हूं...। यह हो सकता है। पर ये जो तुम्हारी लड़कियाँ हैं एक भी तो ऐसी नहीं है कि सूरत-शकल वाली हो। विद्यार्थी भाई लोग असल में दूकान की मिठाइयों पर हाथ साफ़ करने आते हैं—लड़कियाँ तो केवल बहाना हैं...।"

प्रायः रोज़ सवेरे पाँच-छ बजे के क़रीब एक लड़की कारखाने की खिड़की के पास आया करती थी। उसकी टाँगें छोटी-छोटी थीं और पूरा शरीर कूल्हे और छातियों का एक टीला सा था। वह ऐसी लगती थी जैसे तरबूज़ों से भरा बोरा। खिड़की के किनारे आकर वह बैठ जाती। उसकी नंगी टाँगें हवा में लटकने लगतीं। जम्हाई लेते हुए वह पुकारती:

"वान्या!"

माथे पर रंगीन रूमाल। उसमें से हलकी घुँघराली लटें बाहर निकल कर तंग पेशानी और लाल गालों पर लटकती रहतीं। लटें आँखों पर आ जातीं जिनमें रात की नींद की खुमारी भरी रहती थी। अपनी छोटी हथेलियों से, जिसकी उँगलियाँ नवजात बच्चे के हाथों की तरह बिथरी हुई थीं, वह उन्हें माथे पर कर लेती। मुझे आश्चर्य होता कि ऐसी लड़की से भला कोई आदमी क्या बातें कर सकता है। मैं नानबाई को जगा देता। वह उठ कर उससे पूछता:

"अच्छा! तुम हो?"

"हाँ, मैं हूँ।"

"रात में नींद तो आयी थी न?"

"नींद क्यों नहीं आयेगी?"

"सपना क्या देखा?"

"याद नहीं...।"

शहर अभी नींद में ही सोया पड़ा है। हाँ, किसी आँगन से मेहतर के झाड़ की खरखराहट सुनायी पड़ रही है। गौरैयों ने नींद से जाग कर अपनी चें-चें आरम्भ कर दी है। सूरज की प्यारी किरणें झुक कर खिड़की के शीशों में अपना प्रतिबिम्ब देख रही हैं। पौ फटने का नीरव काल मुझे अच्छा लगता है। खुली खिड़की से अपने बालदार हाथों को बाहर निकाल कर नानबाई लड़की की खुली टाँगों को मलने लगता। वह अन्यमनस्क सी, चुपचाप बैठी रहती। चेहरा भावहीन। केवल मेमनों जैसी सूखी आँखों का मिचकाना जारी रहता।

वह फिर मुझसे बोला:

"पेशकोव! मिठाइयाँ तैयार हो गयी होंगी। उतार लो चूल्हे से उन्हें।"

मैंने लोहे के तवे को चूल्हे से बाहर किया। उसमें से आठ-दस बुन, रौल और केक* लेकर उसने लड़की की गोद में डाल दिये। उसने एक गरमागरम बुन लेकर उसे हाथों में उछाला और भेड़ों जैसे अपने पीले दाँत उसमें गड़ा दिये। उसका मुँह जल गया और अधीर होकर सों-सों करने लगी।

---

*मिठाइयों के क़िस्म — अ०

नानबाई लालसाभरी निगाहों से उसके अंगों को देख रहा था। वह बोला:

"अरे छोकरी! घघरा नीचे कर ले अपना...।"

उसके चले जने के बाद उसने शेख़ी बघारते हुए मुझसे कहा:

"कैसे घुंघराले बाल हैं, देखा न? जैसे वसंत ऋतु आने पर भेड़ों के। मैं तो, भाई साहब, चुन कर छोकरियाँ फाँसता हूँ। पूरी वयस की औरतें मुझे पसन्द नहीं। हमें तो बस छोकरी चाहिए। यह मेरी तेरहवीं है। निकिफ़ोरिच की धर्मपुत्री लगती है।"

उसकी घमंड भरी बातों का क्रम इस तरह चलता जाता। और मैं सोचने लगता:

"और मैं? मेरी क्या यों ही कटेगी?"

बड़ी सफ़ेद रोटियाँ, जो सेर के हिसाब से बिकती थीं, तैयार हो जातीं तो दस-बारह को काठ की एक तख़्ती पर रख कर मैं देरेनकोव की दूकान जल्दी से ले जाता था। वहाँ रोटियाँ पहुंचाने के बाद लगभग दो पूड की एक टोकरी में बुन और रोल भर कर धर्म-शिक्षण संस्था को जाता था — भागता हुआ, ताकि विद्यार्थियों के नाश्ते के वक़्त पहुँच जाऊँ। भोजन के विशाल हाल के दरवाज़े पर खड़ा होकर मैं अपना माल बेचता था। कोई "नगद" लेता था, कोई "उधार"। मैं कान लगा कर उनकी आपसी बातचीत सुनता। वे तोलस्तोय और उनके सिद्धान्तों के विषय में तर्क करने लगते तो मैं एकाग्र होकर एक-एक शब्द सुनता। अकादमी के प्रोफ़ेसरों में से एक जिसका नाम गूसेव था, तोलस्तोय

और उनकी शिक्षाओं का कट्टर शत्रु था। प्रायः किसी खास छात्र को देने के लिये मेरी टोकरी में बुनों के नीचे किताबें छिपी होती थीं। कभी छात्र स्वयं कोई किताब या चिट्ठी मेरी टोकरी में डाल देते।

हफ़्ते में एक दिन मुझे अपना माल लेकर "पागलखाने" जाना पड़ता था। उन दिनों मानसिक रोगों के विशेषज्ञ बेख्तेरेव व्यावहारिक मानसिक रोग चिकित्सा का क्लास लेते थे। एक दिन उन्होंने छात्रों को एक ऐसा पागल दिखाया जिसे अपने को सभी से ऊँचा समझने की बीमारी थी। वह जिस वक़्त अस्पताल की सफ़ेद पोशाक और रात की टोपी पहने हुए क्लास में घुसा उसकी धजा देख कर मुझे हँसी आ गयी। मेरी बग़ल से गुज़रते हुए उसने एक क्षण रुक कर मेरी ओर ताका। मैं सहम गया। ऐसा लगा कि कोयले जैसी काली और शोलों की तरह दीप्त नज़र मेरे कलेजे में घुस गयी। क्लास में जितनी देर बेख्तेरेव का लेक्चर चलता रहा — लेक्चर के बीच-बीच में वह उस पागल से बड़े आदरपूर्वक बात करता जाता था — मैं अपना चेहरा सहलाता रहा। मुझे ऐसा लगा कि उस दृष्टि ने मेरे मुँह पर जलती राख मल दी है।

पगला बिलकुल दुबला-पतला और लम्बा था। वह नीरस स्वर में बेख्तेरेव से कुछ माँग रहा था। उसने तपाक से अपनी बाँह आगे फैला दी जैसे कोई शाहंशाह शाही फ़रमान सुना रहा हो। सूखे दुबले-पतले हाथ से आस्तीन नीचे सरक गयी। मुझे ऐसा लगने लगा कि उसका शरीर अस्वाभाविक रूप से खिंचता जा रहा है — लम्बा होता जा रहा है — और हाथ आगे बढ़ता जा रहा है। ऐसा मालूम हुआ कि वह कमरे जितना लम्बा हो गया और आकर मेरा गला

दबोच देगा। उसके चेहरे की एक-एक हड्डी दिखायी दे रही थी। आँखें गहरे गढ़े में धंसी हुई थीं। पर उनकी काली दीठ में ऐसी चमक और पैनापन था जैसे बरछी की नोक। खोपड़ी पर रात की गोल टोपी पहने वह मसखरा सा लग रहा था। क्लास में बैठे लगभग बीस विद्यार्थी एक टक उसे घूर रहे थे। कुछ के चेहरों पर हँसी थी, पर ज़्यादातर संजीदा और विचारमग्न थे। पगले की आँखों की शोलों जैसी चमक के आगे उनकी आँखें बिलकुल साधारण — — तुच्छ — मालूम पड़ रही थीं। उसे देखने से डर लगता था पर यह मानना पड़ेगा कि उसकी आनबान में अनोखापन था।

क्लास के सन्नाटे में अध्यापक की आवाज़ गूँज रही थी। जब वह कोई प्रश्न पूछते तो प्रतिध्वनि निर्जीव सफ़ेद दीवारों और फ़र्श के नीचे से टकरा कर लौटती। पगले के हिलने-डोलने में बड़े पादरी जैसा रोबीलापन था।

उस रात मैंने उसी के बारे में कविता लिखी जिसमें मैंने उसका वर्णन "शाहों का शाह, ईश्वर का मित्र और मंत्री" कह कर किया। उसकी सूरत मेरे मस्तिष्क में नाचती रही, बहुत दिनों तक मेरा संतुलन बिगड़ा रहा।

शाम के छ बजे से अगले दिन दोपहर तक मुझे लगातार काम करना पड़ता था। तीसरे पहर में सोता था। फलस्वरूप पढ़ने का वक़्त ही नहीं मिलता था। केवल आटा गूँधने तथा पाव-रोटी को चूल्हे में डालने के बीच थोड़ा समय मिल जाता था। पर यह चक्कर दिन भर चला करता था। ज्यों-ज्यों मैं काम सीखता गया नानबाई ज़्यादा से ज़्यादा काम मेरे ऊपर छोड़ने लगा। बहाना था

मुझे "काम सिखाने" का। वह ऐसा दिखावा करता मानो मेरे इतनी जल्दी काम सीखने से वह आश्चर्यचकित है। शाबाशी के लहजे में कहता :

"तुम खूब होशियार हो। साल-दो-साल में पक्के नानबाई हो जाओगे। यह भी खूब तमाशा रहेगा। तुम कारीगर बन जाओगे, पर तुम्हारे जैसे कम उम्र कारीगर की बात कौन सुनेगा ? कौन तुम्हारी हुकूमत मानेगा?"

किताबों का मेरा शौक़ उसे पसन्द न था। वह अपनापा जताते हुए मुझसे कहता :

"अब बन्द करो पढ़ना और जाकर थोड़ा आराम कर लो।" लेकिन यह उसने कभी नहीं पूछा कि मैं जो किताबें पढ़ता हूँ उनमें क्या लिखा है।

उसके लिये बस अपने सपने, गढ़े खज़ानों की धुन और वही ठिगनी गोल-मटोल लड़की काफ़ी थी। लड़की अक्सर रात में आया करती थी। वह उसे ड्योढ़ी में ले जाता जहाँ आटे के बोरे रखे थे। या, सर्दी होती तो पेशानी पर शिकन डाल कर मुझसे कहता :

"आध घंटे के लिए ज़रा बाहर चले जाओ।"

और मैं बाहर चला जाता, यह सोचता हुआ कि किताबों में वर्णित प्रेम तथा उसके प्रेम में कैसा ज़मीन-आसमान का अंतर है।

मेरे मालिक की छोटी बहिन दूकान के पीछे वाली छोटी कोठरी में रहा करती थी। मैं नियम से उसका समावार सुलगा दिया करता था, पर उससे जहाँ तक बन पड़ता कम मिलता। उसके सामने आने पर न जाने क्यों मुझे परेशानी सी होने लगती थी। उसकी

बच्चों जैसी आँखें ठीक पहले दिन की तरह टकटकी लगा कर मेरे ऊपर टिक जाती थीं। उसका इस तरह ताकना मेरे लिए असह्य हो जाता। उस दृष्टि की गहराइयों में एक मुस्कान छिपी रहती थी जिसमें मेरे प्रति व्यंग था। कम से कम मुझे ऐसा ही मालूम होता था।

मेरे शरीर में असाधारण बल था जिसकी वजह से मेरे चलने-फिरने में अजीब तरह का भोंड़ापन था। पाँच-पाँच पूड के आटे के बोरे मैं उठा लेता था। नानबाई बड़ी हमदर्दी के साथ कहता था:

"तुम अकेले में तीन आदमियों के बराबर ताक़त है। लेकिन यही है कि बेढंगे हो ज़रा! देखने में तो ऐसे पतले हो पर साँड़ जैसी ताक़त है...।"

इस वक़्त तक मैंने काफ़ी किताबें चाट ली थीं। कविता मुझे अच्छी लगती थी और मैं खुद भी कविताएँ करने लगा था। पर बोलने में किताबी शब्दों को इस्तेमाल करने के बदले मैं "अपना ही" भाषा बोलना पसन्द करता था। मैं जानता था कि मेरी बोली तल्ख़ है; पर मेरे विचारों में अभी बड़ा घपला था और उन्हें व्यक्त करने के लिए अपनी लट्ठमार भाषा ही मुझे उपयुक्त मालूम होती थी। कभी-कभी तो मैं जानबूझकर उद्दण्ड हो जाता था। ऐसा तब होता जब मेरा मन किसी चीज़ से खीझा रहता। वह कौन सी चीज़ होती यह मैं स्वयं नहीं बतला सकता।

मेरे एक गुरु ने, जो कालेज में गणित का छात्र था, इसके लिए एक दिन मेरी बड़ी भर्त्सना की। बोला:

"क्या बोली पायी है तुमने भी? लगता है जैसे पत्थर फेंक रहे हो!"

लड़कपन और जवानी की वयः संधि में आदमी की विचित्र मनोस्थिति होती है—किसी चीज़ से सन्तोष नहीं। मेरा भी यही हाल था। मुझे लगता जैसे सभी मेरी हँसी उड़ा रहे हैं। मुझमें परिष्कार नहीं है। अपनी सूरत-शकल के बारे में भी मैं हीनता महसूस करता था—गाल की हड्डियाँ बेतरह उभरी हुईं, बिलकुल काल्मिकों जैसी आकृति। और आवाज़ भी भारी—अनियंत्रित।

इसके विपरीत मेरे मालिक की बहन में चपलता और शोभा थी—जैसे फुदकती अबाबील। पर उसकी गोल-मटोल देह के साथ चपलता का मेल बैठता नहीं ज्ञात होता था। उसका हाव-भाव और उसकी चाल बनावटी मालूम होती थी। उसकी बोली में प्रसन्नता घुली हुई थी और वह बराबर हँसती रहती थी। लेकिन उसकी उन्मुक्त हँसी सुन कर मेरे मन में यही भाव उठता कि वह चाह रही है कि मैं उसकी उस अवस्था को भूल जाऊँ जिसमें मैंने पहले दिन उसे देखा था। और उस दिन वाला उसका भाव मैं भूलना चाहता नहीं था। असाधारण चीज़ों को मैं मस्तिष्क में धरोहर की तरह सँजो कर रखता था। मैं यह जानने को आकुल था कि असाधारण चीज़ें भी संभव हैं और संभव ही नहीं, उनका अस्तित्व है।

कभी-कभी वह पूछ बैठती:

"क्या पढ़ रहे हो?"

मैं संक्षेप में सवाल का जवाब दे देता। साथ ही मन में यह भी आता कि कह दूँ:

"मैं कुछ भी पढ़ता हूँ, तुमसे मतलब?"

एक दिन नानबाई अपनी प्रेमिका को प्यार कर रहा था। वह थोड़ा नशे में भी था। बोला:

"ज़रा बाहर चले जाओ। जाकर मालिक की बहिन के साथ थोड़ा मन बहलाते क्यों नहीं? ऐसा मौक़ा भी छोड़ा जाता है? तुम योंही रह जाओगे और विद्यार्थी लोग . . .।"

मैंने कहा कि फिर ऐसी बात ज़बान से निकाली तो खोपड़ी तोड़ दूँगा और जाकर ड्योढ़ी में आटे के बोरों पर बैठ रहा। दरवाज़े पर पूरा परदा भी नहीं था। अंदर से नानबाई की आवाज़ आयी:

"हम क्यों गुस्सा करें? जो दिन भर किताब चाटता रहेगा उसकी यह हालत होगी ही। चलता कैसे है—जैसे सनकी?"

ड्योढ़ी में चूहे इधर से उधर दौड़ रहे थे। अंदर लड़की की सी-सी सुनायी पड़ रही थी। मैं आंगन में निकल गया। बाहर फुहार पड़ रही थी—शांत, निशब्द। पर वर्षा से हवा में मादकता हो, ऐसी बात न थी, बल्कि किसी चीज़ के जलने जैसी की कड़ी गंध फैली हुई थी। कहीं वन में आग लगी थी। रात आधी से अधिक जा चुकी थी। दूकान के सामने वाले घर की खिड़कियाँ खुली थीं। कोठरी में बस इतनी ही रोशनी थी कि अंधेरा न रहे और उसके अंदर से गीत की धुन हवा पर तैरती बाहर आ रही थी:

सन्त वार्लामी के मुखमण्डल पर मुस्कान
दे रहे निज भक्तों को वरदान . . .।

मैंने कल्पना करने की कोशिश की—मारिया देरेनकोवा मेरी जाँघों पर लेटी हुई है, नानबाई की छोकरी की तरह। पर सारा

शरीर इस कुत्सित कल्पना से सिहर उठा। नहीं-नहीं! असंभव! यह विचार ही मेरे लिए भयानक था।

उधर गीत जारी था:

लगी हुई भक्तों की भीड़
वसाते सन्त सभी का नीड़ . . .

कई स्वर एक साथ गा रहे थे। उसमें एक का गला खूब मँजा हुआ था। पास ही एक खिड़की खुली हुई थी। मैंने घुटनों पर हाथ टेक लिया और झुक कर अंदर झाँकने लगा। खिड़की पर जालीदार परदा लगा हुआ था। उस पार एक वर्गाकार कमरा था जिसकी दीवारें भूरी सी दिखायी पड़ रही थीं। एक छोटे से लैम्प से, जिसके ऊपर नीले रंग का शेड लगा था, कमरे में हलकी रोशनी हो रही थी। एक लड़की लैम्प के सामने, खिड़की की ओर मुँह करके बैठी कुछ लिख रही थी। बीच में उसने सिर उठाया और अपनी लाल क़लम के सिरे से माथे से बाल की लटकती एक लट को ऊपर को फेंका। उसकी आँखें अधमुँदी थीं — चेहरे पर मुस्कान। चिट्ठी लिखना खतम हुआ। काग़ज़ को मोड़ कर उसने लिफ़ाफ़े में डाला और ओठ से चाट कर चिट्ठी बंद की। फिर लिफ़ाफ़े को मेज़ पर फेंक कर उसने उसकी ओर अपनी तर्जनी — मेरी कनिका से भी छोटी हिलायी। लेकिन कुछ सोच कर उसने ख़त को फिर उठा लिया, लिफ़ाफ़ा फाड़ कर उसे दुबारा पढ़ा और नये लिफ़ाफ़े में बंद कर मेज़ के पास खड़े-खड़े पता लिखने लगी। पता लिखने के बाद सुखाने के लिए वह ख़त को हवा में हिलाने लगी — युद्धविराम की श्वेत पताका की तरह। ख़त सूख गया तो पंजों के बल खड़ी होकर

नाचती और ताली बजाती वह पलंग की ओर जाकर आँखों से ओझल हो गयी। लौटी तो वह अपना ब्लाउज़ उतार चुकी थी। उसके कन्धे चिकने और गोल थे। लैम्प मेज़ से उठा कर वह फिर आँखों से ओझल हो गई। सचमुच, आदमी जब अपने को एकांत में समझता है तो अजीब तरह की हरकतें करता है, ऐसी हरकतें जिन्हें यों देखने वाला उसे दीवाना ही समझेगा। आँगन में चहलकदमी करता हुआ मैं इस लड़की के जीवन के बारे में सोचने लगा — कैसा विलक्षण जीवन बिताती होगी वह अपनी कोठरी में!

यही लड़की अपने मुलाक़ाती पीले-लाल बालों वाले छात्र के आने पर बिलकुल और ही बन जाती थी। वह बैठ कर धीमी आवाज़ में उससे कुछ कहता था जिसे सुनकर वह दब-सिकुड़ जाती थी। सहमी हुई आँखों से वह उसकी ओर देखती और अपने हाथों को पीठ के पीछे या मेज़ के नीचे छिपा लेती। मुझे पीले-लाल बालों वाला यह विद्यार्थी पसन्द न था। बिलकुल पसन्द न था।

नानबाई वाली छोकरी लड़खड़ाती हुई बाहर निकली — कंधों पर शाल लपेटा और बोली:

"अन्दर जाओ...!"

गूँधे आटे को पीढ़े के ऊपर डाल कर नानबाई अपनी प्रेमिका का बखान करने लगा — बड़ी दिव्य, हृदय को शीतल करने वाली है वह! पर मैं परेशान खड़ा था। मस्तिष्क में यह प्रश्न उठ रहा था:

"किधर जा रहा हूँ मैं?"

मुझे लगा कि शीघ्र ही कोई विपत्ति मेरे ऊपर पड़ने वाली है।

नान का कारख़ाना ख़ूब चल निकला। देरेनकोव उसके लिए

किसी बड़े मकान की तलाश में था। उसने एक और आदमी रखने का भी निर्णय किया। यह बहुत ही अच्छा हुआ क्योंकि मैं काम के बोझ से बेदम हो रहा था।

नानबाई ने मुझसे कहा:

"नयी जगह में तुम्हारा ओहदा प्रधान सहायक का रहेगा। मैं तुम्हारी तनख़ा भी बढ़ाने को कह दूंगा — दस रूबल महीना। क्यों?"

मुझे यह ओहदा क्यों दिया जा रहा है यह मैं अच्छी तरह समझ रहा था। नानबाई कामचोर था और मैं ख़ूब जी लगा कर काम करता था। थकान मेरे लिए फ़ायदे की चीज़ थी। उससे मानसिक बेचैनी और नारी सहवास की इच्छा जो प्रबलतर होती जा रही थी, दवी रहती थी। पर इसका दूसरा परिणाम यह भी हुआ कि मेरी पढ़ाई असंभव हो गयी।

इसपर नानबाई ने कहा:

"यह तुमने बहुत अच्छा किया। किताबें बेकार की चीज़ हैं — ज़हर। लेकिन यह तो बताओ — क्या सचमुच सपने तुम्हें नहीं आते? आते ज़रूर होंगे, पर तुम चुप्पे हो, इसलिए कहते नहीं! यह भी अच्छा तमाशा है। कह देने में क्या हर्ज है?"

वह हमेशा मुझसे बड़े मेल से बातें करता था। बल्कि ऐसा लगता था कि वह हृदय से मेरी इज़्ज़त करता है। हो सकता है इसके पीछे भय काम करता हो, क्योंकि मैं मालिक का अपना आदमी था। लेकिन इसकी वजह से वह चोरी करने से बाज़ आया हो, ऐसी बात न थी।

नानी की मृत्यु हो गयी। उसके मरने के सात हफ़्ते बाद चचेरे भाई की एक चिट्ठी द्वारा मुझको इसकी ख़बर लगी। संक्षिप्त

चिट्ठी में — जिसमें न कामा था, न फ़ुलस्टाप — मुझे सूचित किया गया था कि नानी गिर्जाघर में भीख माँगते समय ओसारे से गिर पड़ी और उसकी टाँग टूट गयी। आठ दिन बाद "घाव सड़ गया" और सारी देह में जहर फैल गया। बाद में मुझे पता चला कि मेरे दो ममेरे भाई और बहन — तीनों के तीनों हृष्टपुष्ट और सशक्त — अपनी संतान समेत, नानी की भीख की कमाई पर ही गुज़र कर रहे थे। उन्हें इतनी भी अक़्ल नहीं आयी कि डाक्टर बुला लेते।

चिट्ठी में लिखा था:

"हम लोगों ने उसे पेत्रोपावलोव्स्क के क़ब्रिस्तान में गाढ़ दिया जहां घर के दूसरे लोगों की क़ब्रें हैं अंतेष्ठि में हम लोग गये थे सभी भिखमंगे भी आये थे वे लोग दादी को बहुत चाहते थे सब रोने लगे बाबा भी रो रहे थे उन्होंने हम लोगों को खदेड़ दिया और अकेले उसकी क़ब्र पर बैठ गये हम लोग झाड़ी में छिप कर देखने लगे वह भी रो रहे थे वह भी जल्द मर जायगा।"

मैं रोया नहीं। पर ऐसा लगा कि समूची देह और आत्मा सर्द हो गयी है। उस रोज़ रात को मैं बाहर आंगन में लकड़ियों के एक ढेर पर बैठा हुआ था। जी में यही आ रहा था कि कोई मेरे पास बैठे जिसे नानी के बारे में बताऊँ — कितनी सहृदय, कितनी बुद्धिमान थी हमारी नानी। उसके विशाल हृदय में हर आदमी के लिए माँ जैसी ममता थी। नानी के बारे में बात करने की यह इच्छा बहुत दिनों तक बोझ की तरह छाती पर बैठी रही, पर कोई पात्र नहीं मिला और अंत में यह लालसा मन की मन ही में मुरझा गयी — अपूर्ण, असंतुष्ट।

इस घटना के बहुत दिनों बाद मैं चेखोव की शानदार कहानी पढ़ रहा था जिसमें बूढ़ा साईस अपने बेटे की मौत के बाद अपने घोड़े से बेटे की कहानियाँ कहता है। यह कहानी पढ़ने पर मुझे उन दिनों की याद हो आयी और पछतावा हुआ कि दुःसह व्यथा के उस अवसर पर मेरे पास बात करने को कोई घोड़ा या कुत्ता न था। मुझे अफ़सोस हुआ कि चूहों से मैंने बात करके जी हलका क्यों नहीं किया। कारख़ाने में चूहों की कमी न थी और उनके साथ मेरी पटती भी खूब थी।

पुलिस वाला निकिफ़ोरिच इन दिनों भूखे बाज़ की तरह मेरे गिर्द मंडराने लगा था। वह हट्टा-कट्टा अधेड़ आदमी था — छोटे-छोटे सफ़ेद बाल और दाढ़ी खूब चौड़ी जिसे वह सदा कंघी से संवार कर रखता था। वह मेरी ओर ऐसी लालचायी दृष्टि से ताका करता था जैसे बड़े दिन के तवाज़े के लिए मोटा किया हुआ बतख़ होऊँ मैं।

एक दिन उसने कहा:

"मैंने सुना है तुम्हें किताबों का बड़ा शौक़ है। भला मैं भी सुनूं कौन सी किताबें पढ़ते हो तुम? बाईबिल या संतों की जीवनी?"

निस्संदेह मैं बाईबिल और संतों की जीवनी दोनों से परिचित था। निकिफ़ोरिच को अचम्भा हुआ। वह अप्रतिभ भी हो गया मेरा उत्तर सुन कर।

"हूँ!! नेम-धर्म की किताबें पढ़ने की रोक नहीं है। लेकिन, भला काउँट तोलस्तोय की भी किताबें पढ़ी हैं तुमने?"

तोलस्तोय की कुछ किताबें मैं ने पढ़ी थीं पर वे नहीं जिनकी पुलिस वाले को खोज थी। सुन कर वह कहने लगा:

"बस! ये तो साधारण किताबे हैं। लेकिन और भी किताबें हैं तोलस्तोय की जिनकी इन दिनों लोगबाग बड़ी चर्चा करते हैं, जिनमें उसने पादरी पुरोहितों पर चोट की है। पढ़ने की असल चीज़ तो वही हैं।"

इन "और भी किताबों" को मैंने पढ़ा था—हाथ से नक़ल की हुई कापियों में। उनमें मेरा मन नहीं लगा था। लेकिन इन बातों की पुलिस वाले से चर्चा करना बेकार है, यह मैं जानता था।

उससे इसी तरह रास्ते में कई बार मुलाक़ात हुई। इसके बाद उसने मुझे अपने क्वार्टर में आने का न्याता दिया। बोला:

"किसी दिन आओ मेरे घर। साथ चाय पियेंगे।"

उसका मक़सद मैं खूब समझ रहा था—फिर भी जाना चाहता था। मैंने अपने उस्तादों से सलाह ली। तै पाया कि उसका न्योता टालना ठीक न होगा क्योंकि उससे अपने नान कारख़ाने के बारे में उसका संदेह बढ़ जाने का ख़तरा है।

अतः एक दिन मैं निकिफ़ोरिच के क्वार्टर में जा धमका। नीची दीवार का एक छोटा सा कमरा था जिसके एक-तिहाई में रूसी चूल्हा था। दूसरी तिहाई में एक दोहरी पलंग थी जिसपर कपड़े के परदे लटक रहे थे। पलंग के ऊपर चमकीले लाल ग़िलाफ़ वाले बहुत से तकिये रखे हुए थे। शेष कमरे में एक घनौची, एक मेज़ और दो कुर्सियाँ धरी थीं। कमरे में कुल एक ही खिड़की थी——छोटी सी। उसके नीचे लकड़ी की एक बेंच रखी हुई थी। निकिफ़ोरिच उसी के ऊपर बैठा सीने पर वरदी खोले और पूरी

खिड़की को पीठ से आड़ में किए बैठा हुआ था। मैं मेज़ के इस पार बैठा। उसी मेज़ पर उसकी बीबी थी—टीले सी छाती, लाल गाल, उम्र लगभग बीस साल। उसकी आँखों में, जिनका रंग अजीब नीला-भूरा था, शरारत और विद्वेष भरा हुआ था। वह अपने पुष्ट ओठों को बार-बार चपलता के साथ भींच रही थी। सूखी आवाज़ में भी विद्वेष का संकेत था।

पुलिस वाला बोला:

"मैंने सुना है कि मेरी धर्मपुत्री सेक्लेतेया आजकल तुम्हारे कारखाने का बहुत चक्कर लगाया करती है। एक नम्बर की बदचलन और बदमाश है वह छोकरी। सभी औरतों का यही हाल होता है—एक नम्बर की बदमाश।"

"सभी?" उसकी बीबी ने सवाल किया।

"हाँ! सभी की सभी! कोई ऐसी नहीं जो त्रिया-चरित्र नहीं करती हो!" निकिफ़ोरिच ने ज़ोर देकर कहा। ऐसा करते वक़्त उसके तमगे खनक उठे, जैसे गाड़ी में जुता घोड़ा अपना साज़ खनखनाता है। तश्तरी में ढाल कर चाय का घूँट लेते हुए वह मज़ा से दोहराता है:

"सभी औरतों का यही हाल है चाहे रंडी हो या रानी! त्रिया-चरित्र में वे एक-दूसरे के कान काटती हैं। शाहज़ादी शेबा दो हज़ार वर्स्ट का रेगिस्तान पार कर सोलोमोन बादशाह से मिलने गयी थी—मज़ा लूटने के लिए। हमारी ज़ारिना एकातेरिना को ही ले लो। लोग उसे "महान" की उपाधि देते हैं, तो किया करें, लेकिन थी वह...।"

और लगा वह तफ़सील के साथ ज़ारिना की कहानियाँ सुनाने। कैसे उसके महल का एक अदना नौकर एक रात ज़ारिना के साथ सोने के बाद फ़ौज में तरक़्क़ी पाकर बात की बात में सार्जेंट से जनरल हो गया।

उसकी बीबी एकाग्र होकर कहानी सुन रही थी और रह-रह कर अपने ओंठ चाट रही थी। बीच-बीच में वह मेज़ के नीचे से अपनी टाँग मेरी टाँगों में अड़ा देती थी। निकिफ़ोरिच की बातों का सिलसिला सम रूप से जारी था। वड़ा रस आ रहा था उसे इस चर्चा में। पर न जाने कब चर्चा का विषय एकदम बदल गया। वह बोला:

"अब यही ले लो--हमारे महल्ले में एक विद्यार्थी रहता है। विश्वविद्यालय के प्रथम वर्ष का। नाम है प्लेतुन्योव...।"

उसकी बीवी बीच ही में बोल उठी—लालसापूर्ण निश्वास के साथ:

"देखने में तो नहीं, पर मिज़ाज उसका बड़ा अच्छा है।"

"कौन अच्छा है?"

"मिस्टर प्लेतुन्योव।"

"औवल तो यह मिस्टर जो तुमने लगाया है उसकी कोई ज़रूरत नहीं। अभी पढ़ाई-लिखाई पूरी कर लेगा तब मिस्टर कहायेगा वह। तब तक जैसे सभी विद्यार्थी हैं, वैसा वह। हज़ारों की तरह। दूसरी बात यह है कि यह अच्छा क्या होता है? अच्छा तुमने उसे कहा, इसका क्या मतलब?"

"वह बहुत हंसोड़ है—मस्त जवान।"

"हँसोड़ तो सब से ज़्यादा सर्कस के मसख़रे होते हैं।"

"मसख़रे? वे तो किराये के हँसोड़ होते हैं।"

"चुप रह! दूसरे, कुत्ता भी पहले पिल्ला रहता है।"

"मसख़रे? वे तो बंदर होते हैं।"

"चुप रहने को कहा न मैंने तुम्हें? सुनायी नहीं दिया?"

"सुनायी क्यों नहीं दिया?"

"तब...।"

और वह चुप हो रही। निकिफ़ोरिच फिर मेरी तरफ़ मुख़ातिब होकर बोला:

"तो मैं प्लेतन्योव के बारे में बतला रहा था तुम्हें? इसमें बड़ा दिलचस्प माजरा है। तुम उससे जान-पहचान कर लो।"

संभवतः वह पहले ही मुझे उसके साथ देख चुका था। अतः मैंने कहा:

"उससे तो मेरी जान-पहचान है।"

"हूँ?..."

उसके स्वर में निराशा की झलक आ गयी। अचानक बेंच के ऊपर उसने करवट बदली और तमग़े फिर खनक उठे। मैं चौकन्ना हो गया क्योंकि मुझे मालूम था कि प्लेतन्योव साइक्लोस्टाइल मशीन पर परचे छापा करता है।

औरत ने अपनी टाँग मेरी टाँग से भिड़ा दी और बुड्ढे को चिढ़ाना जारी रखा। लेकिन वह पूरे तपाक में आ चुका था। उसने अपने शब्दभण्डार के मोती मेरे सामने यों सजा दिये जैसे मोर अपना मणिमण्डित पंख फैलाता है। लेकिन मेज़ के नीचे उसकी बीवी की

छेड़खानी जारी थी जिससे मेरा ध्यान बंट गया और विषय परिवर्तन का क्रम फिर मैं नहीं समझ सका। उसका स्वर धीमा हो गया था। क्योंकि वह वज़नदार बातें कह रहा था—हर शब्द तौल-तौल कर। बोला :

"जानते हो—एक अदृष्ट धागा है जिसमें सारी चीज़ें गुँथी हुई हैं।"

और विस्फारित नेत्रों से मेरी ओर एक टक देखने लगा मानो अचानक भयभीत हो गया हो। "मान लो कि हमारे बादशाह सलामत एक मकड़ी हैं...।"

"क्या बक रहे हो तुम?" औरत ने चीख कर टोका।

"तू चुप रह! गधी कहीं की! मैं श्रीमान की शिकायत नहीं कर रहा हूँ, केवल उपमा दे रहा हूँ। गंवार औरत! जा समावार साफ़ कर डाल।"

इसके बाद भौंहों को जोड़ कर और आँखें भींच कर वह फिर बड़ी संजीदगी से समझाने लगा मुझे:

"तो एक अदृष्ट धागा है। यों समझ लो कि मकड़ी का जाला। वह हुज़ूरवाला ज़ार अलेक्सान्द्र तृतीय, शहंशाह रूस, के उर से निकलता है। वहाँ से हुज़ूर के वज़ीरों से होता हुआ, गवर्नरों तक और फिर बड़े से छोटे हाकिमों तक होता हुआ मेरे तक और फ़ौज के अदना से अदना सिपाही तक चला जाता है। उस धागे की लपेट से कोई चीज़ बाहर नहीं है। इसी धागे की अदृष्ट शक्ति से सरकार की हुकूमत सदियों से चल रही है। केवल इंगलैंड की चालाक मलिका की घूस पर पलने वाले पोल, यहूदी और कुछ

रूसी लोग ही हैं जो जनता के नाम पर, जहाँ भी मौक़ा पाते हैं इस धागे को काटने की कोशिश कर रहे हैं।"

वह मेज़ पर झुक गया और मेरी ओर उपदेश के स्वर में फुसफुसाता हुआ कहने लगा:

"समझे न? अब यह भी समझ गये होंगे कि मैं क्यों ये बातें तुमसे कह रहा हूँ। मैंने नानवाई से तुम्हारी काफ़ी तारीफ़ सुनी है। वह तुम्हारे बारे में कह रहा था कि बड़े काम का लड़का है, बड़ा ईमानदार और स्वावलम्बी। तुम जानते ही हो तुम्हारी दूकान में विद्यार्थी लोगों का जमघट हुआ करता है। वे देरेनकोवा के कमरे में बड़ी रात तक बैठे रहते हैं। केवल एक लड़का हो उस लड़की के कमरे में तो बात समझी जा सकती है। उसमें राज़ की बात नहीं होगी। पर वहाँ तो पूरी मंडली जमती है। इसलिए ज़रूर इसमें कोई भेद है। मैं विद्यार्थियों की शिकायत नहीं करता। आज जो विद्यार्थी है, वही कल बड़ा अफ़सर हो जायगा। यों विद्यार्थियों में कोई बुराई नहीं। पर मुश्किल यह है कि वे पढ़ना छोड़ कर लगते हैं इधर-उधर की बातों में दिलचस्पी लेने और सरकार के दुश्मन उनके इस उतावलेपन से लाभ उठाते हैं। समझ गये न मेरा मतलब? और एक बात और जान लो...।"

लेकिन यह बात जानने के पहले ही दरवाज़ा खुला और एक बुड्ढा कमरे में दाख़िल हुआ—नाटा छोटा सा आदमी, लाल नाक और सिर पर घुँघराले केश जो चमड़े के फीते से बंधे हुए थे। उसके हाथ में वोद्का की बोतल थी और प्रगट था कि पेट के अन्दर भी काफ़ी मात्रा में वोद्का मौजूद है।

"आओ, एक बाज़ी शतरंज हो जाय," वह बोला और जवाब की प्रतीक्षा किये बिना ही लगी उसकी वाक्-धारा प्रवाहित होने।

"यह मेरे ससुर हैं," निकिफ़ोरिच बोला। उसके स्वर में स्पष्ट झुंझलाहट थी।

मैंने शीघ्र ही बिदाई ली। उसकी दुष्ट औरत मुझे दरवाज़े तक पहुँचाने अयी और चिकोटी काट कर बोली:

"देखो बादलों को! आग की तरह लाल लग रहे हैं!..."

लेकिन आसमान साफ़ था। सिर्फ़ एक कोने में बादल का एक छोटा सा सुनहला टुकड़ा दिखायी पड़ रहा था।

मैं अपने गुरुओं की शिकायत नहीं करना चाहता—बिलकुल नहीं—पर यह ज़रूर कहूँगा कि उपरोक्त शब्दों में राज्य-शासन के यंत्र की इस पुलिस वाले ने जो व्याख्या मुझे दी वह कहीं स्पष्ट और विशद थी। कहीं एक मकड़ी छिपी बैठी है, उसके मुँह से निकल कर "अदृष्ट धागे" चारों ओर छाये हुए हैं जिनमें जीवन का हर पहलू गिरफ़्तार है। यह मकड़जाल अब हमें हर चीज़ में स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा।

उस दिन रात को दूकान बंद हो जाने के बाद मालिकिन ने मुझे अपने कमरे में बुलाया। उसने बताया कि उसे पुलिस वाले से मेरी बातचीत का ब्योरा लेने का काम सौंपा गया है।

मैंने बातचीत की पूरी रिपोर्ट उसे दी। सुन कर, वह बोली:

"या ईश्वर!" और लगी चूहेदानी में गिरफ़्तार चूहे की तरह कमरे में तेज़ी से चक्कर लगाने और उद्वेग से सिर हिलाने। पूछा:

"नानबाई तुमसे भेद लेने की कोशिश तो नहीं करता? उसकी रखेली निकिफ़ोरिच की रिश्तेदार होती है न? इस आदमी को हटाना होगा।"

मैं दरवाज़े पर खड़ा उसे देख रहा था। मन में न जाने क्यों झुँझलाहट हो रही थी। "रखेली" शब्द का उसने इस तरह उच्चारण किया मानो कोई ख़ास बात न हो उसमें। मुझे यह अच्छा न लगा। न नानबाई को हटाने का उसका फ़ैसला ही मुझे रुचा। फिर वह बोली:

"बड़ी सावधानी से रहना चाहिये तुमको" और लगी मेरी ओर घूरने। उसकी उस दृष्टि के आगे, सदा की तरह, मुझे बेचैनी सी मालूम होने लगी। उसकी दृष्टि में जिज्ञासा का एक अनोखा भाव हुआ करता था—मानो कुछ सवाल कर रही हो मुझसे जिसे मैं नहीं समझ पाता हूँ। वह दोनों हाथ पीठ के पीछे बंधे मेरे सामने आकर रुक गयी और बोली:

"तुम हमेशा इस तरह उदास चेहरा क्यों बनाये रहते हो?"

"मेरी नानी की मृत्यु हो गयी है।"

इस जवाब से शायद उसे हँसी आयी। उसने मुस्कुराते हुऐ पूछा:

"नानी को बहुत ज्यादा प्यार करते थे तुम, क्या?"

"हाँ," मैंने कहा और बोला: "और कुछ काम है तुम्हें?"

"नहीं।"

मैं चला गया। और उस रात जो कविताएँ मैंने लिखीं उनमें एक पंक्ति बार-बार आ रही थी:

"तुम वह नहीं जो दिखाना चाहती हो!"

तै पाया कि विद्यार्थी लोग नान कारखाने में आना कम कर दें। अब उनसे मुलाक़ात होनी क़रीब-क़रीब बंद ही हो गयी। फल-स्वरूप किताबों में पढ़ी बहुत सी बातों के बारे में मैं जो प्रश्न पूछता था उनका अब मौक़ा नहीं मिलता था और बातें अस्पष्ट ही रह जाती थीं। अतः मैं अपने सवालों को कापी में उतारने लगा। एक दिन लिखते ही लिखते थकावट के कारण नींद आ गयी और नानबाई ने मेरी कापी पढ़ ली। मुझे उठा कर वह पूछने लगा:

"यह सब क्या लिखते रहते हो जी तुम? 'गैरिबाल्डी ने बादशाह को क्यों नहीं भगाया?' यह गैरिबाल्डी क्या है? और बादशाह को भगाना संभव है?"

गुस्से से कापी को आटा गूँधने के थाल पर पटक कर वह चूल्हे के पास चला गया और वहीं से बुदबुदाने लगा:

"देखिए हज़रत को—इन्हें बादशाह को भगाने वाला चाहिये! क्या तमाशा है! तुम्हारे ही जैसे किताबी कीड़ों की चार-पाँच साल पहले पुलिस वाले सारातोव में धरपकड़ कर रहे थे। निकिफ़ोरिच को यों ही तुम्हारे ऊपर शुबहा है। और पड़े हैं हज़रत बादशाहों के फेर में। गोली मारो अभी से इन बातों को। बादशाह कबूतर नहीं कि तुम्हारे जैसे छोकरे उन्हें उड़ाया करें।"

वह बुरी नीयत से नहीं बोल रहा था। मैं चाहता था कि उसके प्रश्नों का उत्तर दूँ पर दे नहीं सकता था—"खतरनाक विषयों" पर उसके साथ वार्तालाप करने की मुझे मनाही थी।

उन दिनों कोई नयी किताब आयी थी जिसका शहर में बड़ा शोर था। किताब हाथों-हाथ घूम रही थी और उसके ऊपर ज़ोरदार बहस आरम्भ हो गयी थी। पशुचिकित्सा कालेज के विद्यार्थी लावरोव से मैंने वह किताब अपने लिए भी ला देने को कहा। पर वह सिर हिलाता हुआ बोला:

"नहीं भाई, यह तो असंभव है। लेकिन शायद जल्द ही उसकी एक जगह संयुक्त पढ़ाई होगी। हो सका तो तुम्हें उसमें ले चलूँगा।"

"आरोहण दिवस" * को मैं अंधेरे में आर्स्कोये पोले से जा रहा था। आगे-आगे लावरोव था—अंधेरे को चीरता हुआ। उससे क़रीब पचास क़दम पीछे मैं था। मैदान एकदम सुनसान था। फिर भी, लावरोव के आदेशानुसार, कुछ "एहतियाती कार्रवाइयाँ" ज़रूरी थीं। मैं "शराब के नशे में चूर मज़दूर" बना हुआ था और सीटी बजाता, गाता और लड़खड़ाता जा रहा था। आकाश में बादलों के काले टुकड़े तैर रहे थे और उनमें सुनहले गोले जैसा चाँद आँखमिचौनी खेल रहा था। धरती छाया से ढकी हुई, गड्ढों में पानी भरा था। उनमें चाँद की तिरछी किरणें पड़कर दर्पण का रंग चमका रही थीं। शहर पीछे खड़ा कोलाहल कर रहा था।

धर्म-शिक्षण संस्था के नज़दीक फलों के एक बाग़ की चहार-दीवारी के पास पहुँच कर मेरा पथप्रदर्शक रुक गया। मैं तेज़ी से

---

* "एज़म्शन डे" जिस दिन माता मरियम के स्वर्गारोहण का त्योहार मनाया जाता है—अ०

बढ़ कर उसके पास पहुँच गया। हम दोनों चहारदीवारी लाँघ कर चुपके से बाग़ में दाखिल हुए। निगरानी न होने के कारण बाग़ में झाड़झंखाड़ उग आया था। पेड़ों की लटकती डालों से रगड़ खाते हम लोग आगे बढ़े। रगड़ खाने से टहनियों पर जमी सारी ओस हमारे ऊपर आ रहती थी। एक मकान की बंद खिड़की के पास पहुँच कर लावरोव ने धीरे से दस्तक दी। खिड़की की झिलमिली उठ गयी और किसी दाढ़ी वाले चेहरे ने बाहर झाँका। पीछे अंधेरा था और निस्तब्धता का साम्राज्य। आवाज़ आयी:

"कौन है?"

"याकोव के दोस्त।"

"खिड़की से आ जाओ अन्दर।"

भीतर घटाटोप अंधेरे में बहुत से लोग बैठे थे। कपड़ों की सरसराहट या पैरों के हिलने से ही इसका आभास मिलता था। कोई धीरे से खाँसा और किसी के फुसफुसा कर बातें करने की आवाज़ आयी। एक दियासलाई जल उठी जिससे मेरे चेहरे पर दो क्षण के लिए प्रकाश फैल गया। दीवारों से सटे कई लोग कमरे में बैठे थे।

आवाज़ आयी:

"सभी लोग आ गये?"

"हाँ।"

"खिड़की पर कोई कपड़ा डाल दो जिससे रोशनी बाहर न जाने पाये।"

किसी की फुंकार सुनायी पड़ी:

"कौन साहब हैं जिन्हें इस निर्जन सुनसान मकान में बैठक बुलाने की शानदार अक्ल सूझी थी?"

"धीरे! धीरे!" फुसफुसाहटभरी आवाज़ें आयीं।

किसी ने कोने में एक छोटा सा लैम्प जला दिया। कमरा एकदम खाली था—न कुर्सी, न मेज़, न पलंग। दो खाली बक्सों पर पटरा डाल कर पाँच आदमी एक दूसरे से सटे बैठे थे—खाने पर कौओं की तरह। एक और बक्स उलटा धरा था जिससे लैम्प रखने की मेज़ का काम लिया गया था। तीन जने दीवार से सटकर फ़र्श के ऊपर बैठे थे। खिड़की पर बड़े-बड़े बालों वाला एक नौजवान बैठा था—बिलकुल दुबला और रक्तहीन। इस जवान तथा दाढ़ी वाले को छोड़ कर सभी मेरे परिचित थे। दाढ़ी वाले ने कहा कि अब हम लोग गेओर्गी प्लेखानोव की, जो पहले नारोदोवोलेत्स* थे, लिखी "हमारे मतभेद" नामक पुस्तिका पढ़ेंगे।

किसी ने दीवार के पास के अंधेरे कोने से कहा:

"यह सब तो मालूम है हम लोगों को!"

इस रहस्ययुक्त वातावरण में मैं एक प्रकार की मीठी उत्तेजना अनुभव कर रहा था। यही खूबी है भेदभरे वातावरण की। वास्तव

---

* नारोदोवोलेत्स-नारोदनिक सभा का सदस्य। ग० प्लेखानोव रूसी मार्क्सवादी जो नारोदनिकों से नाता तोड़ चुके थे, उन्होंने इस पुस्तक में और इसके अलावा अपने दूसरे लेखों में भी यह साबित किया है कि नारोदनिकवाद को वैज्ञानिक समाजवाद से कोई वास्ता नहीं है। प्लेखानोव ने इस प्रकार नारोदनिकवाद की मात के लिए भूमि तैयार कर दी जिसे बाद में लेनिन ने बड़ी योग्यता से अंत को पहुंचाया।

में रहस्य से बढ़ कर दूसरा काव्य नहीं। नये धर्मों के अनुयायियों का कुछ ऐसा ही भाव होता है। मुझे ईसा के आरंभिक अनुयायिओं और उन भुईंधरों की याद आ गयी जो अपने विश्वास के कारण क़ैद किये जाते थे। दाढ़ी वाले का गहन गंभीर स्वर कमरे में गूंज रहा था — हर शब्द अलग, स्पष्ट।

कमरे में कोई फिर भिनभिनाया:

"वाहियात बातें हैं!"

कोने में बैठे आदमियों के सिर के पास, अंधेरे में, कहीं ताँबे का गोला टुकड़ा चमक रहा था। उसे देख कर मुझे ऐसा लगा जैसे रोमन योद्धा का शिरस्त्राण हो। थोड़ी देर के बाद मैंने महसूस किया कि वह ताँबा चूल्हे का ढक्कन था।

लोग लगे बातें करने। कमरे में गरम बहस की फुसकारी फैल गयी। यह पता लगाना मुश्किल हो गया कि कौन आवाज़ किसकी है। उसी वक़्त खिड़की से — ठीक मेरे सिर पर — कोई व्यंगपूर्ण स्वर में चिल्लाया:

"पहले यही तै कर लिया जाय — किताब पढ़ी जायगी या नहीं?"

यह बड़े-बड़े बालों वाले कृश युवक की आवाज़ थी। लोग चुप हो गये और फिर पढ़ने वाले का गंभीर स्वर गूंज उठा। अंधेरे में लोगों के हाथों में सिगरेटों के सिरे सुलग रहे थे। कभी-कभी कहीं माचिस जल उठती जिसके प्रकाश में विचार में डूबे चेहरे झलक उठते थे — भौं सोचने के कारण सिकुड़ी हुई अथवा आँखें विस्फरित।

पढ़ाई बहुत देर तक चलती रही और मैं थक गया सुनते-

-सुनते, यद्यपि उन चुभते विचारोत्तेजक शब्दों में जिन्हें सरल, सहज शैली में पिरो कर मन को जीतने वाले तर्क तैयार किये गये थे मुझे मज़ा आ रहा था।

इसके बाद हठात्, और अप्रत्याशित रूप से पढ़ने वाला रुक गया। कमरा रोषपूर्ण आवाज़ों से गूंज उठा:

"गद्दार!"

"बातूनी...!"

"शहीदों की क़ुरबानी के साथ विश्वासघात करने वाला!"

"गेनेरलोव और उल्यानोव जैसे फांसी का फंदा चूमने वालों के बाद...!"

और फिर खिड़की वाला नौजवान बोला:

"गाली-गलौज करने से क्या फ़ायदा? हमें इन बातों पर गंभीरता से बहस करनी चाहिए!"

बहस मुझे पसंद नहीं आती थी। न मैं उसे समझ सकता था। उत्तेजित वाक्धारा की गतिविधि का अनुसरण करना मेरे लिए दुष्कर प्रयास सिद्ध होता था। धारा का छिपी चट्टानों पर उछलना और हठात् दिशा परिवर्तन करना मेरे बोध से परे हो जाता था। और बहस करने वालों का नग्न अहंकार मुझे असह्य मालूम होता था।

खिड़की से झुक कर वही नौजवान मुझसे बोला:

"नान कारखाने के पेशकोव तुम्हीं हो न? और मैं हूँ फ़ेदोसीएव। हम दोनों को आपस में जान-पहचान कर लेना ज़रूरी है। यहाँ ठहरना अब बेकार है। यह हंगामा घंटों चलेगा और बिलकुल व्यर्थ। चलो हम लोग निकल चलें यहाँ से।"

मैं फ़ेदोसीएव तथा उसके द्वारा संगठित मंडल के बारे में सुन चुका था। वह संजीदा तबीयत के नौजवानों की टोली थी। इसके अतिरिक्त उसकी गहरी आँखों और पीले, ओजस्वी चेहरे ने भी मुझे आकर्षित किया।

हम लोग मैदान पार कर रहे थे। उसने मेरे जीवन के बारे में बहुत से प्रश्न किये: मज़दूरों में मेरे जान-पहचान के लोग हैं कि नहीं? कौनसी कितावें पढ़ी हैं मैंने? काम के बाद कितनी फ़ुरसत रहती है मुझे? आदि। वह बोला:

"तुम्हारे नान कारख़ाने के बारे में मैं सुन चुका हूँ। तुम भी किस चक्कर में फंसे हुए हो? कुछ होना-जाना नहीं है इन चीज़ों से।"

कुछ दिनों से मेरे मन में भी इसी ख़याल का उदय हुआ था—कुछ नहीं हासिल होने का है इससे। और मैंने उससे यही बात कही। उसे बड़ा संतोष हुआ इससे। चलते वक़्त उसने बड़े मेल के साथ मुझसे हाथ मिलाया—उसके चेहरे पर एक उन्मुक्त मुस्कान खेल गयी। उसने बतलाया कि दो-तीन दिनों में वह बाहर जायगा—लगभग तीन हफ़्तों के लिए। लौटने पर मुझे ख़बर देगा कि कहाँ और कैसे भेंट होगी।

कारख़ाने का काम बहुत मज़े में चल रहा था। पर मेरा जीवन और भार हो गया। हम लोगों को नयी जगह मिल गयी थी। और मेरी ड्यूटी बढ़ गयी। कारख़ाने के काम के अलावा, मुझे घरों में सामान पहुँचाना पड़ता और धर्म-शिक्षण संस्था एवं "भद्र घरानों की लड़कियों" के स्कूल में बुन और रौल वेचने का काम था सो अलग। मेरी टोकरी से बुन उठाते वक़्त ये भद्र लड़कियाँ कभी-कभी उसमें

चुपके से चिट्ठी डाल देतीं। अक्सर नफ़ीस काग़ज़ पर बचकानी लिखावटों में इन चिट्ठियों में ऐसी निर्लज्ज बातें होतीं कि मैं स्तब्ध रह जाता। चमकीले नयनों वाली, स्वच्छ निष्कलंक लड़कियों की टोली चपलतापूर्वक बातें करती, तरह-तरह से मुँह बनाती और अपनी गुलाबी रंगी उँगलियों से सामानों को उलटती-पुलटती मेरी टोकरी को घेर लेती। मैं सोचता था, इनमें कौन होगी वह जिसने चिट्ठी में मुझे ऐसी फाश बातें लिखी हैं—ऐसी बातें जिनका असली अर्थ शायद उसे खुद नहीं मालूम। मुझे न जाने क्यों उन गर्हित "साँत्वना-गृहों" की याद आ जाती और मैं मन में सोचने लगता:

"वही 'अदृष्ट धागा' कहीं उन अड्डों से यहाँ तक तो नहीं पहुँचा हुआ है?"

एक श्यामा, जिसका यौवन भरपूर निखर चुका था और घने काले केशों की वेणी पीठ पर लोट रही थी, एक दिन मुझे हाल में रोक कर जल्दी-जल्दी मेरे कान में बोली:

"यह चिट्ठी पहुँचा दो तो तुम्हें दस कोपेक मिलेगा।"

उसकी काली कोमल आँखों में आँसू छलक आये। उसने दाँतों से ओंठ काट लिया और बोलते वक़्त चेहरा और कान लाज से लाल हो गये। दस कोपेक लेना मैंने उदारतापूर्वक अस्वीकार किया और चिट्ठी ले ली। वह एक विद्यार्थी को लिखी गयी थी जो उच्च न्यायालय के किसी जज का लड़का था—दुबला-पतला, लम्बा, चेहरे पर क्षयरोगी की सी आभा। उसने मुझे देने के लिए खुदरा पचास कोपेक निकाले और लगा उन्हें गिनने। पर उसका ध्यान कहीं और था। मैंने कहा मुझे कोपेक नहीं चाहिए तो उसने उनको जेब में डालने के लिए हाथ किया पर हाथ काँप रहे थे और वे खनखनाते हुए फ़र्श पर आ रहे।

शून्य दृष्टि से वह सिक्कों का फ़र्श पर लुढ़कना देखता रहा, और हाथ मलता रहा। मलते-मलते उसकी उँगलियाँ कड़कड़ा उठीं और वह दीर्घ निश्वास छोड़ कर बोला:

"अब क्या होगा? तो विदा! पर मुझे सोचना होगा क्या करूँ...।"

उसके सोचने का क्या निष्कर्ष निकला मुझे नहीं मालूम। पर युवती के लिए मुझे बहुत दुख हुआ। कुछ ही दिनों बाद वह स्कूल से लापता हो गयी। लगभग पंद्रह वर्ष बाद उससे मेरी फिर मुलाक़ात हुई। उस वक़्त वह क्रीमिया में मास्टरनी का काम कर रही थी। उसे क्षयरोग ने ग्रस लिया था। उसका पूरा दृष्टिकोण जीवन की हर चीज़ के प्रति विद्वेषपूर्ण विरक्ति से भरा हुआ था। ज़ीवन में गहरी ठेस खाने वालों का जो हाल हुआ करता है उसी का शिकार थी वह।

बिक्री का काम समाप्त करके मैं थोड़ी देर सोता था। शाम को मिठाइयाँ पकती थीं और मुझे कारख़ाने में फिर काम करना पड़ता था। इन मिठाइयों की आधी रात के वक़्त ज़रूरत पड़ती थी जब नाटकघर, जहाँ अब हमारी दूकान थी, छूटता था क्योंकि नाटकशाला में जाने वाले बाहर निकलने पर 'बुन' खाने दूकान में आ जाया करते थे। यह काम खतम होने पर सवेरे की पाव-रोटी और रौल के लिए आटा गूँधना पड़ता था। पंद्रह या बीस पूड आटा रोज़ गूँधना हँसी-खेल न था।

इसके बाद दो-तीन घंटे के लिए मैं फिर सोता था। उठने पर नया दिन फिर आरम्भ।

यही सिलसिला था हर रोज़ का।

पर "शाश्वत, न्याय एवं बुद्धि" का प्रसार करने की मेरी इच्छा प्रबल और दुर्धर्ष थी। स्वभाव का मैं मिलनसार और कहानी कहने में उस्ताद था। इस काम में मेरे व्यक्तिगत अनुभवों तथा किताबों से मुझे पूरी मदद मिली थी। मेरी कल्पना में चार चाँद लग गये थे। साधारण से साधारण, तुच्छ से तुच्छ घटना को लेकर मैं मनोरंजक कहानी का रूप दे लेता था जिसके कथानक का आधार होती "अदृष्ट-धागे" की नयी-नयी पेंचें। क्रेस्तोवनिकोव कारखाने और आलाफ़ुज़ोव मिल के बहुत से मज़दूर मेरे मुलाक़ाती थे। ख़ास कर निकिता रुब्त्सोव नामक बूढ़े बुनकर से मेरी बहुत घनिष्ठता थी। वह हुनरमंद, अनुभवी मज़दूर था जो कभी एक स्थान पर नहीं टिका। रूस में शायद ही कोई कपड़े की मिल थी जिसमें वह काम न कर चुका हो।

वह प्यार से मुझे "ढरकी" और "टीज़ल"* कहा करता था:

"मेरे प्यारे अलेक्सी, मेरे मक्सिमिच, मेरी नन्हीं ढरकी, मेरी टीज़ल!" उसकी भूरी आँखें सदा आयी रहती थीं और वह बराबर काले चश्मे का व्यवहार करता था। आँखों में मुस्कान के साथ अपनी मंद आवाज़ में वह कहता:

"सत्तावन वर्ष हो गये मुझे दुनिया देखते हुए, मेरे प्यारे!" उसके चश्मे की कमानी कब की टूट चुकी थी। उनकी जगह ताँबे

---

*कपड़ा मिल का एक प्रकार का औज़ार जिससे मज़दूर काम करते हैं—अ०

के तार बंधे हुए थे जिनसे कानों और नाक के ऊपर हरे-हरे मोरचे का दाग़ लग जाता था। उसके बुनकर साथी उसे "जर्मन" कहा करते थे क्योंकि वह दाढ़ी मुड़वा दिया करता था। चेहरे पर केवल निचले ओठ के नीचे श्वेत बालों का एक कड़ा गुच्छा था और कड़ी-कड़ी मूँछें। उसकी छाती चौड़ी और क़द मंझोला था। व्यक्तित्व से मलिन खुशदिली टपकती थी।

अपने घुटे हुए सिर को एक ओर इतना झुका कर कि वह बायें कंधे को छूने लगता वह कहता :

"मुझे सर्कस बहुत पसंद है। ताज्जुब होता है कि वे घोड़े तक को इतनी अच्छी तरह कैसे सिखा देते हैं। घोड़े तो आखिर जानवर ठहरे। फिर भी उनका करतब देख कर माथा झुका लेना पड़ता है। मैं तो सोचता हूँ कि जब घोड़े सीख सकते हैं तो क्या आदमी को हर जगह अपने भेजे का इस्तेमाल करना नहीं सिखाया जा सकता? ज़रूर इसका भी कोई उपाय होगा ही। जानवरों को तो सर्कस वाले मिसरी खिलाकर क़ाबू में कर लेते हैं। लेकिन आदमी? उसे तो मिसरी बाज़ार में मिल जाती है। दरअसल उसे दूसरे क़िस्म की मिसरी दरकार है—पेट की नहीं—आत्मा की मिसरी। उस मिसरी का नाम है—उदारता, सहृदयता। इसीलिए मैं कहता हूँ, मेरे नौजवान दोस्त, कि दुनिया में सारे काम उदारता से पूरे हो सकते हैं—डंडे से नहीं जैसा कि अभी का दस्तूर है। क्यों?"

वह स्वयं उदार नहीं था। लोगों से बात करने का उसका ढंग ऐसा था कि खामखाह आदमी बुरा मान जाए—ताने और तिरस्कार के साथ। बहस करते वक़्त वह बीच-बीच में ऐसी आवाज़ें निकालता

था जिससे बोलने वाला खामखाह् अपमान महसूस करने लगता था। पहले-पहल मेरी उससे मुलाक़ात बियर की एक भट्टी में हुई थी। उसकी हरकतों से उत्तेजित होकर पास बैठे लोग उसे मारने पर अमादा थे। उस वक़्त बीच-बचाव करके मैंने ही उसे बचाया।

पतझड़ का मौसम था और बाहर पानी बरस रहा था। भट्टी से बाहर निकल कर अंधेरे में हम लोग चले तो मैंने उससे पूछा:

"ज्यादा चोट तो आपको नहीं लगी?"

"चोट क्या लगेगी? उन्हें मारने का तरीक़ा मालूम ही नहीं है," उसने उदासीनता से उत्तर दिया। "पर तुम मुझे क्यों 'आप' बोलते हो?"

हम दोनों की दोस्ती उसी दिन से हुई। पहले तो वह मेरी खूब चुटकी लिया करता था। लेकिन एक दिन जब मैंने उसे अपनी ज़िंदगी में "अदृष्ट धागे" की भूमिका बतलायी तो वह बड़ा प्रभावित हुआ। बोला:

"यार! तू बेवक़ूफ़ नहीं मालूम होता! क्या लाजवाब बात कही है तूने आज! वाह!,"

और उस दिन से मेरे प्रति उसका सलूक बदल गया। अब वह मुझे बेटे की तरह मानने लगा। पेशकोव की जगह अब वह मुझे अलेक्सी और मक्सिमिच कह कर पुकारने लगा। वह कहता:

"शाबाश मेरे अलेक्सी! क्या शानदार विचार हैं तेरे। बिलकुल दुरुस्त! वाह रे मेरे लम्बू, मेरे टकुआ! लेकिन कौन मानेगा उन्हें? कोई नहीं। क्योंकि उनसे मुनाफ़ा नहीं सीधा हो सकता...।"

"ख़ैर आप तो मानते हो न?" मैंने कहा।

"मेरे मानने से क्या हुआ। मैं तो हड़का कुत्ता हूँ। और वह भी दुमकटा। हड़के कुत्ते की क्या हैसियत? यहाँ तो ज़माना पालतू कुत्तों का है—गृहस्थी वालों का, दुम वाले तो हैं वे। शानदार झबरी बाँकी दुम—बीबी है, बच्चे हैं, घर-बार है, साज़ो-सामान हैं। और हर कुत्ते को अपना थान प्यारा होता है। वे क्या तुम्हारे इन ख़यालात का स्वागत करेंगे? कभी नहीं। एक दफ़े हम लोगों को भी ऐसी ही सूझी थी। उन दिनों मोरोज़ोव मिल में था मैं। लेकिन जो लोग अगुआ बने उनकी खोपड़ी पर ऐसी बेभाव की पड़ी कि छठी का दूध याद आ गया। साला सिर भी बेजगह बना हुआ है। पेंदे में होता तो कोई बात थी—पर यह है कि लगा हुआ है सब से ऊपर। इसलिए उसपर जब बेभाव की पड़ती है तो क्या मजाल कि जल्दी बता भी सके आदमी!"

मगर याकोव शापोश्निकोव से मुठभेड़ होने के बाद दादा का स्वर बदल गया। याकोव शापोश्निकोव क्रेस्तोवनिकोव के कारखाने में फिटर था। उसे क्षय की बीमारी थी। उसे गितार का अच्छा रियाज़ था और बाईबिल में भी पारंगत समझा जाता था। वह जिस वक़्त ईश्वर के अस्तित्व के बारे में घनघोर नकार प्रगट करने लगता उस वक़्त रुब्त्सोव अवाक रह जाता। याकोव बड़े जोश के साथ अपनी दलीलें पेश करता। मुँह से सड़े फेफड़े के लाल टुकड़े थूक के साथ फेंकता जाता और हाथ झटकारते हुए अपनी बहस जारी कर देता वह। कहता:

"मेरी बात सुनो! पहली बात तो यह है कि आदमी भगवान की नक़ल नहीं—'मनुष्य के भगवान का प्रतिबिम्ब तथा उसी के ढाँचे में रचित होने' की बातें बेकार हैं! बिलकुल बेकार! कहते हैं भगवान ज्ञानवान है। लेकिन यहाँ? यहां तो ज्ञान के नाते सिफर हैं। भगवान, कहते हैं कि शक्तिवान है? लेकिन यहाँ शक्ति के नाते क्या है? कुछ नहीं। और कहते हैं कि भगवान बड़ा नेक है। लेकिन नेकी के नाते भी अपने राम बिलकुल शून्य हैं। दूसरे, या तो भगवान को पता नहीं कि ज़िन्दगी कैसा पहाड़ है; या उसे पता है और वह कुछ नहीं कर सकता; या, कर सकता है पर करना ही नहीं चाहता। तीसरे, भगवान न सर्वज्ञानी है, न सर्व-शक्तिमान और न दयावान। वह है ही नहीं। यह सारा का सारा ढकोसला है। बिलकुल मनगढ़ंत। हमारी सारी ज़िंदगी ढकोसला है। पर बच्चू लोग मुझे नहीं ठग सकते!"

रुब्त्सोव पहले तो बिलकुल अवाक रह गया। उसका कंठ भी नहीं खुला। इसके बाद गुस्से से काँपता लगा गालियाँ बकने। लेकिन याकोव से पार पाना कठिन था। उसने बाईबिल के हवाले पेश करने शुरू कर दिये। रुब्त्सोव बिलकुल निरुत्तर हो गया और सिर झुका कर सोच में डूब गया।

शापोश्निकोव जब ईश्वर के विरुद्ध अपना जिहाद छेड़ देता था उस वक़्त उसकी तेज़-तर्रार मूर्त्ति के आगे किसी की मजाल न थी कि खड़ा रह सकता। उसका सुघड़ चेहरा साँवला था; केश कंजड़ों जैसे काले और घुँघराले। बोलते वक़्त उसके दाँत भेड़ियों की तरह चमकने लगते और नीले ओठ नाग की तरह बल खाते

ऊपर उठते और नीचे गिरते। आँखें शोला बन कर विरोधी को यों घूरतीं जैसे जला कर क्षार ही कर देंगी उसे। उनकी दीठ के आगे टिकना कठिन था। मुझे वे आँखें उस पगले की याद दिला देती थीं।

याकोव के यहाँ से लौटने के बाद रुव्त्सोव अत्यन्त खिन्न होकर बोला:

"आज तक किसी ने मुझसे ईश्वर के ख़िलाफ़ बात नहीं की थी। आज जैसी बातें तो मैंने सुनी ही नहीं थी। इस दुनिया में बहुत देखा है, बहुत सुना है, पर आज जैसी चीज़—नहीं। यह आदमी ज्यादा दिन बचेगा नहीं। और यह अफ़सोस की बात है। उसकी हालत है बिलकुल लोहे जैसी—धिका कर लाल कर लिया है अपने को...। लेकिन जो भी कहो,बात कहता है बड़े पते की!"

शीघ्र ही याकोव के साथ उसकी बहुत मुहब्बत हो गयी। क्षय के रोगी उस फिटर की बातों से उसमें नवीन उत्तेजना का संचार होता था जो दिल के अँदर से पहाड़ी सोते की तरह बह निकलती। वह अपनी सूजी आँखों को बार-बार खुजलाते हुए हँस कर कहता:

"यह भी ठीक हुआ, यार। अल्लाह मियाँ को निपटा दिया तूने। अब कहो ज़ार के बारे में क्या कहते हो, प्यारे! मुझसे पूछो तो मैं कहूँगा कि ज़ार-वार की मुझे परवाह नहीं। मुसीबत सारी जार से नहीं, मालिकों से है। ज़ारों से मैं निपट लूँगा—बला से इवान ग्रोज़नी ही क्यों न हो। मैं तो कहूँगा, भैया बैठे रहो अपनी गद्दी पर और करो बादशाहत अगर बादशाहत करने में ही

तुम्हें आराम मिलता है। लेकिन मालिकों से मुझे निपट लेने दो—इसमें मत दखल दो तुम, भाईजान! अगर इतना करो तो मैं तो तुम्हें सिंहासन में सोने की सीकड़ से बाँध दूँ कि कभी अलग ही न हो उससे, और वहीं बैठा कर पूजता रहूँ तुम्हें...।"

"क्षुधा रानी" पढ़ने के बाद उसने कहा:

"यही तो बात है। बेशक!"

पहले-पहल उसे साइक्लोस्टाइल किया हुआ परचा मिला तो वह बोला:

"किसने लिखा है, यार, इसे? क्या खरी-खरी कही है—बिलकुल दो टूक। मेरी ओर से लिखने वाले को शुक्रिया कह देना।"

रुबूत्सोव को ज्ञान की अमिट भूख थी। शापोश्निकोव के ईश्वर विरोधी तर्कों को वह आतुर और एकाग्र होकर सुनता मानो एक-एक शब्द को पी रहा हो। वह घंटों बैठा किताबों के संबंध में मेरी बातें सुना करता था। सुनते-सुनते भाव-विभोर होकर वह बच्चों की तरह किलकारी भरता और कहता:

"वाह! वाह! आदमी का दिमाग़ भी क्या लाजवाब चीज़ है!"

आँखों के कारण वह खुद नहीं पढ़ सकता था। लेकिन उसे बहुत सी बातों की अच्छी जानकारी थी और अक्सर मुझे चकित कर देता था। एक दिन बोला:

"जर्मनी में एक बढ़ई है जिसका ग़ज़ब का तेज़ दिमाग़ है। खुद बादशाह उसे सलाह लेने के लिए बुलाया करता है।"

थोड़ी जिरह करने पर ज्ञात हुआ कि वह बेबेल के बारे में बोल रहा था।

"तुम्हें उसके बारे में कैसे मालूम?"

"मुझे मालूम है," उसने अपना सिर खुजलाते हुए संक्षिप्त उत्तर दिया।

शापोश्निकोव को ज़िन्दगी की चहलपहल और समस्याओं में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उसे बस एक ही धुन थी—ईश्वर का सफ़ाया और पादरियों की मिट्टी पलीद करने की। वह भिक्षुओं से सब से ज़्यादा नफ़रत करता था।

एक दिन रुबत्सोव ने कहा:

"याकोव,यार, एक बात बता! क्या बात है कि तू सदा ईश्वर के पीछे हाथ धो कर पड़ा रहता है और दूसरी चीज़ों की फ़िक्र नहीं तुझे?"

इसपर उसने सदा से अधिक कटु होकर जवाब दिया:

"तू ही बता, दूसरी कौन चीज़ है मेरे रास्ते का रोड़ा? है कोई और चीज़ उसके सिवा? प्रायः बीस साल मैं आँख मूँद कर उसमें विश्वास करता रहा, उसके डर से डरता रहा और दुनिया की सारी मुसीबतें मूक होकर सहता रहा, क्योंकि उसके विषय में शंका भी करना गुनाह कहा जाता था। जो तकलीफ़ है, मुसीबत है—सभी उसकी मर्ज़ी से। इस तरह ज़िंदगी नागपाश में कटी। इसके बाद मैंने बाईबिल को ज़रा ग़ौर से पढ़ना शुरू किया। तब देखता क्या हूँ कि सारा का सारा मामला ही ढकोसला है—शुरू से आख़िर तक ढकोसला, निकिता!"

अपने हाथों को झुलाते हुए—मानो "अदृष्ट धागे" को काट डालने के लिए—उस ने कहना शुरू किया और आँखों में आँसू भर आये:

"उसी के कारण आज अकाल मृत्यु के मुँह में पड़ा हुआ हूं—ज़िन्दगी गंवा कर!"

मेरे और भी कई जानपहचानी थे—एक से एक दिलचस्प। अक्सर मैं पुराने साथियों से मिलने सेम्योनोव के बिसकुट कारख़ाने भी चला जाया करता था। उन्हें सदा मुझसे मिल कर और मेरी बातें सुनकर ख़ुशी होती थी। पर रुब्त्सोव एडमिरल्टी स्लोबोदा में और शापोश्निकोव काबान के उस पार तातारों के मुहल्ले में रहता था। यानी एक दूसरे से लगभग पाँच वर्स्ट दूर। अतः उनसे बहुत ही कम मुलाक़ात होती थी। वे मेरे यहाँ आ ही नहीं सकते थे क्योंकि उन्हें बैठाने-उठाने के लिए मेरे पास जगह न थी। इसके अलावा, नये नानबाई की, जो फ़ौज से हटाया सिपाही था, पुलिस वालों से खासी घनिष्ठता थी। हमारे कारख़ाने के ठीक पीछे पुलिस के सिपाहियों की बारिक थी। "नीली वरदी वाले" तगड़े जवान अक्सर खाई लाँघ कर अपने अफ़सर, कर्नल गाँगार्द के लिए मिठाइयाँ और अपने लिए पाव-रोटी लेने आया करते थे। इसके अलावा मुझे ऐसा कुछ करने की मनाही थी जिससे पुलिस की निगाह में आ जाऊं और नानबाई की दुकान पर उनका शक बढ़ जाय।

मैं स्पष्ट देख रहा था कि मेरे काम में कोई तुक नहीं रह गयी है। व्यावहारिकता से शून्य, मित्र मंडली के लोग तिजोरी से जब जितना जी में आता रुपये निकाल लेते थे। और यह आदत बढ़ती ही जा रही थी। हालत यहाँ तक पहुंच गयी थी कि कभी-कभी आटे वाले को चुकता करने के लिए भी तिजोरी में रुपये

नहीं रहते थे। देरेनकोव अपनी दाढ़ी खींचता हुआ उदासपूर्ण हंसी हंस कर कहता:

"देख लेना हमें, जल्दी ही दिवाला निकल जायगा इस दूकान का।"

उसकी समस्याएं भी बढ़ती जा रही थीं। रक्तकेशी नास्त्या को बच्चा होने वाला था। नागिन की तरह फुंकार छोड़ती थी। उसकी हरी आंखों में सारी दुनिया के प्रति अभियोग का भाव था।

आंद्री के सामने वह यों निकल जाती मानो देखा ही नहीं उसको। वह दोषी की भाँति दाँत निपोर कर उसका रास्ता छोड़ देता और जब वह पार हो जाती तो निश्वास छोड़ कर उसकी पीठ पर दृष्टि गड़ा देता।

प्राय: वह मुझसे शिकायत करने लगता:

"बिलकुल बचपना हो रहा है, भाई। जिसे जो हाथ लगता है ले लेता है। क्या तुक रह गयी है इस चीज़ में? उस दिन अपने लिए आधा दर्जन पायताबे ख़रीद कर लाया था—लेकिन घर लाना था कि छहों जोड़े उड़ गये हाथोहाथ।"

हँसी आती थी पायताबों की कहानी सुन कर। पर मैं हँसा नहीं। स्वार्थहीन, सरलस्वभाव देरेनकोव ने इस उपयोगी कार-बार को चालू रखने के वास्ते अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया था। लेकिन यार लोग थे कि कुछ सोचने-समझने की ज़रूरत ही नहीं महसूस करते थे। वे लुटा कर ख़तम कर देने पर तुल गये थे बनी-बनायी चीज़ को। देरेनकोव जिन लोगों की सेवा कर रहा

था उनसे कृतज्ञता की अपेक्षा नहीं थी उसे। लेकिन हमदर्दी का सलूक—दोस्ताना व्यवहार— पाने का अधिकार उसे अवश्य था। पर यहाँ तो उसका अभाव था। उसका परिवार छिन्न-भिन्न होता जा रहा था। बाप को विलक्षण मानसिक बीमारी हो गयी थी। छोटा भाई शराब और इश्क़बाज़ी के चक्कर में पड़ गया था। बहिन मानो घर में एक अजनबी थी। पीले-लाल बालों वाले विद्यार्थी के साथ उसका प्रेम चल रहा था—असफल, अभागा प्रेम। अक्सर उसकी आँखें रोने के कारण सूजी रहा करती थीं। मैं उस विद्यार्थी से नफ़रत करने लगा।

मारिया देरेनकोवा के साथ मुझे खुद प्रेम हो गया ज्ञात होता था। इसके अलावा मैं नादेज्दा शेरबातोवा के प्रेम के फंदे में भी गिरफ़्तार था। वह हमारी दूकान में ही काम करती थी—दोहरी देह, लाल गाल, और भरे ओठों वाली, जिनके ऊपर सदा मधुर मुस्कान की वक्र रेखा खिंची रहा करती थी। मेरे ऊपर आम तौर से आशिक़ी का भूत सवार था। मेरी उम्र, मेरा चरित्र और मेरा विशृंखल जीवन—सभी का यह तक़ाज़ा था कि मैं नारी संसर्ग की खोज करूँ। ऐसी बात न थी कि यह नवीन मानसिक प्रवृति समय से पहले उदित हुई हो—बल्कि देर से ही आयी थी वह। नारी के कोमल सान्निध्य की—कम से कम नारी के मैत्रीपूर्ण सद्भाव की—मुझे आवश्यकता थी। मैं चाहता था कि कोई ऐसी हो जिससे खुल कर अपने बारे में बातें कर सकूँ; जो मेरे उलझे विचारों को, मस्तिष्क में चक्कर लगाने वाली विविध अनुभूतियों को, सुलझाने और संवारने में मेरी सहायता कर सके।

मेरा कोई घनिष्ठ मित्र न था। जो लोग मुझे "परिष्कार करने योग्य कच्चा मसाला" समझते थे, उनके प्रति स्वभावतः मेरा खिंचाव न था। न वे ही मुझे खुलने का बढ़ावा देते थे। उनकी दिलचस्पी के विषय नियत थे। उन विषयों के बाहर मैं कोई प्रसंग छेड़ने की कोशिश करता तो वे फ़ौरन कह बैठते:

"अभी तुमको इन बातों के चक्कर में पड़ने की ज़रूरत नहीं है!"

गूरी प्लेत्न्योव गिरफ़्तार करके सेंट पीटर्सबर्ग के "क्रॉसों वाले" जेल में भेज दिया गया। यह ख़बर निकिफ़ोरिच ने मुझे दी। एक दिन तड़के ही रास्ते में उससे भेंट हो गयी। वह पटरी पर सामने से चला आ रहा था, किसी विचार में डूबा हुआ। सीने पर सारे तमग़े खनखना रहे थे। ऐसा मालूम हो रहा था मानो परेड से लौट रहा हो। बग़ल में आने पर उसने हाथ उठा कर सलाम किया और बिना कुछ कहे पार हो गया। लेकिन आगे बढ़ जाने के बाद यकायक रुक कर अपनी रूखी, कर्कश आवाज़ में बोला:

"गूरी अलेक्सान्द्रोविच कल गिरफ़्तार हो गया।"

इसके बाद एक बार चोरी से चारों ओर नज़र डाल कर हाथों को हताश ढंग से झुलाता हुआ, वह धीमे स्वर में बोला:

"बरबाद हो गया बेचारा।" उसकी धूर्त आंखों में आंसू जैसी कोई चीज़ चमक उठी।

प्लेत्न्योव गिरफ़्तारी की आशंका कर रहा था। यह मुझे मालूम था। उसने मुझे अपने से दूर ही रहने की चेतावनी दी थी और रुब्त्सोव को भी आगाह कर देने को कहा था। रुब्त्सोव को वह भी मेरी ही तरह प्यार करता था।

आँखें ज़मीन पर गड़ाये, निकिफ़ोरिच शुष्क स्वर में बोला:

"आजकल आते नहीं हो मेरी तरफ़?"

उस दिन शाम को मैं उसके क्वार्टर गया। वह अभी सोकर उठा था और पलंग पर बैठ कर क्वास पी रहा था। उसकी बीबी खिड़की के ऊपर झुक कर उसकी पतलून मरम्मत कर रही थी।

घने लोमों से आच्छादित छाती खुजलाते हुए उसने मेरी ओर ध्यानमग्न मुद्रा में देखना शुरू किया और बोला:

"यही तो बात है। हज़रत पकड़े गये। उसके पास से एक तसला निकला जिसमें वह बादशाह के ख़िलाफ़ परचे छापने के लिए स्याही तैयार किया करता था।"

ज़मीन पर खखार फेंकने के बाद वह अपनी बीबी पर गुर्राया:

"ला पतलून दे इधर!"

"एक मिनट में," उसने सिर उठाये बिना ही जवाब दिया।

औरत की ओर आंख से इशारा करते हुए बुड्ढा बोला:

"इसे उसके लिए बड़ा अफ़सोस है। दिन भर रोती रही है। अफ़सोस क्या मुझे नहीं है? लेकिन बादशाह की ताक़त के आगे एक मामूली विद्यार्थी की भला क्या बिसात है?"

कपड़े पहन कर वह बोला:

"मैं अभी आता हूँ...। तब तक तू समावार सुलगा ले।"

उसकी बीवी प्रतिमा की तरह बैठी रही—खिड़की से बाहर नज़र गड़ाये। लेकिन ज्यों ही उसकी पीठ फिरी वह फुर्ती से घूमी और दरवाज़े की ओर मुक्का तान कर बोली:

"शैतान बुड्ढा कहीं का! थू!" उसका स्वर तीखा और तल्ख था।

रोते-रोते उसकी आँखें सूज गयी थीं। बायीं आँख पर नीले दाग़ थे और चेहरे का वह भाग सूज जाने से आँख मुँद सी गयी थी। वह उठ कर चूल्हे के नज़दीक गयी। समावार के पास, वह तेज़ होकर बोली:

"ठहर जा तू—मैं भी ऐसा छकाऊँगी तुझे कि याद रखेगा जन्म भर। ऐसा फेर में डालूँगी कि छठी का दूध याद आ जायगा। तुम उसकी बातों में मत आना—भूल कर भी नहीं! वह तुम्हें भी फंसाने के फेर में है। वह सरासर झूठ बोलता है। वह क्या अफ़सोस करेगा किसी के वास्ते। उसे तो शिकार चाहिये, शिकार। तुम्हारे बारे में उसे सब कुछ मालूम है। उसका पेशा ही यह है—आदमी का शिकार खेलना...।"

वह मेरे नज़दीक आ गयी और दीन याचना के स्वर में बोली:

"मेरे ऊपर रहम नहीं करोगे?"

यह औरत गन्दी लगती थी मुझे। पर अपनी एकमात्र उपयोगी आँख में ऐसा दर्द भर कर उसने मेरी ओर ताका कि मैं रोक न सका अपने को। मैंने उसकी कमर में हाथ डाल दिया और उसके उलझे बालों को सुलझाने लगा। वे मोटे और मैल से भरे थे। मैंने पूछा:

"आजकल वह किसका पीछा कर रहा है?"

"रिबनोर्यादस्काया सड़क के बोर्डिंग में कुछ लोग हैं उन्हीं का।"

"नाम क्या है उनका?"

वह मुस्करा कर बोली:

"तुम्हारे सवाल उसे बता दूँ, तब? यह लो आ ही गया वह...। बेचारे गूरी को इसी ने पकड़वाया।"

और मेरे नजदीक से भाग कर वह चूल्हे के पास चली गयी।

निकिफ़ोरिच अपने साथ रोटी, मुरब्बा और वोद्का लाया। हम लोग चाय पीने बैठ गये। उसकी बीबी मरीना मेरी बग़ल में बैठी थी और विशेष प्यार से—खूब पूछ-पूछ कर—मुझे खिला रही थी। उसकी एकमात्र उपयोगी आँखों की स्निग्ध दृष्टि मेरे चेहरे पर गड़ी हुई थी। उधर उसका पति उपदेश दे रहा था मुझे:

"अदृष्ट धागा" लोगों के कलेजे के भीतर, हड्डियों तक के अँदर, समाया हुआ है। किसकी मजाल है कि उसे नोच कर अलग कर सके या उखाड़ सके? ज़ार तो भगवान की तरह है, लोगों के लिए।"

हठात् उसने प्रश्न किया:

"तुम तो इतनी किताबें पढ़े हुए हो। इंजील पढ़ी है कभी? अच्छा तो बताओ क्या खयाल है तुम्हारा: उसके अन्दर जो लिखा है क्या वह सब सही है?"

"यह कैसे कह सकता हूँ मैं।"

"मेरा तो खयाल है कि उसमें बहुत सारी बेकार की बातें लिखी हुई हैं। मसलन, भिखारियों को ही ले लो। लिखा है: 'जो मुहताज हैं उन्हें प्रभु का वरदान है,' भला कौन सा वरदान है भिख-मंगों के ऊपर? इस तरह की बातें बेतुकी हो जाती हैं ज़रा। और कुल मिला कर देखो तो ग़रीबों के बारे में जो कुछ लिखा है वह स्पष्ट नहीं। ग़रीब भी दो तरह की होती है—एक जो मुहताज है, और दूसरे वह जो मुहताज हो गया है। मुहताज आदमी भला किस काम का? हाँ जो मुहताज हो गया है उसके बारे में अलबत्ता कह सकते

हैं कि क़िस्मत की मार पड़ी है उसपर। इन बातों को इस ही दृष्टि से देखना बेहतर है।"

"क्यों?"

वह कुछ देर चुप बैठा रहा। उसकी आँखें मुझे पढ़ने की कोशिश कर रही थीं। मौन भंग कर उसने फिर बोलना शुरू किया—हर शब्द का स्पष्ट उच्चारण करते हुए, तौल-तौल कर। ज़ाहिर था, इन विचारों के पीछे गहन चिन्तन छिपा था।

"इंजील में करुणा का गीत गाया गया है। पर करुणा हानिकर वस्तु है। मेरा तो, भाई, यही ख़याल है। करुणा का मतलब क्या होता है? यह कि बेकार लोगों के ऊपर, प्रायः ऐसे लोगों के ऊपर जो हानिप्रद हैं, ढेर से रुपये बरबाद किये जायं—और मोहताजख़ाने, जेलख़ाने और पागलख़ाने खोलने में रुपये जायं। मदद दरअसल उनकी होनी चाहिये जो शक्तिवान हैं, स्वस्थ हैं, ताकि उन्हें छोटी-छोटी चीज़ों में अपनी शक्ति का अपव्यय न करना पड़े। लेकिन यहाँ तो उलटा ही मामला है। लोग सहायता करते हैं तो कमज़ोरों की। कमज़ोर क्या तुम्हारी सहायता करने से शक्तिवान हो जायगा? लेकिन नहीं; लोग उलटी ही हाँकते हैं। नतीजा क्या होता है? शक्तिवानों की शक्ति बेकार खर्च हो जाती है और कमज़ोर उनके ऊपर घुड़सवारी करते हैं। असली समस्या यही है। इसी तरह हम लोग बहुत सी बातों में लीक पीटते चले आ रहे हैं। उन्हें बदलना होगा अब। दिमाग़ से काम लेना होगा। इंजील में जब की बातें लिखी गयी हैं तब से ज़माना बहुत बदल चुका है। ज़िन्दगी का सिलसिला दूसरा ही है अब। इस प्लेत्न्योव को ही ले लो। इसी करुणा के

रहते उसका यह हाल हुआ। लोग भिखमंगों और अपाहिजों को दान बाँट देते हैं। पर विद्यार्थियों का कोई पुरसाँहाल नहीं—वे गड्ढे में गिरते हैं तो गिरें। किसी को परवाह नहीं उनकी। बस यही दिमाग़ है जिसके चलते ऐसी चीज़ें होती हैं।"

ऐसे विचारों से मुझे पहले भी पाला पड़ चुका था। लोग उन्हें असाधारण या अनूठा समझते हैं, पर दरअसल वे काफ़ी पुराने और व्यापक हैं। हाँ, इतना पैना विश्लेषण करके आज से पहले किसी ने उन्हें मेरे सामने नहीं पेश किया था। सात साल बाद मैं नित्शे को पढ़ रहा था। उस वक़्त कज़ान के इस पुलिस वाले का जीवन-दर्शन मुझे याद आ गया—उसका प्रत्येक शब्द। और, चलते हुए मैं यह भी कह दूँ कि किताबों में मुझे कोई भी ऐसा विचार नहीं मिला जिससे वास्तविक जीवन में कहीं न कहीं मेरी भेंट न हो चुकी हो।

बुड्ढा "शिकारी" बोलता चला जा रहा था। साथ ही उसकी उँगलियाँ चाय की किश्ती पर ताल देती जा रही थीं। उसके दुबले-सूखे चेहरे तथा माथे पर बल पड़ा हुआ था, लेकिन उनका रुख मेरी ओर न था। वह ताँबे के समावार में घूर रहा था जो दर्पण की तरह चमाचम कर रहा था।

उसकी बीवी ने दो बार उसे याद दिलाया:

"ड्यूटी का वक़्त हो गया है।" पर उधर ध्यान न देकर वह विचारों की डोरी में शब्दों का गजरा गूँथता चला जा रहा था।

हठात्, बातों का क्रम बदल गया और वह मुझसे बोला:

"तुम मूर्ख नहीं हो, पढ़े-लिखे भी हो। नान कारखाने में मज़दूरी करना तुम्हें शोभा नहीं देता है। इतना रुपया—बल्कि उससे भी अधिक—तो तुम ज़ार की एक और सेवा करके कमा सकते हो...।"

मैं उसकी बातें सुन रहा था। पर मेरा ध्यान कहीं और था। मैं सोच रहा था किस तरह रिब्नोर्यादुस्काया में रहने वाले उन अपरिचित लोगों को सावधान किया जाय कि निकिफ़ोरिच उनका पीछा कर रहा है। उस बोर्डिंग में सेर्गेई सोमोव नामक एक आदमी रहता था जो हाल ही में कई वर्ष यालुतोरोव्स्क में निर्वासित रह कर लौटा था। मैंने उसके बारे में बहुत सी दिलचस्प बातें सुन रही थीं।

पुलिस वाले का बोलना जारी था:

"समझदार आदमियों को मिल कर रहना चाहिए—छत्ते में मधुमक्खियों या बर्रों की तरह। ज़ार की हुकूमत...।"

"घड़ी तो देखो ज़रा। नौ बज गये," औरत ने कहा।

"अरे बाप!" कह कर निकिफ़ोरिच उठ खड़ा हुआ और लगा जल्दी-जल्दी कोट के बटन लगाने।

"गाड़ी ले लूँगा। अच्छा सलाम, मेरे नौजवान दोस्त! फिर आ जाना कभी...।"

क्वार्टर से बाहर निकल कर मैंने निश्चय कर लिया कि अब फिर उसके यहाँ नहीं आऊँगा। उसकी बातें बड़ी दिलचस्प होती थीं, पर घिन आती थी उसे देख कर। करुणा से नुक़सान होने की उसकी बात ने मुझे परेशानी में डाल दिया था। एक-एक शब्द दिमाग़ में जाकर बैठ गया था और भुलाये न भूल रहा था। उनके अंदर

मुझे सचाई का अंश दिखायी दे रहा था, पर पुलिस वाले के मुँह से अक़्लमन्दी या सचाई की बातें निकलें, यह चीज़ खल रही थी।

इस विषय पर अक्सर विवाद चला करते थे। एक विवाद की मुझे विशेष याद है, क्योंकि उसने मानो थप्पड़ मार कर मेरा मानसिक संतुलन नष्ट कर दिया था।

उन दिनों एक "तोलस्तोयवादी" अपने शहर में आया हुआ था। किसी "तोलस्तोयवादी" से यह मेरी पहली मुलाक़ात थी। वह लम्बा आदमी था—हड्डियाँ उभरी हुईं, साँवला रंग, बकरे जैसी काली दाढ़ी और हबशियों जैसे मोटे ओंठ। उसकी पीठ झुकी हुई थी, जिससे ऐसा लगता था मानो ज़मीन को झाँक रहा हो। पर कभी-कभी झोंक से वह अपना अधगंजा मस्तक पीछे फेंक कर ऊपर देखने लगता। उस वक़्त उसकी काली, नम आँखों की तेज़ चमक कलेजे में उतर जाती। उन आँखों में बिजली जैसी तेजी थी और सदा घृणा की ज्वाला सुलगती रहती थी। विश्वविद्यालय के एक प्रोफ़ेसर के घर गोष्टी हुई। उसमें बहुत से नौजवान लोगों ने भाग लिया। एक पादरी की मुझे खास तौर से याद है—नाटा, छरहरा नौजवान, खूब साफ़-सुथरी वेष-भूषा। उसने धर्म-शिक्षण विद्यालय से एम० ए० किया था। पादरियों के काले रेशमी चोग़े में उसके सुघड़ चेहरे की गोराई और भी निखर रही थी। उसकी सर्द, भूरी आँखों में ठंडी मुस्कान थी।

तोलस्तोयवादी बड़ी देर तक इंजील में निहित अनूठे ज्ञान एवं उनकी शाश्वतता पर व्याख्यान देता रहा। उसका स्वर नीरस था। वाक्य संक्षिप्त और पूर्ण विराम युक्त। पर शब्दों में दृढ़ता थी एवं उनसे सच्चा विश्वास लक्षित होता था। उसका रोएँदार बायाँ हाथ

रह-रह कर, हवा को चीरता, ऊपर से नीचे आता था। दाहिना हाथ जेब में था।

मेरे नज़दीक ही किसी ने फुसफुसा कर कहा:

"ऐक्टर है, ऐक्टर।"

"हाँ, नाटक जैसी मुद्रा बना रहा है...।"

कुछ ही दिन पहले मैंने—सम्भवत: ड्रेपर की लिखी—एक किताब पढ़ी थी जिस में विज्ञान के विरुद्ध कैथलिक धर्म के संघर्ष का वर्णन किया गया था। उसमें मैंने प्रेम की शक्ति द्वारा पृथ्वी का उद्धार करने वाले कट्टरपंथियों की चर्चा पढ़ी थी जो करुणा की विशुद्ध प्रेरणा से प्रेरित होकर अपने पड़ोसी की बोटी-बोटी काट सकते हैं। तोलस्तोयवादी मुझे उन्हीं में ज्ञात हुआ।

वह सफ़ेद क़मीज़ पहने हुआ था जिसकी आस्तीन ख़ूब चौड़ी थी। उसके ऊपर एक ढीलाढाला भूरा नाटा कोट था। इस पोशाक के कारण ही वह कमरे में बैठे अन्य लोगों से भिन्न मालूम होता था। व्याख्यान समाप्त करते हुए वह ज़ोरदार स्वर में बोला:

"अत: मैं आप लोगों से साफ़ प्रश्न करूँगा—किसमें विश्वास करेंगे आप, ईसा मसीह में या डारविन में?"

कमरे के एक कोने में नौजवान लोग बैठे थे—नवयुवक और नवयुवतियाँ। उनके विस्फारित नेत्रों में व्याख्यान सुनते वक़्त बारी-बारी से आतंक एवं आनन्द विह्वलता के भाव आ-जा रहे थे। वक्ता का यह प्रश्न उनके बीच पत्थर के ढेले की तरह आ गिरा। ऐसा लगा कि सभी उसके भाषण से सक्ते में आ गये थे। सभी सिर झुकाये विचारों में डूबे हुए थे, एक-दम मौन। मशाल की

तरह बलती निगाहों से कमरे को बुहारता हुआ वह कठोर स्वर में बोला :

"कपटी और ढकोसलेबाज़ फ़ैरिसी* ही होंगे जो इन परस्पर-विरोधी सिद्धान्तों का समन्वय करने का प्रयत्न करेंगे। वास्तव में उनके जैसा निर्लज्ज कोई नहीं जो ऐसे प्रयासों द्वारा अपने को तो ठग ही रहे हैं दूसरों को भी व्यर्थ फंदे में फंसा रहे हैं।"

नाटा पादरी उठ खड़ा हुआ। उसने बड़ी नफ़ासत से अपनी आस्तीनों को समेटा और चेहरे पर कृत्रिम मुस्कराहट लाकर भाषण देने लगा। उसकी वाक्-धारा में प्रवाह था और विष से बुझी विनम्रता :

"आपकी बातों से पता चलता है कि फ़ैरिसी लोगों के विषय में आम तौर से एक गंवारू धारणा जो फैली हुई है—और जो न केवल भोंड़ी है बल्कि नितांत ग़लत भी है—आप भी उसी में विश्वास करते हैं...।"

और वह लगा तर्क करने कि जूडीआ की जनता के धर्मशास्त्रों के वास्तविक वफ़ादार संरक्षक फ़ैरिसी लोग ही थे और जनता ने अपने शत्रुओं के मुक़ाबले में सदा उन्हीं का अनुसरण किया। मैं उसके तर्क से अवाक हो गया। वह बोला :

"उदाहरण के लिए, फ़्लेवियस जोज़ेफ़ को पढ़िये क्या लिखा है उसने...।"

---

* फ़ैरिसी—यहूदियों का पुराना मत जो धार्मिक परम्पराओं और धर्मग्रंथों के लिखित शब्दों को ही ब्रह्मवाक्य मान कर चलता है—अ०

तोलस्तोयवादी उछल कर उठ खड़ा हुआ। तेज़ी से हाथों को भाँजते हुए उसने फ़्लेवियस को मानो एक ओर ठेल दिया और गरज कर बोला:

"जनता का क्या हाल पूछते हो? वह तो अब भी अपने दोस्तों के ही ख़िलाफ़ हो जाती है और दुश्मनों के पीछे चलने लगती है। लोग अपनी मर्ज़ी से काम नहीं करते, उन्हें तो हांका जाता है, उनसे ज़बरदस्ती काम कराया जाता है। तुम्हारे फ़्लेवियस को मैं कुछ नहीं समझता।"

इसके बाद पादरी तथा अन्य शास्त्रार्थियों ने मिल कर मूल प्रश्न की खाल उधेड़ना आरम्भ किया। अंततः मूल विषय ही बहस के अंदर से लापता हो गया।

"सत्य ही प्रेम है," तोलस्तोयवादी ने ज़ोर देकर कहा। उसकी आँखों से नफ़रत और हिक़ारत की चिनगारियाँ फूट रही थीं।

शब्दों के उन छलकते प्यालों ने मुझे बेहोश कर दिया। अब मुझे उनका अर्थ ही नहीं समझ में आ रहा था। शब्दों के उस बवंडर में पड़ कर मेरे पाँवों के नीचे की धरती डगमगाने लगी। मुझे रह-रह कर अपने ऊपर ग्लानि हो रही थी—ओफ़। मैं ही कैसा जाहिल और मन्दबुद्धि हूँ कि ऐसी प्रकाण्ड बातों का सिर-पैर भी नहीं पकड़ पाता।

तोलस्तोयवादी का चेहरा रक्तवर्ण हो रहा था। उससे पसीने को पोंछता हुआ वह गरज कर बोला:

"मारो गोली इंजील को। तभी झूठ बोलना खतम होगा आदमी का। ईसा को एक बार फिर सूली चढ़ा दो। ईमानदारी का यही तक़ाज़ा है।"

हमारे सामने एक अथाह प्रश्न उठ खड़ा हुआ:

"यदि जीवन धरती पर सुख के हेतु निरंतर संघर्ष का नाम है तो करुणा और प्रेम क्या इस संघर्ष में राह के रोड़े नहीं?"

मैंने तोलस्तोयवादी के नाम और ठहरने की जगह का पता लगाया। क्लोप्स्की उसका नाम था। दूसरे दिन शाम को मैं उससे मिलने गया। वह दो नवयुवतियों के यहाँ ठहरा हुआ था। देहात में उन नवयुवतियों की ज़मींदारी थी और शहर में भी अपनी कोठी। एक पुराने विशाल जम्भीरी नीबू के पेड़ के नीचे मेज़ लगी थी और तोलस्तोयवादी दोनों युवतियों के साथ वहीं बैठा हुआ था। दुबला, उभरी हड्डियाँ, सारी देह में कोने निकले हुए, सफ़ेद वस्त्र, क़मीज़ गले पर खुली जिसमें से काला रोएँदार सीना झाँक रहा था—वह किसी गृहविहीन, भ्रमणशील संत के मेरे मानसिक चित्र से हूबहू मिल रहा था, वह संत जिसका जीवन में एकमात्र लक्ष्य सत्य का प्रसार करना है।

सामने दूध और रसभरी का कटोरा रखा था। हाथ में चान्दी का चम्मच। वह स्वादपूर्वक इस भोजन का आनन्द ले रहा था। हर कौर के बाद वह अपनी खशखशी मूँछों से दूध की श्वेत बून्दों को पोंछ लेता था। एक बहिन मेज़ के पास खड़ी होकर उसे परोस रही थी। दूसरी छाती पर दोनों हाथ बाँधे और चिंतनमग्न मुद्रा में उष्ण, धूमिल आकाश की ओर दृष्टि किये पेड़ के तने से सट कर खड़ी थी। दोनों बहनें सूरत-शकल में एक समान थीं। उन्होंने हलके बकाइन के रंग की पोशाक पहन रखी थी।

उसने मुझसे बड़े प्रेम के साथ बात की और मुझे प्रेम की महान सृजनात्मक शक्ति के बारे में बताया। बोला: प्रेम की शक्ति ही एकमात्र शक्ति है जो "मानव का विश्व-सत्ता के साथ तादात्म्य" स्थापित कर सकती है, जिससे समस्त जीवन ओत-प्रोत है। अपने प्राणों में मनुष्य को यही शक्ति विकसित करनी चाहिये।

"यही एक मात्र बंधन है जो मनुष्य को बाँध सकता है। बिना प्रेम जीवन को समझना असम्भव है। जो लोग संघर्ष को जीवन का नियम बतलाते हैं वे अन्धे हैं, उनका विनाश निश्चित है। आग से आग नहीं बुझायी जा सकती। पाप को पाप से नहीं जीत सकते।"

कुछ देर बाद दोनों लड़कियाँ, एक दूसरे की कमर में हाथ डाले, कोठी की ओर चली गयीं। वह पलकों को अधमुन्दी किये उनका जाना देखता रहा और जब वे ओझल हो गयीं तो मुझसे बोला:

"लेकिन तुम हो कौन?"

मैंने जब उसे अपने बारे में बताया तो वह मेज़ पर उँगलियों से ताल देते हुए मुझे उपदेश देने लगा। बोला: आदमी जहाँ भी हो और जिस हैसियत में भी हो, आदमी ही रहता है, अतः उसे नीची हैसियत से ऊँची हैसियत वाला बनने की आकाँक्षा नहीं रखनी चाहिये बल्कि चाहिये कि आत्मा में मानवमात्र के प्रति प्रेम-भावना को जाग्रत करे।

"वस्तुतः आदमी जितनी ही नीची हैसियत में होता है उतना ही जीवन की वास्तविकता के—उसके पावन ज्ञान के—सन्निकट होता है।"

उसे स्वयं यह "पावन ज्ञान" प्राप्त है, इसके विषय में मुझे

संदेह हो रहा था, पर मैंने कुछ कहा नहीं। उसका मन मेरे साथ बातें करने में नहीं लग रहा था। उसकी निगाहों से यह स्पष्ट था। उसने जम्हाई ली, हाथों को मस्तक के पीछे करके अंगड़ाई ली; पैरों को सीधा किया और पलकें नीची कर लीं, मानो थकान से नींद चाँप रही हो। इसी मुद्रा में वह बोलता गया:

"प्रेम से आत्मसमर्पण... यही जीवन का नियम है...।" हठात् चौंक कर उसने हाथ हवा में फेंका, मानो कुछ पकड़ रहा हो और फिर घबरा कर मेरी ओर घूरने लगा। बोला:

"अरे यह क्या? माफ़ करना। मैं बहुत थका हुआ हूँ!"

और उसने फिर आँखें मूँद लीं। फिर दाँत भींच कर उन्हें निपोर लिया, मानो कहीं दर्द हो रहा हो। नीचे के ओठ लटक गये और ऊपर के ओठ सिकुड़ गये, जिससे उसकी खशखशी मूँछों के बैंगनी बाल खड़े हो गये।

मैं चला आया वहाँ से, उसके प्रति विरोध की एक अव्यक्त भावना लेकर। मुझे उसकी सचाई में भी शंका होने लगी थी।

कुछ दिनों बाद उसे मैंने एक दिन खूब तड़के विश्वविद्यालय के एक शिक्षक के कमरे में देखा। यह आदमी अविवाहित और एक नम्बर का पियक्कड़ था। मैं उसके यहाँ ताज़ा 'रौल' पहुँचाने गया था। क्लोप्स्की की सूरत से प्रगट हो रहा था मानो वह रात भर सोया नहीं है—चेहरे पर कालिमा, आँखें लाल और सूजी हुईं। वह नशे की हालत में था। मोटा शिक्षक केवल अंडरवियर पहने फ़र्श के ऊपर बैठा हुआ था, हाथ में गितार लिये। चारों ओर मेज़, कुर्सियाँ और कपड़े-लत्ते बिखरे हुए थे। वियर की बहुत सी

खाली बोतलें फ़र्श पर पड़ी हुई थीं। नशे में चूर वह झूमझूम कर रो रहा था और चिल्ला कर कह रहा था:

"दया करो, बा-बा...।"

क्लोप्स्की ने भी कर्कश स्वर में चिल्ला कर कहा:

"दया कहां है, बाबा! प्रेम की चक्की हम सब को पीस डालेगी, या प्रेम के संघर्ष में हमारा सफ़ाया ही हो जायगा। हर हालत में विनाश निश्चित है...।"

मेरे कंधों को पकड़ कर खींचता हुआ वह शिक्षक के पास ले गया और बोला:

"ज़रा तुम्हीं पूछो, भाई, इससे—क्या चाहता है? करेगा प्यार मानवमात्र को?"

शिक्षक ने रोनी सूरत से मेरी ओर देखा और हंस कर बोला:

"यह नानबाई का आदमी है! पैसा निकलता है इसका मेरे यहां।" इसके बाद झूमते हुए, उसने जेब में हाथ डाला और एक चाबी निकाल कर मेरी ओर बढ़ा दी। बोला:

"लो बाबा। निकाल लो जो कुछ भी है।"

पर तोलस्तोयवादी ने चाबी छीन ली और हाथ का इशारा करके मुझसे बोला:

"भागो यहां से! दूसरे वक़्त पैसे ले जाता।"

मेरे लाये "रौल" को उसने कोने में पड़ी कोच पर फेंक दिया।

उसने मुझे पहचाना नहीं। इसकी मुझे खुशी थी। प्रेम द्वारा विनाश की उसकी बात मेरी स्मृति में गड़ गयी। उसके प्रति घृणा से मेरा हृदय भर गया।

कुछ ही दिनों बाद मुझे पता चला कि जिन लड़कियों के साथ वह ठहरा हुआ था उनमें से एक से उसने प्रेम याचना की और उसी दिन दूसरी से भी वही बात कही। दोनों बहिनें एक-दूसरे से भेद नहीं छिपाती थीं। अतः उन्हें बात का फ़ौरन पता चल गया और उनका हर्ष अपने प्रेमी के प्रति क्रोध में परिवर्तित हो गया। उन्होंने दरबान द्वारा प्रेम के इस अनन्त पुजारी को घर से फ़ौरन विदा हो जाने को कहलवा दिया। हज़रत शहर से ही रफ़ूचक्कर हो गये।

प्रेम और करुणा का जीवन में क्या स्थान है—इस जटिल और हैरान करने वाले प्रश्न से मुझे आरम्भ में ही पाला पड़ा था। शुरू में उसका रूप था एक अस्पष्ट, अपरिभाषित आंतरिक तनाव का। बाद में उसने निम्नलिखित स्पष्ट और निश्चित प्रश्न का रूप धारण कर लिया:

"प्रेम का महत्व क्या है?"

मैंने अभी तक जो पढ़ा था उसमें ईसाई धर्म के विचारों की, मानवतावाद की छाप थी; मानवजाति के प्रति करुणा की हृदयद्रावक पुकार थी। उस ज़माने में मुझे अच्छे से अच्छे लोग जो मिले सभी ने मुखरित स्वर से इन्हीं भावनाओं को व्यक्त किया।

पर वास्तविक जीवन की मेरी जो दैनिक अनुमति थी उसकी करुणा के इस दर्शन के साथ कोई सहानुभूति न थी। मैंने जीवन को वैमनस्य एवं क्रूरता की अटूट शृंखला के रूप में—अदना चीज़ों की प्राप्ति के लिए गर्हित, अथक संघर्ष के रूप में—ही देखा। स्वयं मुझे केवल एक चीज़ की भूख थी—किताबों की। अन्य सभी चीज़ें मेरे लिए लोष्ठवत थीं।

फाटक के बाहर घंटा भर बैठने पर जीवन का जो मेला मुझे नज़र आता वह और ही था। गाड़ीवाले, दरबान, मज़दूर, सरकारी कर्मचारी, दूकानदार जो रास्ते से गुज़रते थे—सबों का जीवन मेरे अपने जीवन से तथा मेरे चुनिन्दा दोस्तों के जीवन से भिन्न था। उनकी आशाएँ-आकांक्षाएँ और उनके उद्देश्य दूसरे ही प्रकार के थे। जिन लोगों में मेरी आस्था थी, जिन्हें मैं श्रद्धा की दृष्टि से देखा करता था वे इस मेले में एकांत और अजनबी सरीखे ज्ञात होते थे, ऐसे लोग जो बहुसंख्यक जनता की जमात में बिल्कुल परदेशी थे। इस बहुसंख्यक जनता का जीवन-क्रम और ही था—दीमकों की तरह वह घूर में ही लीन थी, तुच्छ अध्यवसाय द्वारा माटी का ऐसा ढूह निर्माण करने में जिसे वह ज़िन्दगी कहती है। यह ज़िन्दगी मुझे तो बिल्कुल सारहीन और निष्प्रयोजन मालूम होती थी—बिल्कुल जंजाल। और प्रायः मैं यही पाता कि जो लोग करुणा और प्रेम की बातें किया करते हैं उनके लिए वास्तव में इनका महत्व कोरे शब्दजाल से अधिक नहीं है; व्यवहार में वे भी, न जाने क्यों, जीवन की दैनिक धारा के बहाव में ही तैरा करते हैं।

यह सब कुछ मुझे अत्यंत जटिल मालूम देता था।

एक दिन पशुचिकित्सा का विद्यार्थी लावरोव मुझसे बातें कर रहा था। वह जलोदर रोग से ग्रस्त था—सारा शरीर फूला हुआ और रक्तहीन। बोलते वक़्त उसकी सांस फूल रही थी:

"क्रूरता का पूर्ण विस्तार होना चाहिये जिससे हर जगह क्रूरता का ही राज क़ायम हो जाय। तब हर आदमी उससे ऊब उठेगा।

उसके प्रति एक-एक प्राणी के हृदय में घृणा जाग्रत हो जायगी जैसे पतझड़ के इस गन्दे मौसम के प्रति!"

इस साल पतझड़ जल्दी ही शुरू हो गयी थी—सर्द और बरसाती पतझड़। हर जगह बीमारियां फैल रही थीं और आत्महत्याओं की बाढ़ सी आयी हुई थी। अन्त में लावरोव ने भी पोटैशियम सायनाइड खा कर जलोदर के क्रूर शिकंजे से मुक्ति प्राप्त की।

वह मेद्निकोव नामक दर्ज़ी के घर रहा करता था। उसकी मृत्यु पर मेद्निकोव बोला:

"जानवरों का इलाज करने वाला जानवरों की मौत मर गया।"

मेद्निकोव कृशकाय और कमज़ोर आदमी था, भारी भक्त। मरियम की सारी स्तुतियां उसे बरज़बानी याद थीं। उसके दो बच्चे थे—एक सात साल की लड़की और दूसरा ग्यारह साल का लड़का। दोनों को वह चमड़े की तीन पट्टियों वाले कोड़े से पीटा करता था। अपनी बीवी को भी वह बांस की फराठी से पांव की पिण्डलियों में मारा करता था। वह अक्सर शिकायत करता था:

"मजिस्ट्रेट ने मुझे बहुत फटकारा। बोला, यह तरीक़ा तुमने चीनियों से सीखा है। लेकिन आज तक किसी चीनी से मेरी मुलाक़ात नहीं। अगर चीनी कहीं देखा है तो तसवीरों या दूकानों की तख्तियों में।"

मेद्निकोव की दूकान में एक आदमी काम करता था जिसे लोग "दुन्का का पति" कह कर पुकारते थे। उसकी टांगें ढेढ़ी थीं और स्वभाव नीरस। वह अपने मालिक के विषय में कहा करता था।

"सब से ज्यादा ख़तरनाक सूधे लोग होते हैं—खास कर जब वे बड़े पुजारी और भक्त हों तो! बदमाश तो बदमाश होता है। आदमी उसे दूर ही से जान लेता है और बच जाता है। पर सूधे लोगों को काला नाग समझो। दबे-दुबके, घास में छिपे, कब आकर वे डँस लेंगे इसका ठिकाना नहीं। ज़रा भी खुले उनके आगे कि डँसे गये। और उनके काँटे का इलाज नहीं। मैं तो भैया इन सूधों से ही ज्यादा डरता हूँ...।"

"दुन्का का पति" मेद्निकोव का अपना आदमी था। देखने में खुद बड़ा सूधा, पर एक नम्बर का काँइयां। दूकान के दूसरे नौकरों की सभी ख़बरें चुपके से मालिक को पहुँचा दिया करता था। लेकिन जो बात उसने कही वह ग़लत न थी।

कभी-कभी मुझे लगता कि सूधे लोग जीवन रूपी पत्थर के कलेजे पर उगी वन-बेलि हैं। वे उसे मुलायम और उपजाऊ बनाते हैं। लेकिन ज्यादातर उनकी बहुतायत, उनका काला दिल, और कपटी प्रवृति देख कर मुझे ऐसा लगता जैसा कुकुरमुत्तों के बीच घिरा घोड़ा हूँ जो पिछली टाँगें बन्धी होने के कारण उनसे भाग भी नहीं सकता।

पुलिस वाले के क्वार्टर से बाहर आने पर ये ही विचार मेरे मस्तिष्क में चक्कर काट रहे थे।

बाहर हवा सिसकारी भरती हुई बह रही थी। सड़कों पर लगी लालटेनों की लौ धुंधले में कांप रही थी। पर ऐसा लग रहा था कि स्वयं धूमिल आकाश हिल रहा हो और उसके हिलने से धरती पर पतझड़ के मेंह की झींसी गिर रही हो। वर्षा से तर

एक वेश्या किसी पियक्कड़ को घसीटने की कोशिश कर रही थी। उसने थकी हुई भारी आवाज़ में कहा:

"सब क़िस्मत का खेल है...।"

मेरे अन्तर से आवाज़ निकली: "बहुत ठीक। मेरा भी यही हाल है। मैं भी इसी तरह घिसटता चला जा रहा हूँ—कुत्सित कोने अन्तरों में, चारों ओर गन्दगी और गम तथा विलक्षण मतों वाले नर-नारियों के बीच। मैं सचमुच ऊब गया हूँ।"

सम्भवतः शब्द यही नहीं थे; पर, सार रूप में, यही विचार था जो उस दिन मेरे मस्तिष्क का चक्कर लगा रहा था। बाहर कमबख्त बदली-भरी सांझ थी, भीतर इन विचारों का झकझोरा। उस दिन पहले पहल मैंने महसूस किया कि मेरे प्राण थक चुके हैं। एक कड़ुवाहट मेरे उर-अन्तर में समा गयी है और धीरे-धीरे हमें चबाये डाल रही है। उस दिन से मेरी मानसिक स्थिति लगातार बिगड़ती गयी। अपने को मैं किसी बाह्य दर्शक की ग़ैर, एवं अजनबी, ठण्ढी आँखों से देखने लगा।

हर मानव आत्मा के भीतर मुझे विरोधाभासों का विचित्र, विश्रृंखल सहवास दृष्टिगोचर होने लगा—शब्द और कार्य का ही विरोधाभास नहीं, भावों का भी। भावों की अस्तव्यस्त टकराहट मुझे सब से कड़वी मालूम होती थी। खुद मेरी आत्मा के अन्दर यह टकराहट चल रही थी। और यह चीज़ सब से बुरी थी। मेरा मन मुझे सभी दिशाओं में टालता रहता—नारी, किताबें, मेहनत-मशक़्क़त करने वाले लोग, छात्रों की मस्त टोली। पर इनमें से किसी प्रवृति को सन्तुष्ट कर सकने का मेरे पास समय न था। मैं लट्टू बना हुआ

था—कभी इधर कभी उधर। कोई अपरिचित हाथ—अदृष्ट किन्तु सशक्त—मुझे अदृष्ट कोड़े से मार कर नचा रहा था।

मुझे ख़बर मिली कि याकोव शापोश्निकोव अस्पताल में भरती हुआ है। मैं उससे मिलने गया। वहां एक मोटी, चिड़चिड़ी, चश्मे वाली औरत मिली जिसके कान लाल थे मानो आग में भुने हुए हों। उनके ऊपर एक सफ़ेद रूमाल बंधा था। उसने कहा:

"वह मर गया।"

उसका स्वर ऐसा था मानो उसके लेखे कोई खास बात नहीं हुई हो। मैं वहीं का वहीं खड़ा रह गया, मौन, रास्ता छेंके। वह बिगड़ कर बोली:

"कह तो दिया! अब क्या है?"

मैं भी आपे से बाहर हो गया। बोला:

"तुम गधी हो।" वह बड़े ज़ोर से चिल्लायी:

"निकोलाई! निकालो इसे यहां से!"

निकोलाई हाथ में चिथड़ा लेकर ताम्बे के छड़ों को रगड़ रहा था। गुर्राकर उसने मेरी पीठ पर एक छड़ जड़ दिया। इसपर मैंने उसे पकड़ कर और दरवाज़े के बाहर ले जाकर कीचड़ से भरे एक गढ़े में डाल दिया। वह गुम होकर कुछ देर कीचड़ में ही बैठा मुझे घूरता रहा। इसके बाद खड़ा होकर बोला:

"तेरी...!"

मैं देर्जाविन पार्क चला गया और कवि की समाधि के पास एक बेंच पर बैठ रहा। मेरे मन में एक तूफ़ान उठ खड़ा हुआ था। जी चाहता था कि कोई ऐसी दुष्टता कर बैठूं कि लोग मुझे

मारने के लिए टूट पड़ें और मुझे भी उनकी मरम्मत करने का बहाना मिले। लेकिन छुट्टी का दिन होते हुए भी पार्क सुनसान था। पास की सड़कों पर एक भी राह चलने वाला नहीं नज़र आ रहा था। सिर्फ़ सूखी पत्तियों को बिखेरती तेज़ हवा बह रही थी। पास ही लालटेन के खम्भे में सटे इश्तहार का कोना उघड़ गया था और वह हवा में झण्डे की तरह फरफरा रहा था।

साँझ का अन्धेरा फैलने लगा था। हवा की ठंढक बढ़ती जा रही थी। आकाश गहरे नीले अर्धपारदर्शी रंग में परिवर्तित हो गया। मेरी बग़ल में कवि की विशाल धातु-मूर्ति आकाश में सिर उठाये खड़ी थी। उसे देख कर मेरे मन में विचार आया: याकोव जीवन पर्यंत, आत्मा की समूची शक्ति लगा कर, अकेले दम ही, ईश्वर से लड़ता रहा। पर उसकी यों ही मृत्यु हो गयी—किसी ने नहीं जाना, बिल्कुल साधारण मौत। कितना अपमान निहित था इसमें—असह्य अपमान!

और निकोलाई निरा बुद्धू निकला। उसे हाथापाई करनी चाहिये थी मुझसे, या पुलिस बुला कर जेल भिजवा देना चाहिये था मुझको...।

मैं रुब्त्सोव के घर गया। वह अपनी अंधेरी, तंग कोठरी में मेज़ के पास बैठा, एक छोटे से चिराग़ की रोशनी में अपनी जाकिट की मरम्मत कर रहा था। मैंने कहा:

"याकोव मर गया।"

बुड्ढे ने सुई पकड़े हुए ही अपना हाथ ऊपर उठाया। वह क्रॉस का चिन्ह बनाने जा रहा था, पर रुक गया। हाथ का तागा किसी

चीज़ में फंस गया और, धीमे स्वर में, उसके मुँह से एक अश्लील गाली निकल गयी।

थोड़ी देर बाद वह बुदबुदाने लगा:

"एक दिन हम सभी मर जायँगे। यह भी एक भोली आदत हो गयी है इंसानों की। हां, आदत! याकोव चला गया। और यहां एक ठठेरा रहता था वह भी चला गया। उस एतवार को। पुलिस वाले आकर उसे ले गये। गूरी के ज़रिये मेरी उससे जानपहचान हुई थी—उस ठठेरे से। बड़ा तेज़ आदमी था। और विद्यार्थियों से उसकी ख़ूब मुलाक़ात थी। सुना है विद्यार्थियों ने कोई उपद्रव खड़ा कर रखा है। तुम्हें भी खबर मिली है इसकी? ज़रा मेरी यह जाकिट सी दो। मुझे सुझायी नहीं पड़ रहा है, जाने क्या गड़बड़ सी दूँ!"

फटे कपड़े और सुई-तागा मुझे देकर वह, पीठ पर हाथ बांधे, कमरे में चहलकदमी करने लगा। बीच-बीच में खांसता और बुदबुदाता जाता था:

"ज़िन्दगी भी अजीब है। यहां-वहां कभी एकाध लौ बल उठती है। पर शैतान फूँक मार कर उसे बुझा देता है—और इसके बाद फिर एक सिरे से वही पुराना क्रम आरम्भ हो जाता है। यह शहर ही अभागा है। मैं तो नदी में बर्फ़ जमने से पहले ही यहां से चल दूँगा।"

यकायक वह रुक गया, और अपनी गंजी खोपड़ी खुजलाते हुए बोला:

"लेकिन जाऊंगा कहां? सभी जगह तो हो आया हूँ। कोई जगह बाक़ी नहीं रही। घुमक्कड़ी करते-करते थक चुका हूँ अब। बस यही थकान हाथ लगी है।"

एक बार ज़ोर से खखारने के बाद वह फिर बोला:

"मारो गोली ज़िन्दगी को! जिये, काम किया और थक कर पस्त हो गये—न आत्मा को कुछ हासिल हुआ, न शरीर को...।"

वह कुछ देर के लिये चुप होकर दरवाज़े के पास कोने में खड़ा हो गया मानो कान लगा कर कुछ सुन रहा हो। यकायक तेज़ी से कोठरी लाँघ कर वह मेरे पास आया और मेज़ के किनारे पर बैठ कर बोला:

"मैं तो कहता हूँ, दोस्त अलेक्सी मेरे! याकोव ने भगवान के पीछे हाथ धोकर क्या पाया — बेकार अपना कलेजा खपाया। क्या भगवान हमारे नकारने से सुधर जायगा? या ज़ार ही क्या हमारे नकारने से सुधर सकता है? असल चीज़, भाई, यह है कि अपने आप के ऊपर गुस्सा करना सीखो। इस सड़ी ज़िन्दगी को साफ़ जवाब दे दो। मैं तो बूढ़ा हो गया। बड़ी देर से जन्म हुआ अपना। शीघ्र ही दोनों आँखें जाती रहेंगी। उस वक़्त क्या होगा, भाई? हो गया जाकिट? धन्यवाद...। चलो बाज़ार में थोड़ी चाय पी आएँ।"

रास्ते में वह अँधेरे में कई बार लड़खड़ाया और मुझे थाम कर चलने लगा। बोला:

"एक बात सुन लो हमारी। किसी न किसी दिन लोगों के सब्र की सीमा हो जायगी। गुस्सा फूट पड़ेगा उनका। उस वक़्त जो कुछ सामने आयेगा सभी को तोड़ना-फोड़ना शुरू कर देंगे

वे—इस सारी सड़ी ज़िन्दगी को। लोगों के सब्र की सीमा हो जायगी...।"

हम लोग चाय की दूकान नहीं पहुँच पाये। रास्ते में ही एक जगह मल्लाहों की बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी थी। वे एक वेश्यालय को घेरे हुए थे। अन्दर से 'आलाफ़ुज़ोव मिल' के मज़दूर उसकी रक्षा कर रहे थे।

रुब्त्सोव ने, चश्मा उतारते हुए, खुश होकर कहा:

"यहाँ छुट्टी के दिन बराबर लड़ाई हुआ करती है!"

रक्षकों के दल में उसके कई जानपहचानी निकल आये। बस वह भी कूद पड़ा अखाड़े में और लगा अपने साथियों को ज़ोर-ज़ोर से ललकारने:

"शाबाश शेरो! बुनकर भाइयो! आज मेढ़कों को छठी का दूध याद करा दो! निकाल दो कचूमर मछलियों का!"

दंगाइयों में इस जोशीले बुड्ढे का, इतना बुद्धिमान और इतना अनुभवी, शामिल हो जाना देख कर अचम्भा हो रहा था। उसकी फुर्ती देखते ही बनती थी। मल्लाहों की भीड़ में रास्ता काटता, उनके मुक्कों को होशियारी से बचाता और कन्धों के झटके से बहुतों को धराशायी करता। दंगाइयों के मन में मैल न था। वे लड़ रहे थे केवल मज़े के लिए—फ़ाज़िल ताक़त के निकास के लिए। काली भीड़ मिल-मज़दूरों को चांपती चली जा रही थी। आखिर पटरों का बना फाटक चरमरा उठा और किसी ने हर्षध्वनि करते हुए कहा:

"बुढ़ऊ को! बुढ़ऊ को!"

दो लड़के मकान की छत पर चढ़ गये और वहीं से राग मिला कर गाने लगे:

हम चोर नहीं, बटमार नहीं
लुच्चों के, हम यार नहीं,
हम वीर बांकुडे मछुआहे
लद्धड़, काहिल, लाचार नहीं।

अन्धेरे में कहीं पुलिस की सीटी सुनायी पड़ी और वर्दीधारियों के पीतल के बटन चमक उठे। रास्ते की कीचड़ में बूटों की पच-पच की आहट आने लगी। गाने वाले और झूम-झूम कर गाने लगे:

मछुओं ने डाला जाल
निकला उसमें से तो माल,
पत्ता न एक भी खड़का
मोटा व्यापारी भड़का।

कोई चिल्लाया:

"गिर पड़ा है! गिरे पर हाथ मत चलाओ...!"

दूसरी आवाज़ आयी:

"बाबा! बाबा! बुढ़ऊ बाबा! हो जाओ होशियार!"

अन्त में पुलिस वाले रुब्त्सोव को, मुझे और दोनों पक्ष के पांच-छ और आदमियों को पकड़ कर थाने ले चले। पतझड़ की काली रात में नीरवता छा गयी। केवल हमारे पीछे गीत की तान हवा में तैर रही थी:

चालीस मछलियाँ साथ
आयीं मछुए के हाथ
आयीं-यीं-यीं...

रुब्त्सोव बड़े उमंग में था। उसके नाक और मुँह से ख़ून आ रहा था। थूकते और नाक झाड़ते हुए वह बोला:

"वोल्गा की जनता लाजवाब है!" मेरे कान में उसने चुपके से कहा, "मौक़ा देख कर तू निकल भाग यहाँ से पट्ठे! तू क्यों मुफ़्त हाजत में जायगा?"

एक पतली गली के पास पहुँच कर मैं ज़ोर से भागा। एक लम्बा छरहरा मल्लाह भी दौड़ा। हम दोनों खांचों को लांघते नौ-दो ग्यारह हो गये। अपने प्यारे और बुज़ुर्ग दोस्त निकिता रुब्त्सोव से यही आख़िरी मुलाक़ात थी मेरी।

मेरा जीवन दिनोंदिन शून्य होता जा रहा था। विद्यार्थियों के अन्दर बेदारी बढ़ रही थी। एक बात मेरे समझ में नहीं आती थी—विद्यार्थियों में असन्तोष का क्या कारण हो सकता है? उनके आन्दोलन का उद्देश्य क्या है? मुझे केवल उनका मस्ती भरा छात्र जीवन दिखायी देता था; उसके अन्दर जो कठिन संघर्ष निहित था वह मैं नहीं देख रहा था। विश्वविद्यालय का छात्र होना मेरे लिए कुबेर का धन प्राप्त करने के समान था, उसके लिए मैं कठिन से कठिन यन्त्रणा भुगतने को सहर्ष तैयार था। यदि कोई मुझसे कहता, "विश्वविद्यालय में तुम्हारा दाख़िला हो जायगा, पर उसके लिए हर एतवार को बीच निकोलायेव्स्काया चौक में तुम्हें बेंत खानी होगी" तो मैं उसके लिए भी तैयार हो जाता।

एक दिन मैं सेम्योनोव के नान कारख़ाने में पहुँचा तो पता चला कि वहाँ के मज़दूर विद्यार्थियों को पीटने के लिए विश्वविद्यालय पर धावा करने की योजना बना रहे हैं। एक मज़दूर कह रहा था:

"यारो! हाथ में मोटा लोहा लेना मत भूलना!"

मैं उनसे बहस करने लगा। तब हठात् मैंने महसूस किया कि विद्यार्थियों के पक्ष में बोलने को मेरे पास वास्तव में कुछ नहीं है; दरअसल उनका हिमायती बनने की मेरी इच्छा नहीं। इस अहसास से मानो अचानक मेरे ऊपर बिजली गिरी।

मैं चला आया वहाँ से उठ कर। उस वक़्त मुझे ऐसा लग रहा था जैसे वर्षों का बीमार हूँ। पांव लड़खड़ा रहे थे। हृदय में ऐसी टीस उठ रही थी जो दबाये न दबती थी और जो मानो मुझे निगल जाना चाहती थी।

काबान के तट पर मैं बड़ी रात तक बैठा नदी के काले जल में ढेले फेंकता रहा। एक ही विचार, एक ही रूप में, घिरनी की तरह मेरे मस्तिष्क में चक्कर काट रहा था:

"क्या करूँ?"

सूनेपन से छुटकारा पाने के लिए मैंने बेला सीखना शुरू किया। रात को दूकान में मैं बेले का रियाज़ किया करता था। दरबान तथा चूहों का इससे आराम-हराम हो गया। संगीत से मुझे सच्चा प्यार था और प्राणपण से उसमें लग गया। लेकिन एक रोज़ रात के वक़्त हमारा पाठ चल रहा था। उसी वक़्त दो मिनट के लिए मुझे बाहर जाना पड़ा। ग़लती से मैंने दूकान की तिजोरी खुली छोड़ दी थी। लौट कर देखता क्या हूँ कि मेरे मास्टर साहब—जो नाट्यशाला में बेला-वादक थे—दराज़ खोल कर उसमें का रुपया-पैसा अपनी जेब में ठूंस रहे हैं। मुझे दरवाज़े पर देख कर उन्होंने अपना शुष्क, मुण्डित माथा मेरी ओर बढ़ा दिया और शान्त स्वर में बोले:

"ठीक है—पीटो, ख़ूब पीटो।"

उनके ओठ काँप रहे थे। बे-रंग आँखों से आँसू की मैली बून्दें, जो विलक्षण रूप से बड़ी-बड़ी थीं, ढलकने लगीं।

मेरे मन में आया कि उसे ख़ूब पीटूँ। इस इच्छा को शमन करने के लिए अपने मुक्कों को नीचे दबा कर मैं फ़र्श पर बैठ गया और उससे दराज़ में सारा रुपया वापस रख देने को कहा। उसने जेब ख़ाली कर दी और दरवाज़े की ओर चला लेकिन यकायक बीच में रुक कर जड़तापूर्ण, डरावने स्वर में बोला:

"दस रूबल दे दो मुझे!"

मैंने उसे दस रूबल दे दिये; लेकिन संगीत सीखना बन्द कर दिया।

दिसम्बर में मैंने आत्महत्या कर लेने का निश्चय किया। इस फ़ैसले की पृष्ठभूमि का मैंने "मकर के जीवन की एक घटना" शीर्षक कहानी में वर्णन करने का प्रयत्न किया है। पर उसमें मुझे सफलता नहीं मिली है। कहानी भोंडी और अप्रिय हो गयी है—आन्तरिक सत्य से शून्य। फिर भी मेरा ख़याल है कि आन्तरिक सत्य की शून्यता ही उस कहानी का प्रधान गुण है। तथ्य बिलकुल सही-सही बयान किये गये हैं। पर उनकी व्याख्या ऐसी हो गयी है मानो वह मेरी न हो। पूरी कहानी ही ऐसी हो गयी है जैसे कि वह मेरे विषय में न हो। पर साहित्यिक गुण-अवगुण की बात छोड़ दी जाय, तो मैं कहूँगा कि यह कहानी मुझे अच्छी लगती है, जैसे आत्मविजय में आदमी को रस मिलता है।

•

मैंने बाज़ार से एक रिवाल्वर ख़रीदा जिसमें चार गोलियाँ थीं। एक गोली मैंने अपनी छाती में दाग़ दी। मैंने कलेजे का निशाना लगाया

था, पर गोली फेफड़े में जा लगी। एक महीने बाद मैं फिर नानखाने में अपने काम पर लौट आया—झेंपा हुआ, शर्मिन्दा।

लेकिन वहाँ ज्यादा दिन नहीं ठहरा। एक रोज़ शाम के वक़्त मैं कारखाने से बाहर आ रहा था तो देखा कि खोखोल दूकान के पीछे वाली कोठरी में खिड़की के पास बैठा हुआ है। मार्च का महीना खतम हो रहा था। वह मोटी सिगरेट मुँह में लिए, धुएँ के गोले उड़ाता हुआ, विचारमग्न, उन्हीं की ओर ताक रहा था।

बिना राम-सलाम किए उसने पूछा:

"थोड़ा वक़्त मुझे दे सकते हो? कुछ बातें करनी हैं।"

"बीस मिनट।"

"तो आ जाओ।"

हमेशा की तरह वह मोटे कपड़े का बन्द गले का कोट पहने हुए था जिसके सभी बटन बन्द थे। उसकी श्वेत दाढ़ी ने, पंखे के समान, चौड़ी छाती को ढक रखा था। उसके हठीले मस्तक के ऊपर छोटे कड़े बाल खड़े थे। पैरों में भारी देहाती जूते थे जिनसे कोलतार की तेज़ गन्ध आ रही थी।

उसने शान्त स्वर में कहना आरम्भ किया:

"मेरी बात सुनो—चल कर मेरे साथ रहो! मैं क्रास्नोविदोवो गांव में हूँ आजकल। वोल्गा से जाने में यहाँ से पैन्तालीस वर्स्ट पड़ेगा। वहीं मैंने एक दूकान खोल रखी है। तुम दूकान में मदद करना। उसमें ज्यादा वक़्त नहीं लगेगा तुम्हारा। मेरे पास किताबों का बहुत अच्छा संग्रह है। मैं अध्ययन में तुम्हारी मदद करूँगा। बोलो, स्वीकार है?"

"हाँ।"

"अच्छा तो शुक्रवार को सबेरे ६ बजे कुर्बातोव घाट पर आ जाना। वहाँ पूछ लेना क्रास्नोविदोवो की नाव कौनसी है। मालिक का नाम है वासिली पानकोव। लेकिन पूछने की भरसक तुम्हें ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी, क्योंकि मैं तुमसे पहले ही पहुँच जाऊँगा। अच्छा तो सलाम!"

वह उठ खड़ा हुआ और चौड़ी हथेली मेरी ओर बढ़ा दी। इसके बाद भीतर की जेब से चान्दी की एक भारी प्याज़ जैसी घड़ी निकाल कर बोला:

"देखो, हम लोगों को ६ ही मिनट लगे। हाँ, यह तो भूल ही गया—मेरा नाम है मिखाइल एन्टोनोविच रोमास। समझे?"

बिना पीछे मुड़े वह चला गया, दृढ़ क़दम रखता और अपने बलिष्ठ विशाल शरीर को झुमाता हुआ।

दो दिन बाद मैं क्रास्नोविदोवो के लिए रवाना हो गया।

वोल्गा के वक्ष पर हमारी नाव चली जा रही है। नदी को बन्धन-मुक्त हुए ज़्यादा दिन नहीं हुए हैं। बरफ़ के बड़े-बड़े श्वेत खण्ड, जिनके अंग-अंग से पानी रस रहा है, पानी की गदली धारा के साथ तैरते चले जा रहे हैं। हमारी नाव बढ़कर उनके पास पहुँच जाती है और वे चूँ-चूँ करते उसके किनारों से भेंट-अकवार करते हैं। किन्हीं खण्डों पर नाव चढ़ जाती है और चोखे, रवादार के टुकड़े टूट कर तेज़ी से बिखर जाते हैं। तेज़ हवा बह रही है जिससे पानी उमंगे लेता हुआ तीर तक चढ़ जाता है। हिम-खण्डों के किनारे नीले दर्पण की तरह चमक रहे हैं और उनसे रवि-किरणों का चंकाचौन्ध करने वाला प्रकाश प्रतिबिम्बित हो रहा है। बक्सों, पीपों

और बोरों के भार से दबी नाव पाल के सहारे आगे बढ़ी जा रही है। पानकोव के हाथ में पतवार है। वह किसान नौजवान है जिसने अपने जानते खूब ठाठदार पोशाक पहन रखी है। भेड़ की खाल की उसकी जाकिट में रंगबिरंगे बेलबूटे कढ़े हैं।

उसका चेहरा स्थिर और आँखें सर्द हैं। वह बहुत कम बोलता है। आत्मरत व्यक्ति। किसानों जैसा कुछ भी नहीं उसमें। नाव की गलही पर पानकोव का नौकर है—कुकुश्किन—मैला-कुचैला, नाटा, फटा अरम्याक* जिसे रस्सी से बान्ध लिया गया है और मुड़ी-चिमुड़ी टोपी जो कभी किसी पादरी की थी। मुंह और गाल किसी चीज़ से बुरी तरह कट गये हैं। उसके हाथ में मल्लाहों का लम्बा काण्टा है। उस से बर्फ़ के टुकड़ों को ठेलते हुए वह गुर्रा कर कहता है:

"अबे... इधर कहाँ चला आ रहा है...।"

पाल के पास पड़े सन्दूकों के ऊपर हम और रोमास बैठे हैं। रोमास शान्त स्वर में कह रहा था:

"गांव के लोग मुझे नहीं चाहते—खास कर धनी किसान। तुम्हारे साथ भी वे यही सलूक करेंगे।"

कुकुश्किन गलही पर काण्टा रख कर अपना विक्षत चेहरा हमारी ओर करता है और विषय में रस लेता हुआ कहता है:

"एंटोनोविच! सब से ज़्यादा तो पादरी आपसे नाराज़ रहता है...।"

---

* अरम्याक—मोटे धागे का बना कपड़ा, जो किसान ऊपर पहिनते हैं।

"ठीक बात है," पानकोव बोला।

"तुम उसकी आँखों के कांटे हो, उस खुदखुदहे पिल्ले के!"

"लेकिन हमारे दोस्त भी हैं बहुत से गांव में। वे तुम्हारे भी दोस्त होंगे," खोखोल कहता गया।

हवा में सर्दी है। मार्च की चमकीली धूप में गर्मी नहीं। पेड़ों की पत्रविहीन काली टहनियाँ नदी के ऊपर झुकी हुई हैं। कहीं-कहीं कटे किनारे के अन्दर, या कगार के ऊपर लगी झाड़ियों की छाँह में अभी भी मख़मली बर्फ़ जमा है। नदी का वक्ष बहते हिमखण्डों से भरा हुआ है जो ऐसे लगते हैं जैसे चरागाह में भेड़ों का गल्ला। मुझे लगा स्वप्न-देश में विचरण कर रहा हूं।

कुकुश्किन ने अपनी पाइप में तंबाकू भरा और लगा फ़िलासफ़ी बूकने :

"माना कि आप जोरू नहीं हैं पादरी की। फिर भी उसकी तो यही ड्यूटी है—सभी को प्यार करना प्राणी मात्र को प्रेम करना—जैसा किताबों में लिखा है।"

रोमास ने हँसते हुए पूछा :

"यह तो बताओ तुम्हारे चेहरे की यह गत किसने बनायी है?"

"यों ही। कुछ लुच्चे लफ़ंगे थे—शायद चोट्टे रहे होंगे," उसने उपेक्षा के साथ कहा। फिर बड़े गर्व से कहना शुरू किया :

"पिटाई तो दरअसल एकबार फ़ौज वालों से लगी थी मुझे। तोपख़ाने के आदमी थे। मैं बच कैसे गया यही ताज्जुब है।"

"क्यों पीटा था उन्होंने?" पानकोव ने पूछा।

"किसके बारे में पूछ रहे हो—कल वालों की, या सिपाहियों की?"

"हूँ... कल ही की बताओ।"

"यह कौन जाने? यह भी कोई बता सकता है क्यों मार-पीट करना शुरू कर देते हैं लोग? हमारे देश के लोगों को यों समझ लो कि सींगदार बकरे हैं—कोई बात हुई और झट सींग हुरपेट दी। नहीं तो भला मुक्केबाज़ी करने की क्या बात थी उसमें?"

रोमास बोला :

"मैं तो समझता हूँ कि तुम हर जगह अपनी ज़बान के कारण पिटते हो। तुम्हारी जीभ पर लगाम नहीं...।"

"हो सकता है! स्वभाव थोड़ा है मेरा जिज्ञासु—लोगों से हर चीज़ के ऊपर सवाल पूछ देता हूँ क्योंकि नयी बात जानने से बड़ा अच्छा लगता है।"

नाव की नाक बर्फ़ की एक चट्टान से टकरायी—भड़ाक! चट्टान बड़े ज़ोरों से कर्र-कर्र करती नाव की बग़ल से रगड़ खाकर निकल गयी। कुकुश्किन गिरते-गिरते बचा। सम्भल कर उसने फिर काण्टा ले लिया हाथ में। पानकोव ने डाण्ट कर कहा :

"स्तेपान! क्या कर रहे हो? ध्यान रखो उधर भी!"

कुकुश्किन बर्फ़ को ठेलता हुआ बुदबुदाया :

"तब हमें बात में क्यों उलझाते हो? काम करना और तुम्हारे साथ गप करना दोनों मैं एक साथ नहीं कर सकता।"

दोनों में नोक-झोंक होने लगी। रोमास ने फिर मुझसे बातचीत शुरू कर दी।

"हमारे घर, उक्रइन से, यहाँ की ज़मीन दब है। पर लोग यहाँ के बेहतर हैं—होशियार, गुणी।"

मैं उसकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनता हूँ। उसके प्रति मेरी सहज आस्था जाग्रत होती है। उसकी चालढाल और बोली सरल और सीधी है। साथ ही उनमें आत्मविश्वास और दृढ़ता है। मैं मन ही मन सोचता हूँ : कितना विस्तीर्ण अध्ययन है इस आ दमी का! इस के अतिरिक्त आदमियों को जाँचने की इसने एक अपनी कसौटी तैयार कर ली है। वह नहीं पूछ रहा है कि मैंने आत्महत्या करने की कोशिश क्यों की। यह बहुत ही अच्छा है। उसकी जगह कोई और होता तो छूटते ही यह सवाल पूछा होता और मैं थक चुका हूँ उसका उत्तर देते-देते। और सहज भी नहीं इस प्रश्न का उत्तर देना। कौन जानता है, क्या शैतान समाया था मन में उस वक़्त। खोखोल अगर पूछेगा तो सम्भवतः मैं उसे लम्बा-चौड़ा, मूढ़तापूर्ण उत्तर देने की कोशिश करूँगा। जो भी हो, अब उस चीज़ के बारे में सोचने को जी नहीं होता। आह कितना सुन्दर है वोल्गा का वक्ष — कितना खुशनुमा, कितना मनभावना!

नदी के ऊँचे कगार की छाँह में हमारी नाव चली जा रही है। बायीं ओर नदी का विस्तृत पाट है जो उस पार के रेतीले तट पर दूर तक फैला हुआ है। तट से थोड़ा हट कर रेत पर कण्टीली झाड़ियाँ उगी हैं। नदी की उमंगभरी लहर बौछारों से उन्हें सराबोर कर देती हैं। तट की सूखी भूमि का हर गढ़ा और दरार पानी से भर जाता है। जल में बसन्त की मौज है। आकाश में सूरज मुसका रहा है। पीली चोंच वाले कौए घोंसले बनाने के लिए हवा में व्यस्ततापूर्वक उड़ रहे हैं। सूरज की चमकीली किरणों में वे पालिश चढ़ाए इस्पात की तरह चमक रहे हैं। खुले स्थानों में दूब की ताज़ी

हरी-हरी कोपलें मानो सूर्य का आलिंगन करने के लिए ऊपर तनी जा रही हैं। सर्दी से अंग ठिठुर रहे हैं, पर हृदय में नीरव आनन्द छाया हुआ है। दूब की भान्ति ही मन में नयी आशा की कोंपलें फूट रही हैं। कितनी मनभावनी हो जाती है धरती बसन्त ऋतु के आगमन पर!

दोपहर के वक़्त हम लोग क्रास्नोविदोवो पहुंच गये। ऊँचे कगार के ऊपर नीली गुम्बद वाला एक गिर्जाघर बना हुआ था। तीर पर, उसकी बग़ल से किसानों के मज़बूत घरों की एक क़तार चली गयी थी। सुनहली धूप में घरों के ऊपर फूस के पीले छाजन प्रकाश को प्रतिबिम्बित कर रहे थे। अत्यन्त सुहावना दृश्य था।

वोल्गा में अग्निबोट पर जाते हुए मैंने कई बार इस गांव को देखा था और उसकी अनुपम सुषमा से प्रभावित हुआ था।

मैंने और कुकुश्किन ने मिल कर नाव से सामान उतारना शुरू किया। रोमास नाव से बोरे दे रहा था। बोला:

"हो तुम ताक़तवर!"

और आँखें हाथ के बोरे पर गड़ाये ही उसने पूछा:

"छाती में दर्द तो नहीं है?"

"बिलकुल नहीं।"

कितनी होशियारी से उसने सवाल किया था। मैं क़ायल हो गया उसका। क्योंकि मैं नहीं चाहता था कि गांव वालों को मेरी आत्महत्या करने की कोशिश की बात मालूम हो जाय।

कुकुश्किन, जिसे बोलने की बीमारी थी, कहने लगा:

"बेशक मज़बूत आदमी हो तुम—काम से फ़ाज़िल क़ूवत वाले। कौन ज़िले में घर है तुम्हारा? निज्नी नोवगोरोद? अरे! तब तो तुम

पन-कीड़े हो। निज्नी वालों के बारे में यही मसल मशहूर है। निज्नी के बारे में दूसरी मसल है, 'एक बड़ी सी समुद्री चिड़िया उड़ी किधर से आज?'"

एक लम्बा छरहरा किसान—सूती क़मीज़ और पतलून पहने हुए, घुंघराली दाढ़ी, सर पर लाल काकुल—ढाल पर दौड़ता हुआ आया। उसके पांव नंगे थे, और वे घाट की तर ज़मीन पर फिसलते आ रहे थे। अनगिनत छोटी-छोटी धाराओं की रूपहली चमक उसके दौड़ने के कारण अस्तव्यस्त हो गया।

किनारे पहुँच कर वह उच्च और स्निग्ध स्वर में चिल्लाया:

"आ गये तुम लोग! स्वागत!"

एक क्षण के लिए उसने हम लोगों का काम देखा। इसके बाद झट उसने दो मोटे डण्डे नाव से नीचे तक पुल की तरह रख दिये। वह फुर्ती से नाव में आ गया और आदेश दिया:

"अब पीपे उतारेंगे। ऐ नौजवान! ज़रा इधर आ जाना।"

वह असाधारण रूप से आकर्षक था और ख़ूब बलिष्ठ। हलके, नीले रंग की आँखें, जिनमें अनूठी आभा थी, लाल गाल, सीधी और ख़ूब ऊँची नाक।

रोमास ने कहा:

"इज़ोत! सर्दी लग जायगी तुम्हें।"

"कौन—मुझे? मुझे सर्दी लग ही नहीं सकती।"

मिट्टी के तेल का एक पीपा लुढ़का कर हम लोग घाट पर ले आये। इज़ोत ने मुझे सर से पैर तक देख कर कहा:

"दूकान में काम करने आये हो?"

कुकुश्किन बोला:

"कुश्ती होनी चाहिए तुम दोनों की। लड़ोगे?"

इज़ोत ने जवाब दिया:

"फिर मुँह तुड़वा आये हो न?"

"करना क्या है ऐसों का?"

"कैसों का?"

"मुँह तोड़ने वालों का...।"

"धत्तेरी की।" इज़ोत ने ऊब कर कहा और रोमास की ओर मुड़ कर बोला, "गाड़ियाँ आयी जाती हैं। मैंने दूर से ही नाव देख ली थी। बहुत जल्दी आये। एंटोनोविच, तुम घर चलो, मैं सामान भेजवाने का इन्तज़ाम कर लूँगा।"

रोमास के प्रति उसका व्यवहार स्नेह और दोस्ताने का था, बल्कि बुजुर्गाना, यद्यपि उम्र में रोमास उससे कोई दस साल बड़ा रहा होगा।

आध घण्टे बाद हम लोग गाँव के एक घर में दाख़िल हुए। घर अभी बन कर तैयार हुआ था। उसमें से राल तथा सन की गन्ध गयी न थी। रहने वाला भाग साफ़-सुथरा और आरामदेह था। एक तीक्षण-दृष्टि किसान औरत फुर्ती से खाने की मेज़ सजा रही थी। खोखोल एक खुले बक्स से किताबें निकाल कर उन्हें चूल्हे के पास की आलमारी में सजा रहा था। मुझसे बोला:

"तुम्हारा कमरा कोठे पर है।"

कोठे की खिड़की से गांव का एक भाग दिखायी पड़ता था। घर के ठीक सामने एक सूखा नाला था जिसमें झाड़झंखाड़ उग

आये थे। उसमें कई ग़ुस्लख़ाने बने थे जिनकी छतें खिड़की से नज़र आती थीं। नाले के उस पार बग़ीचे और काले खेत थे जो दूर क्षितिज में दिखायी देने वाले जंगलों तक फैले हुए थे। किसी ग़ुस्लख़ाने के छप्पड़ पर टाँगें फैलाये एक किसान बैठा था। उसके हाथ में एक कुल्हाड़ा था। धूप से बचने के लिए भौंहों के पास हथेली रखे वह वोल्गा की ओर देख रहा था। गांव की गली में किसी एक गाड़ी के पहिये चूँ-चूँ कर रहे थे। कहीं एक गाय ज़ोर से रभाँ रही थी। झरनों का कलकल शब्द पूरे वातावरण में छाया हुआ था। सिर से पांव तक काले वस्त्र धारण किये एक बुड्ढी औरत एक घर के फाटक से बाहर आयी और पीछे मुड़ कर ज़ोर से बोली :

"मर, मुए!"

उसकी आवाज़ सुनते ही दो छोटे-छोटे लड़के, जो पत्थर और मिट्टी ला-ला कर पानी की एक पतली धारा पर बान्ध बना रहे थे, तेज़ी से भागे। बुढ़िया ने लकड़ी का एक चैली उठा कर उसके ऊपर थूका और थूक कर धार में डाल दिया। इसके बाद लात मार कर बच्चों के बनाये बान्ध को तोड़ दिया। उसके पैरों में मर्दों के जूते थे। इसके बाद ढाल से उतर कर वह नदी की ओर चली गयी।

मैंने मन ही मन सोचा: देखूँ इस गांव में ज़िन्दगी कैसे कटूँगा?

नीचे से भोजन का बुलावा आया। इज़ोत मेज़ के पास, लम्बी टाँगों को सामने फैलाये, बैठा हुआ था। उसके खुले पाँव

नीले-लाल रंग के थे। वह रोमास से बातें कर रहा था पर मेरे आते ही रुक गया।

रोमास चिन्ताग्रस्त दिखायी पड़ रहा था। वह बोला:

"हाँ, बोलो, क्या-क्या हुआ?"

"बस इतना ही। तो तै रहा कि हम लोग स्वयं सभी चीज़ों की देखभाल करेंगे। इसके अलावा बाहर निकलते वक़्त जेब में रिवाल्वर या डण्डा रखना मत भूलना। बरिनोव के सामने सम्भल कर बातें करना। उसके और कुकुश्किन के पेट में बात नहीं पचती, औरतों की तरह।" फिर मेरी ओर मुड़ कर बोला, "क्यों भैया, मछली का शिकार खेलने का शौक है?"

"नहीं।"

रोमास छोटे फल उत्पादकों को संगठित करने की आवश्यकता के बारे में बोलने लगा। उनका अपना संगठन होने से ही बड़े व्यापारियों के चंगुल से उनको छुटकारा प्राप्त हो सकता है। इज़ोत खूब ग़ौर से सुनता रहा। अन्त में बोला:

"ठीक है, पर ये मोटी तोन्द वाले तुम्हें चैन से न रहने देंगे।"

"देखा जायगा।"

"हाँ, पर मेरी बात भूलना मत!"

इज़ोत को देख कर मैं सोच रहा था:

"कारोनिन और ज़्लातोव्रात्स्की ने ऐसे ही किसानों को अपनी कहानियों में चरित्र-नायक बनाया होगा।"

क्या सचमुच मैं नये जीवन का आरम्भ कर रहा हूँ — उद्देश्यपूर्ण

नया जीवन? क्या मेरे ये नये मुलाक़ाती वास्तविक रूप से ठोस कार्यक्रम में संलग्न हैं?

भोजन समाप्त करते वक़्त इज़ोत ने कहा:

"मिखाइल एँटोनोविच! जल्दबाज़ी से काम लेना ठीक नहीं। अच्छे कामों में जल्दी कभी नहीं फलती। सम्भल कर ही ऐसे काम में आगे बढ़ना चाहिये।"

उसके चले जाने के बाद रोमास स्वतः कहने लगा:

"कितना होशियार आदमी है! और ईमानदार भी। दुर्भाग्य की बात है कि वह पढ़ा-लिखा नहीं, टो-टा कर किताबें पढ़ सकता है। लेकिन जुट गया है तो सीख ही लेगा। तुम चाहो तो उसकी मदद कर सकते हो!"

शाम तक वह मुझे दूकान की तमाम चीज़ों के दाम समझाता रहा। उसने कहा:

"यहाँ के दूसरे दोनों दूकानदारों से मैं सभी सामान सस्ता बेचता हूँ। यह बात उन लोगों को पसन्द नहीं। वे हर तरह से मुझे नीचा दिखाने की कोशिश में हैं। इन दिनों वे मुझे पीटने की तैयारी कर रहे हैं। मैं तो यहाँ दूकानदारी करने या पैसे कमाने आया नहीं हूँ। यह दूकान भी यही समझो कि तुम्हारे नान-कारखाने की तरह है।"

मैंने कहा कि यह मैं पहले ही समझ रहा था।

"बिलकुल ठीक...। जनता को किसी न किसी प्रकार शिक्षित करना ही होगा। क्यों?"

दूकान अन्दर से बन्द थी। हाथ में लैम्प लेकर हम लोग एक-एक कर सभी आलमारियों का चक्कर लगा रहे थे। और दूकान

के बाहर कोई आदमी हम लोगों के साथ ही साथ चल रहा था। उसके पैरों की दबी चाप—कभी कीचड़ में उसके जूतों की मच-मच या ओसारे में पैरों की धबधबाहट—साफ़ सुनायी पड़ रही थी।

रोमास ने कहा:

"सुन रहे हो न? वह है मिगुन। उस के कोई नहीं है—न नाते-रिश्तेदार, न खेत-बारी। छुट्टा सांड़ है वह। जैसे खूबसूरत लड़कियों को चोंचलेबाज़ी में मज़ा आता है वैसे ही इसे गुण्डागिरी में। उससे सावधानी से बातें करना—उससे ही क्या, यहाँ सभी से बहुत सम्भाल कर बातें करना...।"

इसके बाद हम लोग फिर रहने वाले कमरे में चले गये। वहाँ रोमास चूल्हे पर अपनी चौड़ी पीठ टिका कर आँखें सिकोड़ कर और पाइप सुलगा कर दाढ़ी में धुएँ के गोले फेंकता हुआ विचारों से सने सरल, सीधे शब्द बोलने लगा। उसने बताया कि वह मुझे अपनी जवानी का बहुमूल्य समय व्यर्थ ही अपव्यय करते देख रहा था। बोला:

"तुम योग्य हो, धीर-गम्भीर हो, तुम्हारा लक्ष्य भी प्रशंसनीय है। आवश्यकता केवल अध्ययन की है—ऐसा अध्ययन नहीं जो किताबों को तुम्हारे तथा जनता के बीच दीवार बना दे। एक बार एक बूढ़े सांप्रदायिकतावादी ने मुझसे बिल्कुल ठीक ही कहा था, 'हर सीख का स्रोत मनुष्य है।' आदमी से जो सीख मिलती है वह किताबों की सीख से कठिन होती है क्योंकि मनुष्य ज़रा टेढ़ा गुरु होता है। पर उससे जो सीखा जाता है वह अमिट हो जाता है।"

फिर उसने कहना शुरू किया कि सबसे पहले किसानों को

जगाना होगा। इस विचारधारा से मैं परिचित हो चुका था। पर आज उसके अन्दर मुझे नवीन और अधिक प्रकाण्ड अर्थ दिखायी पड़ा।

"तुम्हारे शहरी विद्यार्थी भाई जो हैं वे जनता को प्यार करने की लम्बी-चौड़ी बातें किया करते हैं। मैंने उनसे साफ़ कहा, ये बेकार की बातें हैं। जनता को नहीं प्यार कर सकते आप। इस तरह का प्यार कोरी बकवास है...।"

वह हँसा, दाढ़ी के भीतर, और बड़े ग़ौर से मेरे चेहरे को देखा। इसके बाद कमरे में चहलक़दमी करते हुए वह गुरु-गम्भीर स्वर में कहने लगा:

"प्यार करने का अर्थ है, हाँ में हाँ मिलाना, तरह देना, उपेक्षा करना, माफ़ करना। ये सारी चीज़ें बिलकुल दुरुस्त हैं अगर औरत से प्यार करना हो। लेकिन जनता? क्या जनता की अज्ञानता उपेक्षणीय है? क्या उसकी भ्रमपूर्ण धारणाओं के साथ हाँ में हाँ मिलायी जा सकती है? क्या उसके ओछेपन को तरह दिया जा सकता है? क्या उसकी क्रूरताएँ माफ़ की जा सकती हैं? क्या यह सम्भव है?"

"नहीं।"

"यही तो बात है! तुम्हारे शहरी दोस्त हैं कि नेक्रासोव को पढ़ते हैं और नेक्रासोव के ही गीत गाते हैं। लेकिन नेक्रासोव कहाँ तक कल काम आ सकता है? किसान जनसमुदाय को तो हमें स्पष्ट शब्दों में कहना है, 'देखो भाई, तुम बुरे लोग नहीं, लेकिन केवल एक सीमा तक, क्योंकि जो ज़िन्दगी तुम्हारी है वह निश्चित रूप से बुरी है और तुम हो कि अपनी ज़िन्दगी सुधारने के लिये उंगली तक हिलाने को तैयार नहीं। जानवर भी अपने हितों की तुमसे ज़्यादा

समझदारी रखता है। वह तुमसे ज़्यादा होशियारी से अपनी हिफ़ाज़त करता है। तुर्रा यह कि तुम्हीं सारी चीज़ों के स्रोत हो। सरदार-जागीरदार, पण्डे-पुरोहित, बड़े-बड़े विद्वान, ज़ार-बादशाह— पहले तो ये सब के सब किसान ही हुआ करते थे। है या नहीं? इसलिये इस तरह रहना सीखो कि कोई तुम्हें रौन्द न सके...।"

रसोई में जाकर उसने खाना पकाने वाली से समावार सुलगाने को कहा और लौट कर मुझे अपनी किताबें दिखाने लगा। सभी किताबें वैज्ञानिक विषयों से संबंधित थीं— बक्ल, लायल, हार्तपुल, लेकी, लेबक, टेलर, मील, स्पेंसर, डारविन। इनके अलावा रूसी लेखक पीसरेव, दोब्रोल्युबोव, चेर्नीशेव्स्की, पुश्किन, गोंचारोव की 'फ़्रेगट पलाडा', नेक्रासोव, आदि।

अपनी चौड़ी हथेलियों से वह किताबों को प्यार से थपथपा रहा था, जैसे बिल्ली के प्यारे बच्चे हों। भावावेश में आकर वह कहने लगा:

"लाजवाब किताबें हैं ये! इसे देखो— मिलती नहीं आसानी से। इसे जब्त करके जला देने का हुक्म हुआ था। लेकिन राज्य क्या है, इसका कच्चा चिट्ठा जानने के लिये इस किताब को ज़रूर पढ़ना चाहिए!"

यह कह कर उसने हाब्स का "लेवाइथैन" मेरे हाथ में रख दिया।

"और यह भी राज्य के ही विषय में है पर हलकी, और अधिक मज़ेदार।" मज़ेदार किताब थी मैकियाविली की "इल प्रिंसिपी"।

चाय के वक़्त संक्षेप में उसने अपना जीवन वृतान्त सुनाया। उसका बाप चेर्निगोव में लोहार था। वह ख़ुद रेलवे में तेल डालने वाले खलासी का काम करता था। वहीं, किएव में, वह क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आया। उसने मज़दूरों का एक अध्ययन मण्डल संगठित किया। इसके बाद वह गिरफ़्तार हो गया। दो साल जेल में रखने के बाद उसे याकूत्स्क प्रदेश में दस वर्ष के लिए निष्कासित कर दिया गया।

"याकूत उलूस का वह जीवन भी क्या चीज़ थी? शुरू में तो मैंने समझा कि यहीं प्राणों का अन्त होगा। ऐसी कड़ाके की सर्दी पड़ती थी कि लगता कि खोपड़ी के अन्दर भेजा बर्फ़ हो जायगा। लेकिन भेजे की वहाँ ज़रूरत ही नहीं मालूम पड़ती थी। पर कुछ दिनों के बाद पता चला कि इधर-उधर कुछ रूसी लोग भी हैं। उंगलियों पर गिनने लायक़ थी उनकी संख्या, फिर भी थे तो कुछ लोग। और नये-नये लोगों की आमद जारी रही सरकार की कृपा से ताकि अकेलापन नहीं रहा। बड़े अच्छे लोग थे सभी। खास कर व्लादिमिर कोरोलेन्को नामक एक विद्यार्थी से मेरी गहरी दोस्ती हो गयी। हमारे लौटने के बाद ही उसकी भी मियाद पूरी हुई। कुछ दिनों तक हम दोनों में खूब पटी। पर धीरे-धीरे दोनों दो रास्ते थामते गये। हम लोगों के बीच बहुत सी चीज़ों में समानता थी। पर लगता है कि समानता पर आधारित दोस्ती टिकती नहीं। लेकिन आदमी वह दिल का सच्चा और इरादे का दृढ़ है, और हर काम में तेज़। कुछ दिन तो उसने प्रतिमाओं की रंगाई करने का काम शुरू किया था। उसका यह काम मुझे नहीं

भाता था। अब सुना है कि उसके लेख अक्सर साहित्यिक पत्रों में निकलते हैं और काफ़ी अच्छा लिखता है वह।"

उस दिन आधी रात तक रोमास बातें करता रहा। स्पष्ट था कि वह आरम्भ में ही यह जता देना चाहता था कि मेरा स्थान उसी के साथ है। सत्संग का ऐसा गम्भीर आनन्द मैंने पहले कभी नहीं अनुभव किया था। आत्महत्या के प्रयास के बाद से मैं अपनी नज़रों में आप ही बहुत गिर गया था। मैं अपनेआप को छिछला घड़ा समझने लगा था। मुझे लगता था कि मैंने घोर अपराध किया है। जिन्दगी शर्म के कारण दुःसह मालूम होती थी। रोमास ने इस चीज़ को तोड़ लिया था अतः बड़ी चतुराई से एवं सरलता के साथ अपना जीवन-वृतान्त सुना कर उसने मेरे खोये सन्तुलन को वापस ला दिया। सचमुच उस दिन की शाम अविस्मरणीय है।

रविवार को गिर्जाघर की प्रार्थना समाप्त हो जाने के बाद दूकान खोली गयी। फ़ौरन ही लोगों की भीड़ जमा हो गयी। सबसे पहले मात्वी बरिनोव पहुँचा — मैला-कुचैला, बिखरे बाल, वनमानुष जैसे लम्बे हाथ, और आबदार ज़नाने आँखों में शून्य भाव।

रोमास को नमस्कार करने के बाद उसने पूछा:

"शहर का कुछ हाल बताओ।" पर जवाब की प्रतीक्षा किये बिना ही कुकुश्किन से, जो पीछे से आ रहा था, बोला:

"ऐ! तुम्हारी बिल्लियों ने एक और मुर्ग़ी मार डाला!"

दूसरे ही क्षण वह खबर सुनाने लगा कि गवर्नर ज़ार से मिलने के लिए कज़ान से सेंट-पीटर्सबर्ग गया है। वह सभी तातारों

को काकेशस और तुर्किस्तान में भेजवा देने का हुक्म निकलवाने गया है। वह लगा गवर्नर की तारीफ़ करने।

"बड़ा तेज़ आदमी है! अपने काम में पूरा होशियार...।"

"यह सब तुम पेट से गढ़ कर कह रहे हो," रोमास ने कहा।

"कौन, मैं? मैंने कब गढ़ा?"

"यह तो तुम ही जानते होगे।"

"यही तो तुम्हारी आदत है, एंटोनोविच। तुम्हें किसी आदमी की बात का विश्वास ही नहीं," बरिनोव ने मीठी भर्त्सना के स्वर में कहा, "मुझे तो तातारों के लिए बहुत अफ़सोस है। काकेशस में टिकना आसान काम नहीं है।"

एक दुबला-नाटा आदमी, किसी का उतारा फटा कोट जो उसे बिलकुल ढीला थां पहने, मानो परदे की आड़ से निकल कर अचानक सामने आ गया। उसके भूरे चेहरे की मांसपेशियाँ अजीब ढंग से सिकुड़ी हुई थीं जिससे उसके काले ओठ बराबर खुले रहते थे और ऐसा लगता था कि वह जबरन हँस रहा है। उसकी बायीं आँख जो बड़ी तीक्ष्ण थी, लगातार मिचक रही थी। भौं के ऊपर धाव का दाग़ था जो आँख मिचकाने के कारण हिला करता था।

"यह आ गये मिगुन!" बरिनोव ने व्यंगपूर्ण स्वर में कहा। "कहो भाई, रात किसके यहाँ चोरी की?"

मिगुन ने टनकदार स्पष्ट आवाज़ में जवाब दिया:

"तुम्हारे ही यहाँ तो चोरी की थी," और रोमास की ओर मुख़ातिब होकर सलाम करने के लिए टोपी उतार ली।

हमारा पड़ोसी एवं मकानमालिक पानकोव भी आ पहुँचा। वह शहरी काट की जाकिट पहने हुए था, गले में लाल रूमाल, पैरों पर गैलोश और सीने पर चान्दी की चैन जो लम्बाई में दो लगामों के बराबर रही होगी। मिगुन को कठोर दृष्टि से सिर से पांव तक देख कर वह बोला:

"अगर तू फिर हमारी तरकारी की क्यारी में घुसा तो अब की मारे डण्डों के तेरा सिर तोड़ दूँगा! बुड्ढा बदमाश कहीं का!"

"बस वही क़िस्सा," मिगुन ने शान्त स्वर में कहा। फिर एक निश्वास छोड़ कर बोला, "ठीक ही तो है। अगर किसी बेचारे का सिर न तोड़ा जाय तो ज़िन्दगी ही नीरस हो जायगी।"

पानकोव ग़ुस्से में बरस पड़ा उसके ऊपर, पर मिगुन बोलता गया:

"और बुड्ढा किसको कहा? छियालिस साल का क्या बुड्ढा होता है।"

"पिछले साल बड़े दिन में तो तुम तिरपन साल के थे," बरिनोव ने चिल्ला कर कहा, "तुमने ख़ुद कहा था। अब झूठ क्यों बोलते हो?"

सुस्लोव* भी आया—दाढ़ी वाला, बूढ़ा; रोबीला चेहरा। मछुआहा इजोत भी आ पहुँचा। इस तरह कुल कोई दस आदमी जमा हो गये दूकान में। खोखोल ओसारे पर, दूकान के दरवाज़े की बग़ल में बैठा शान्ति से पाइप पी रहा था और सबों की बातें सुन

---

* सभी किसानों के नाम मुझे ठीक से याद नहीं हैं। सम्भव है कुछ के नामों में ग़लती कर दी हो मैंने—ले०

रहा था। आने वाले ओसारे की सीढ़ियों और दोनों ओर पड़ी बेंचों के ऊपर बैठ गये।

हवा सर्द थी। नीले आसमान में बादलों के दौड़ने से मौसम धूप-छाँह था। आकाश मानो अभी तक शरदऋतु के पाले के कारण जमा हुआ था। पोखरियों और नालों के जल में आकाश की आँखमिचौली प्रतिबिम्बित हो रही थी। बादल हट जाते तो वे दर्पण की तरह चमक उठते और जब धूप बादलों में छिप जाती तो उनमें मखमली कोमलता छा जाती। लड़कियाँ रंग-बिरंगी पोशाकें पहने, वोल्गा के तीर जा रही थीं। गड़हियों को पार करते वक़्त वे अपने घघरों को ऊपर उठा लेतीं जिससे उनके मोटे मज़बूत चमड़े के ऊँचे जूते दिखायी पड़ने लगते। छोटे-छोटे बच्चे कन्धों पर मछली के काण्टे लिए दौड़ रहे थे। गली में गुज़रते किसान दूकान में बैठे लोगों को कनखी से देख कर अभिनन्दन के हेतु अपने टोप या मोटे नमदे की टोपियाँ उतार लेते थे।

मिगुन और कुकुश्किन मित्रभाव से बहस कर रहे थे। उनके बीच पुराना प्रश्न छिड़ा हुआ था: किसकी मार अधिक ज़बर्दस्त होती है—महाजन की या ज़मींदार की। पर मिगुन की टनकदार आवाज़ में कुकुश्किन का लड़खड़ाता स्वर डूब जाता था। वह कह रहा था:

"फ़िंगेरोव नामक एक ज़मींदार थे। उनके बाप बड़े ताक़तवर थे। एक बार उन्होंने नेपोलियन बोनापार्ट की मूंछ कबाड़ ली थी। खुद फ़िंगेरोव एक साथ दो आदमियों की गर्दन पकड़ कर दोनों का माथा इतने ज़ोर से लड़ा दिया करते कि दोनों वहीं के वहीं ढेर हो जाते।"

"ठीक है, तुम्हारे जैसों को ढेर करने के लिए उतना ही काफ़ी होगा," कुकुश्किन बोला। "पर महाजन जितना खाता है उतना बाबू लोग नहीं...।"

रोबीला सुस्लोव, जो सबसे ऊपर की सीढ़ी पर बैठा हुआ था, बोला:

"किसानों की क्या बात पूछते हो आजकल, मिखाइल एंटोनोविच! जब ज़मींदारों का राज था तो मजाल क्या थी कि कोई आस्कत में वक़्त गंवा सके। हर आदमी का काम बन्धा हुआ था, और उसे पूरा ही करना पड़ता था...।"

इज़ोत बोला:

"एक काम करो भैया! दरख़ास्त भेज दो कि फिर भूदास प्रथा लागू कर दी जाय।"

रोमास ने उसे आँखों से ही डाण्टा और ओसारे के कटघरे पर पाइप की राख झाड़ने लगा।

मैं देर से प्रतीक्षा कर रहा था कि वह स्वयं कुछ बोलेगा। और किसानों की अनर्गल बातों को ध्यान से सुनता हुआ मैं मन ही मन कल्पना कर रहा था कि रोमास उन्हें क्या समझायेगा। मुझे लगा कि वार्तालाप में शामिल होने के कई मौक़े वह छोड़ चुका है! लेकिन वह था कि चुप, केवल सुनता जा रहा था। मूर्तिवत बैठा वह हवा का उठना देख रहा था। गढ़ैयों का पानी तरंगित होने लगा था। और बादलों के टुकड़े सिमट कर घने काले मेघ में परिवर्तित हो गये। नदी में किसी अगिनबोट की सीटी सुनायी पड़ी। घाट पर लड़कियों के गाने की आवाज़ आ रही थी।

किसी के हार्मोनियम के सुर में सुर मिला कर वे एक साथ गा रही थीं। झूमता-झामता एक नशेबाज़ गली में आया—वह हिचकियाँ ले रहा था,और बकझक कर रहा था। पांव धरती पर टेढ़े-मेढ़े पड़ रहे थे, दोनों हाथ झूल रहे थे। वह रह-रह कर गली में पानी से भरे गढ़ों में लुढ़क पड़ता था। किसानों की बातचीत, मधुर चाल से, जारी थी। उनके शब्दों में नीरस, निराशा का भाव था। मेरा मन भी उदासी से भरा जा रहा था, क्योंकि मौसम बिगड़ता जा रहा था। सर्द आसमान में बादल बरसने ही वाले थे। और मुझे शहर की चहलपहल और कोलाहल याद पड़ रहा था—स्वरों की विविधता, सड़कों पर नये-नये रंग के लोगों का निरन्तर आना-जाना, सबों की चुहलपूर्ण बातें, विचारोत्तेजक भावनाओं का आदान-प्रदान।

चाय के वक़्त मैंने खोखोल से पूछा कि किसानों को वह अपनी बातें कब समझाता है।

"बातें? किस चीज़ के बारे में बातें?" उसने पूछा।

जब मैंने अपना मतलब समझाया तो खूब ग़ौर से सुनने के बाद वह बोला:

"ओ! ऐसी बातें अगर मैं उनसे करने लगूं—और वह भी बाज़ार में बैठ कर—तो दूसरे ही दिन फिर याकूतों के देश भेज दिया जाऊँ . . .।"

उसने तम्बाकू भर कर पाइप सुलगाया और एक ज़ोरदार कश खींच कर बोलने लगा। उसके शब्दों में आवेश न था, और हर शब्द अविस्मरणीय। किसान स्वभाव से ही कौए की तरह

होशियार और शक्की होता है। वह अपने पर शक करता है, अपने पड़ोसी पर शक करता है और अजनबी पर तो सब से ज़्यादा शक करता है। भू-दासत्व से आज़ाद हुए उसे अभी कुल तीस साल ही तो हुए हैं। चालीस या उससे ऊपर का हर किसान भूदास रह चुका है और यह चीज़ उसे याद है। जो आज़ादी उसे मिली है उसका अर्थ क्या है, यह समझना कठिन है। यों देखो तो आज़ादी का अर्थ है, मनचाही ज़िन्दगी बिताना। पर चारों तरफ़ तो अहलकारों का, सरकारी हाकिमों का जाल बिछा हुआ है; मनचाही ज़िन्दगी की बात उनके आगे कोरी कल्पना हो जाती है। ज़मींदारों से किसानों को ज़ार ने हथियाया, अत: सोचा तो वही सभी किसानों का एकछत्र मालिक है। तो यह आज़ादी जो मिली वह क्या चीज़ है? किसान सोचता है कि अचानक कोई दिन आवेगा जब ज़ार उसे इसका मतलब समझा देगा। ज़ार पर किसान का अटूट विश्वास है। सारी मिलकियत उसी की है। उसी ने किसानों को ज़मींदारों के हाथ से अपने हाथ में ले लिया। किसी दिन वही महाजनों के हाथ से तमाम जहाज़ और दूकानें ले लेगा। किसान ज़ार का अनुयायी है। उसके खयाल से बहुत से मालिकों का होना ठीक नहीं—एक मालिक होना बेहतर है। वह उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा है जब ज़ार उसे आज़ादी का असली अर्थ समझायेगा। बस उसी दिन हड़पंत का महान दिवस आरम्भ हो जायेगा—जिसके जो हाथ लगेगा हड़प। हर आदमी मन ही मन उसी दिन की कामना करता है, साथ ही उस दिन से डरता भी है। हरेक का दिल भीतर ही भीतर धड़का करता है—कहीं पुनर्वितरण के उस निर्णायक दिन वह चूक

न जाय। और हर आदमी को अपनी क्षमता पर शक है। भूख सभी की भारी है, और पाने को भी बहुत है। पर लेगा किस तरह? सभी की आँखें तो बस उसी चीज़ पर है। इसके अलावा, चारों ओर हाकिम-हुक्काम की भरमार है, जो किसानों के विरोधी हैं और ज़ार के भी। पर बिना हाकिमों के काम भी नहीं चल सकता। अगर वे नहीं रहें तो लोग एक दूसरे का गला काटना शुरू कर दें।

बाहर वर्षा हो रही थी—बसन्त ऋतु की मूसलाधार वर्षा। हवा के थपेड़ों से आलोड़ित होकर पानी की बून्दें पटापट खिड़की के शीशों से टकरा रही थीं। बाहर सारी दुनिया सघन अन्धकार में डूब गयी थी। और उसी अन्धकार का एक कोना मेरे हृदय में भी प्रवेश कर गया था। खोखोल का शान्त, विचारपूर्ण स्वर जारी था:

"किसान को यह समझाना होगा कि धीरे-धीरे करके ज़ार की सत्ता अपने हाथ में लेने की उसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। उसे बताना है कि जनता को अपने हाकिम अपने में से स्वयं चुनने का अधिकार होना चाहिये—अपना स्तानोवोय* अपना गवर्नर, अपना ज़ार भी...।"

"लेकिन यह समझाने में सौ वर्ष लग जायँगे।"

"तो तुम क्या यह समझ रहे थे कि अगले पर्व तक यह काम पूरा हो जायगा?" खोखोल ने गम्भीरतापूर्वक टीका की।

शाम को वह कहीं बाहर चला गया। ग्यारह बजे के क़रीब घर के बिलकुल पास ही गोली की आवाज़ सुन कर मैं आन्धी

---

* स्तान (तहसील या सबडिविजन) का प्रधान पुलिस अफ़सर।

पानी और अन्धेरे में ही बाहर दौड़ा। देखा मिखाइल एण्टोनोविच फाटक पर चला आ रहा है—धीरतापूर्वक अपने विशाल शरीर को झुमाता, गली में पानी की नालियों को बचाता हुआ। उसने पूछा:

"बाहर क्यों आये? गोली की आवाज़ से? मैंने ही दागी थी...।"

"क्यों, बात क्या थी?"

"कुछ नहीं। यही कुछ लोग डण्डे लेकर मेरे ऊपर हमला करना चाहते थे। मैंने कहा खबरदार, नहीं तो गोली चला दूंगा। वे नहीं माने तो मैंने आसमान में एक फ़ायर किया। हवा को तो गोली लगती नहीं।"

ड्योढ़ी में रुक कर वह अपने भीगे कपड़े उतारने लगा। वह घोड़े की तरह हाँप रहा था। दाढ़ी निचोड़ कर पानी गारते हुए बोला:

"इन साले बूटों में मालूम होता है सुराख हो गया है। अब इन्हें बदलना ही होगा। एक काम मेरा कर दोगे? ज़रा रिवाल्वर साफ़ कर दो, नहीं तो जंग लग जायगी—बस थोड़ा मिट्टी का तेल लेकर रगड़ दो...।"

इतना बड़ा काण्ड हो गया, फिर भी शान्त और सुस्थिर! मैं दंग था उसके ऊपर। उसकी भूरी आंखों में अडिग निश्चय का भाव था। हम दोनों अन्दर चले गये। शीशे के सामने खड़ा होकर दाढ़ी में कंघी करते हुए कहने लगा:

"बाहर जाया करो तो होशियार होकर। खास कर शाम के वक़्त छुट्टियों के दिन। वे लोग तुम्हें भी पीटने की ताक में होंगे। लेकिन डण्डा लेकर मत जाना। उससे गुंडों का पारा गरमा हो जाने का

ख़तरा है; वे यह भी समझ सकते हैं कि तुम डर रहे हो। पर, दरअसल डरने की कोई बात नहीं है! वे सब एक नम्बर के कायर हैं...!"

मेरा जीवन बड़े सुख से बीतने लगा। मैं हर रोज़ कोई न कोई नया और जानदार तजुरबा हासिल कर रहा था। प्राकृतिक विज्ञानों सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने में मैं जी-जान से जुट गया, क्योंकि रोमास ने कहा था:

"सबसे पहले और सबसे अधिक मनुष्य को इस विज्ञान से परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। इन विज्ञान में मानव की सर्वश्रेष्ठ तर्कबुद्धि निहित है।"

हफ़्ते में तीन शाम मैं इज़ोत को पढ़ाया करता था। शुरू में मुझे गुरु मानने में उसने हिचकिचाहट दिखायी। मेरे पढ़ाने पर वह हँसा करता था। पर दो-चार पाठों के बाद सुशीलता से बोला:

"कुछ भी कहो यार, पढ़ाते तुम अच्छा हो! तुम्हें तो स्कूल में मास्टर होना चाहिए था।"

अचानक उसने प्रस्ताव किया कि डण्डाकशी खेला जाय।

रसोईघर से हम एक डण्डा ले आये और फ़र्श पर पांव सटा कर डण्डा खींचने लगे। दोनों ने दोनों हाथों से डण्डा थाम रखा था और एक दूसरे को अपनी ओर खींच रहे थे। खोखोल खड़ा होकर ताली पीट रहा था और दोनों को बढ़ावा देता जाता था:

"शाबाश! लगे ज़ोर! ले लिया है!"

अन्त में इज़ोत की जीत हुई—उसने मुझे खींच लिया। इसके बाद से वह मुझसे और खुश रहने लगा। बोला:

"कोई बात नहीं! फिर भी तुम्हारे बदन में कम ताक़त नहीं। अफ़सोस कि तुम्हें मछली मारने का शौक़ नहीं वर्ना ले चलता तुम्हें भी अपने साथ नदी में। रात के वक़्त वोल्गा में बिल्कुल स्वर्ग का आनन्द आता है!"

वह खूब मन लगा कर पढ़ता था और तेज़ी से तरक़्क़ी करने लगा। अपने ज्ञान के विस्तार पर उसे स्वयं अचम्भा होता था। पढ़ते-पढ़ते वह बीच में उठ कर आलमारी से कोई किताब उतार लेता और भौंहें बाँकी करके, टो-टो कर बीच से दो-तीन लाइनें पढ़ डालता। इसके बाद विजय के उन्माद में भरकर, इतराता हुआ, चिल्ला कर कहता:

"पढ़ लिया मैंने! वाह! सुना न तुमने?"

फिर आँखें बन्द कर लाइनों को दुहराता:

सुनसान विजन, करता रोदन
पंछी-विलाप, ज्यों माँ-प्रलाप...।

"सुना न तुमने?"

दो-एक बार उसने चुपके से मेरे कान से सट कर पूछा:

"एक बात ज़रा समझाओ हमें, भैया। कैसे हो जाता है यह? टेढ़े-बकुचे निशान खींचे हुए हैं काग़ज़ पर, पर पढ़ो तो लफ़्ज़ बन जाते हैं जो हम लोग रोज़ बोलते-चालते हैं। किताब के ऊपर कैसे उतर आती है हम लोगों की बोली? कोई कान में नहीं कहता। आँख से देखने से ही बोली निकल आती है। तसवीर हो तो कहें भी।

13—1072

लेकिन यहाँ जो खाली निशान हैं और उसी में मन की सारी बातें उतर आती हैं। कैसे हो जाता है यह?"

क्या जवाब देता मैं उसे? मेरे "मैं नहीं कह सकता" से उसे बड़ी निराशा होती थी।

ठण्डी साँस लेकर कहता, "यह जादू का खेल है," और किताब को रोशनी के सामने रख कर ग़ौर से निहारने लगता।

उसका बालकों जैसा भोलापन बड़ा ही मनमोहक था। भोले किसानों का जो आदर्श रूप पुस्तकों में चित्रित किया जाता है, उसका वह मूर्त रूप था। हृदय से वह कवि था, जैसा कि सभी मछुआहे हुआ करते हैं। वोल्गा, रात्रि की नीरवता, एकान्त जीवन एवं विचार तल्लीनता उसे प्रिय थी।

तारों की ओर देख कर वह मुझसे प्रश्न करता:

"खोखोल कहता है कि शायद उनके अन्दर यहाँ ही जैसे जीवित लोग बसते हैं। तुम्हारा क्या ख़याल है? अगर यहाँ से उन्हें संकेत भेज कर उनकी ख़ैर-आफ़ियत पूछी जाय तो कैसा हो? मैं समझता हूं हम लोगों से अधिक आराम से रहते होंगे वे लोग—ख़ूब मस्त।"

मूल रूप से उसे अपने वर्तमान जीवन से सन्तोष ही था। उसके न माँ-बाप थे, न जोरू-जान्ता। उसने अभी विवाह नहीं किया था। पूर्ण रूप से स्वतन्त्र था उसका प्यारा मछुआहों का जीवन। पर गांव वालों को वह फूटी आँख न सुहाता था। मुझे उसने चेताया:

"इन लोगों की मीठी बातों में मत आना। रंगे स्यार हैं सबके सब—एक नम्बर के कपटी। आज वे बड़ा मेल दिखलावेंगे पर

कल को ऐसा आँख उलट लेंगे कि पूछो मत। सभी अपनी गरज़ के बावले हैं; दूसरे चूल्हे-भाड़ में जायँ, उनकी बला से।"

गाँव के "मोटी तोन्द वालों" की चर्चा छिड़ने पर उसकी कटुता देख कर आश्चर्य होने लगता था। कोई विश्वास नहीं कर सकता था कि ऐसे नेक और भोले व्यक्ति के दिल में भी नफ़रत की ऐसी आग दबी हुई हो सकती है। वह कहता:

"पूछो इनसे, दूसरों से ज़्यादा पैसे वाले कैसे हो गये? अपनी बुद्धि से? मान लिया! लेकिन भाई, तुम इतने बुद्धिमान हो तो क्या इतना नहीं समझते कि किसानों को लड़ना-झगड़ना नहीं चाहिये आपस में। मेल ही उनका सब कुछ है और मेल से ही उनकी ताक़त है। तब फिर वे गाँव वालों को लड़ाया करते हैं — सदा आग में घी डालना ही उनका पेशा है। इसीलिये कहता हूँ कि एक नम्बर के दुष्ट हैं ये लोग — गाँव के दुश्मन। खोखोल को ही ले लो, देख लो कितना सता रहे हैं बेचारे को वे!"

उसकी सुन्दरता और मर्दानापन के कारण औरतें उसकी ओर बहुत खिंचती थीं। उनके कारण उसे कभी चैन नहीं मिलता था।

एक दिन उसने क़बूल किया मुझसे:

"झूठ नहीं बोलूंगा। औरतों ने मुझे बिगाड़ दिया है। उनके पतियों को यह बात पसन्द नहीं। और ठीक ही है, मैं भी उनकी जगह होता तो कभी यह बात न रुचती। पर औरत भला ठुकरायी जा सकती है? वही तो आदमी की जान हैं। बेचारियों की ज़िन्दगी भी बवाल है — न हँसी-ख़ुशी, न मौज, केवल सुबह से शाम तक काम का चक्कर। उनके पतियों को प्रेम करने की फ़ुरसत ही नहीं।

पर मेरी बात न्यारी है—परम स्वतन्त्र, न सिर पर कोऊ। बहुत सी बेचारियों का तो यह हाल है कि शादी का साल भर भी नहीं पूरा हुआ कि पतिदेव के घूंसों-मुक्कों का उपहार मिलने लगा। इसलिये भाई, मैं तो मन बहलाता हूं उनके साथ—अपना भी और उनका भी। यह मैं मानता हूं। एक ही बात है—मैं सबों से कहता हूं, 'एक दूसरे से झगड़ो मत। मैं तुम सबों की देखभाल के लिए काफ़ी हूं। बेकार एक दूसरे से जलने से लाभ! मेरे लिए तुम सभी एक समान हो। मुझे हरेक के कष्ट का खयाल है...।'"

इसके बाद बड़े संकोच के साथ मुस्कुराते हुए वह कहने लगा:

"एक बार तो मैं ऊंचे घराने की एक औरत के साथ लटपटा गया था। शहर की एक महिला गर्मियाँ बिताने के लिए यहाँ आयी थी। क्या कहूं उसकी खूबसूरती को—गोरा बदन जैसे दूध, पटुए जैसे केश, नीली आँखों पर खुद नीलापन न्योछावर, मीठी चितवन। मैं मछली बेचने जाया करता था उसके यहाँ। जब वह सामने आवे मेरी नज़र हटे ही नहीं उसके चेहरे पर से। एक दिन वह बोली, 'तुम्हें क्या हो गया है?' मैंने कहा, 'यह तो तुम खुद ही समझ सकती हो।' वह बोली, 'ठीक है। रात को मैं मिलूंगी तुमसे। मेरा इन्तज़ार करना!' और सचमुच वह रात को आयी मेरे पास। पर मच्छरों के मारे बुरा हाल था उसका। बेचारी को मच्छर डँस रहे थे; और हमें कोई एकान्त स्थान भी नहीं मिल सका। बेचारी कहने लगी, 'मच्छर बर्दाश्त नहीं हो रहे हैं मुझको,' और रोने-रोने हो गयी। दूसरे दिन उसका पति आ गया। कहीं जज-वज था वह। यही तो भैया, हाल है इन अमीर घराने की औरतों का," इज़ोत ने

मधुर भर्त्सनाके स्वर में कहा। "मच्छरों से उनका मज़ा बिगड़ जाता है...।"

कुकुश्किन की वह बड़ी तारीफ़ करता था:

"बड़ा दिलदार आदमी है वह। लोग उसे बुरा कहते हैं। पर यह उनकी ग़लती है। इसमें शक नहीं कि ज़रा गप्पी है वह। पर दुनिया में कौन आदमी है जिसमें कोई न कोई ऐब न हो!"

कुकुश्किन की अपनी ज़मीन न थी। वह पानकोव के यहाँ मजूरी करता था। उसकी बीबी भी खेत-मजूर थी। नाटे कद की औरत, पीने में हातिम, पर बड़ी ताक़तवर और फुर्तीली। मिज़ाज की वह बड़ी तेज़ थी। अपना घर एक लोहार को किराया लगा दिया था और खुद गुस्लख़ाने में रहते थे। कुकुश्किन को समाचारों का बड़ा शौक़ था। वैसे कोई समाचार नहीं कान पड़ने पर वह खुद ही पेट से तरह-तरह की ख़बरें गढ़ लेता था जिनपर उसकी अपनी निराली छाप हुआ करती थी।

एक दिन खोखोल से वह कहने लगा:

"आपने भी सुना है, मिखाइल एण्टोनोविच? तिनकोवो का दारोगा नौकरी छोड़ कर साधु होने जा रहा है। उसने कहा, 'मैंने किसानों के साथ बड़ा गालीगलौज किया है। अब तौबा करता हूँ।'"

खोखोल ने बड़ी संजीदगी प्रदर्शित करते हुए जवाब दिया:

"ऐसे तो भाई, एक भी हाकिम-हुक्काम नहीं रह जायगा।"

कुकुश्किन इसपर विचार में डूब गया। अपने माथे से घास, फूस और मुर्ग़ियों के पंख बीनता हुआ, बोला:

"सभी का यही हाल हो जायगा यह तो मैं नहीं कहूँगा। हाँ जिन्हें ईमान है, वे ऐसी नौकरी में नहीं टिक सकते। आपको तो ईमान में विश्वास नहीं है, यह मुझे साफ़ दिखायी देता है। पर आदमी कितना भी बुद्धिमान हो बिना ईमान के नहीं रह सकता। एक बार एक औरत थी...।"

और वह किसी "बहुत ही बुद्धिमान" ज़मींदारनी की कहानी सुनाने लगा:

"वह इतने ख़राब स्वभाव की थी और सभी को इतना सताया करती थी कि एक बार खुद गवर्नर को उसके यहाँ आना पड़ा। वह बोला, 'आपके बारे में बड़ी शिकायत फैल रही है। ज़रा सावधानी से रहियेगा। कहीं बात सेंट-पीटर्सबर्ग तक पहुंच गयी!' उसने गवर्नर साहब का खूब दावत-तवाज़ा किया और खिलाने-पिलाने के बाद बोली, 'आप इतमीनान रखिये। मेरा स्वभाव जो है वह कैसे बदल सकता है?' तीन साल एक महीना बाद हठात् उसी औरत ने एक दिन अपने सभी रैयतों को बुलाया और बोली, 'आज से मेरी सारी ज़मीन तुम लोगों की है, और मैं चली, मुझे माफ़ करना। मैं जा रही हूँ...।'"

"मठ में," खोखोल ने अपनी ओर से जोड़ा।

कुकुश्किन ने ध्यानपूर्वक उसके चेहरे को देखा और सिर हिला कर सहमति प्रगट की। बोला:

"हाँ, ठीक है। वह मठ में जाकर प्रधान भिक्षुणी हो गयी। तुम भी सुन चुके हो यह कहानी?"

"नहीं। मैंने ऐसी कहानी नहीं सुनी थी पहले।"

"तब तुमने कैसे जाना?"

"क्योंकि मैं तुम्हें जानता हूँ।"

माथा झुमाते हुए हमारा दार्शनिक दोस्त कहने लगा, "यही तो बात है। तुम्हें कभी किसी बात का विश्वास नहीं होता।"

उसकी कहानियों का सदा ऐसा ही अन्त हुआ करता था: उनके दुष्ट चरितनायक अपने दुष्कृत्यों से थक कर अचानक "लापता" हो जाते थे, अथवा अधिकतर कहानिकार द्वारा किसी मठ में डाल दिये जाते थे—जैसे कूड़े के ढेर में कूड़ा फेंक दिया जाता है।

उसके दिमाग़ में विचित्र तरंगे उठा करती थीं। एक दिन भौंहों पर बल डाल कर वह कहने लगा:

"हमें तातारों को विजय नहीं करना चाहिये था। तातार हम लोगों से श्रेष्ठ हैं!"

यह बात उसने ऐसे वक़्त कही जब तातारों का कहीं कोई जिक्र न था और बातचीत फल-उत्पादकों की सहकार-समिति संगठित करने के विषय में हो रही थी।

इसी तरह एक दिन जब कि रोमास साइबेरिया और वहाँ के खुशहाल किसानों के बारे में बोल रहा था, कुकुश्किन ध्यानपूर्वक बोल उठा:

"कमाल मछली है हैरिंग भी। अगर दो-तीन साल उसे कोई न मारे तो समुद्र में पानी अंटने की जगह न बच जाय और धरती के ऊपर बाढ़ आ जाय!"

गांव वाले उसे छिछला और बेकार का आदमी समझते थे। उसकी कहानियाँ एवं विचित्र कल्पनाएँ किसानों को अरुचिकर लगती

थीं। पर, उसे कोसने और गलियाने के साथ-साथ सभी बड़े ध्यान और दिलचस्पी के साथ उसकी बातें सुनते थे जैसे उसमें सचाई का छिपा हुआ अंश ढूंढ़ रहे हों।

गाँव के मुअज़्ज़िज़ लोग उसे "बकवादी" कहा करते थे। केवल सदा बन-संवर कर रहने वाला पानकोव गम्भीरतापूर्वक कहता था:

"स्तेपान की बात न पूछो—वह तो पहेलियों में बातें करता है।"

कुकुशिकन हरफ़नमौला था। पीपे बनाना, ईंट के चूल्हे जोड़ना, मधुमक्खी पालना—ये सभी काम वह जानता था। गाँव की औरतों को वह मुर्ग़े-मुर्ग़ी पालने की कला सिखलाया करता था। बढ़ई का काम भी उसे मालूम था। और जो काम भी वह हाथ में लेता ज़रूर अच्छा उतरता यद्यपि वह काहिल और कामचोर था। बिल्लियों का उसे बड़ा शौक़ था। उसने कोई आधी कोड़ी बिल्ले और बिल्लियाँ पाल रखी थीं। सभी, खाकर मस्त, उसके ग़ुस्लखाने वाले घर में रहा करती थीं, वह अपने बिल्लों के लिए कौए और डोमकौए मार लाता। इस तरह बिल्लियों के मुँह चिड़ियों का माँस लग गया था। इससे उसके पड़ोसी और भी चिढ़ते थे क्योंकि उसके पालतू बिल्ले अक्सर उनके मुर्ग़ों और चूज़ों को चट कर जाया करते थे। गाँव की औरतें उसके पालतू जानवरों को दौड़ा कर खूब पीटती थीं। अक्सर उसके दरवाज़े पर पड़ोसिनें शिकायत लेकर इकट्ठी हो जातीं और खूब हल्ला मच जाता। पर वह था कि एकदम बेपरवाह, मानो कुछ हुआ ही न हो। कहता:

"इन बेअक़्लों को कौन समझाए? बिल्लियाँ कुत्तों से ज़्यादा अच्छी शिकारी होती हैं। उन्हें चिड़ियों का शिकार करने की शिक्षा

देने के बाद उन्हें सैकड़ों की संख्या में पालेंगे और बेचकर मुनाफ़ा कमायेंगे। फिर जेब गरम होगी या नहीं? पर इन मूर्खों को बात ही नहीं समझ में आती!"

किसी ज़माने में उसने पढ़ना-लिखना सीखा था। पर अब सब कुछ भूल गया था और याद भी नहीं करना चाहता था। लेकिन बुद्धि उसकी बहुत तेज़ थी। खोखोल की बातों का सार वह झट समझ जाता था।

उसके मुँह से इवान ग्रोज़्नी के बारे में सुन कर वह कहने लगा:

"तुम्हारे कहने का मतलब यह कि इवान ग्रोज़्नी ग़रीबों का दुश्मन नहीं था।" उसने चेहरा यों सिकोड़ रखा था जैसे कड़वी दवा का घूँट पीते वक़्त बच्चे।

अक्सर कुकुश्किन, इज़ोत और पानकोव शाम को दूकान में आते थे और काफ़ी रात गये तक खोखोल से विभिन्न विषयों की चर्चा सुना करते थे — विश्व की बनावट कैसे है, विलायत के लोग कैसे रहते हैं, विभिन्न देशों में जनक्रान्तियाँ कैसे हुईं, आदि। पानकोव को फ़्राँसीसी क्रान्ति बहुत पसन्द थी।

उसने सिर हिलाते हुए कहा, "सचमुच ज़िन्दगी का नया मोड़ था वह।"

दो वर्ष पूर्व पानकोव ने अपने बाप से जायदाद का बंटवारा कर लिया था। उसका बाप धनी किसान था। उसके गले में बहुत बड़ा सा घेघा था। आँखें बाहर निकली हुई थीं जो बड़ी डरावनी लगती थीं। बाप से अलग होकर उसने एक बे माँ-बाप की लड़की

से, जो इज़ोत की भतीजी लगती थी, "प्रेम-विवाह" कर लिया। बीबी के ऊपर वह पूरा दाब रखता था। लेकिन पोशाक उसे शहरी फ़ैशन की पहनाता। बाप ने उसे नालायक़ क़रार दिया। पानकोव के घर के पास से गुज़रते वक़्त वह हमेशा दरवाज़े पर उद्वेग से थूक देता था। गाँव के धनी लोग नहीं चाहते थे कि पानकोव रोमास को अपना मकान किराया लगाये। पर उसने न केवल उसे किराया दिया बल्कि दूकान के लायक़ आगे एक कठघरा भी बनवा दिया। धनिक लोगों की जमात उससे नफ़रत करती थी, पर वह उनकी ज़रा भी परवाह नहीं करता था। वह भी उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखता था और सामना होने पर उनसे उद्दण्डतापूर्वक और व्यंगपूर्ण बात करता था। गाँव के जीवन से उसे घृणा थी। वह कहा करता था:

"अगर मुझे कोई हुनर आता तो ज़रूर शहर में जा बसता।"

हृष्ट-पुष्ट शरीर, सदा साफ़ सुथरी पोशाक, रोबीली चाल-ढाल और आन वाला। ऐसा था पानकोव। स्वभाव उसका अविश्वासी और शक्की था।

रोमास से उसने सवाल किया:

"तुम्हें इस काम में आने की प्रेरणा किससे मिली—दिल से या दिमाग़ से?"

"तुम्हारा क्या विचार है?" रोमास ने सवाल का जवाब सवाल से दिया।

"मैं नहीं कह सकता। तुम्हीं बताओ।"

"कौन बेहतर होगा—दिल की प्रेरणा या दिमाग़ की?"

"मैं नहीं कह सकता। तुम बताओ। तुम्हारा क्या खयाल है?"

पर खोखोल अड़ा रहा। और अन्त में उसने किसान बच्चे से कहवा कर छोड़ा:

"मैं तो समझता हूँ कि दिमाग़ की प्रेरणा पर काम करना ही बेहतर है। दिमाग़ कभी बेफ़ायदा काम करने को नहीं कहेगा और जिस चीज़ में फ़ायदा है वही ठोस है। आदमी दिल की मर्ज़ी से चले तो उसकी मुसीबतों का ठिकाना नहीं रहे। मुझे ही ले लो। दिल मेरा कहता है कि यह पादरी जो है उसके घर में किसी दिन आग लगा दूं। बच्चा हर जगह नाक घुसेड़े रहता है। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।"

पादरी सचमुच दिल का बड़ा काला आदमी था। छुछून्दर जैसा उसका थूथन था। और सभी के मामले में नाक घुसेड़ना उसका पेशा था। बाप के साथ झगड़े में पानकोव के ख़िलाफ़ भी उसने यही किया था।

मेरे प्रति शुरू में पानकोव का रुख ग़ैरदोस्ताना था, बल्कि वैमनस्य का। कई बार उसने मुझे डांट दिया था। लेकिन यह चीज़ जल्द ख़तम हो गयी। फिर भी मेरे प्रति दिल ही दिल में उसकी अविश्वास-भावना बनी रही। यह सही है कि यदि वह मुझे नहीं चाहता था तो मैं भी उसे नहीं चाहता था।

वे शाम मुझे अविस्मरणीय रहेंगी। छोटा सा साफ़-सुथरा कमरा जिसकी दीवारें लकड़ी के कुन्दों की बनी थीं; खिड़कियों की झिलमिली कस कर बन्द रहा करती थी। कोने में मेज़ के ऊपर छोटी सी लालटेन। और लालटेन के पीछे बड़ी दाढ़ी और

चौड़े माथे वाले विशालकाय रोमास के मुँह से निकलते अनवरत गूढ़ भावपूर्ण शब्द:

"जीवन में वस्तुतः एक ही चीज़ प्रधान है—आदमी बढ़ता चले और अपने को पशु के स्तर से निरन्तर ऊपर उठाता चले...।"

तीनों किसान श्रोता उसके एक-एक शब्द को पी रहे हैं। स्वच्छ नेत्र और मेधावी चेहरे। पर तीनों की मुद्रा अलग-अलग। इज़ोत निश्चल, मानो दूर से आनेवाली ऐसी आवाज़ सुन रहा है जो केवल उसी के कानों में आ रही है। कुकुश्किन चंचल, मानो मच्छर सता रहे हों। पानकोव के हाथ अपनी छोटी भूरी मूछों के ऊपर। विचारों के किसी क्रम में डूबा हुआ वह अचानक टीका कर बैठता:

"तो, लोग जो वर्गों में बंट गये उसमें भी मतलब था।"

पानकोव की एक चीज़ मुझे बहुत ही अच्छी लगती थी। कुकुश्किन यद्यपि उसका मज़दूर था फिर भी उसके साथ वह अशिष्टता का सलूक नहीं करता था। कल्पनालोक की कुलांचें भरता हुआ कुकुश्किन जब अपना भाषण शुरू करता था तो पानकोव सदा पूरे ध्यान से उसकी बातें सुनता था।

गोष्टी खतम हो जाने के बाद मैं कोठे पर, अपने कमरे में, चला जाता। वहाँ खिड़की पर बैठ कर बड़ी देर तक बाहर का दृश्य निहारा करता। गाँव और दूर तक फैली खेतों की क्यारियाँ रात की गोद में सो रही हैं—नीरव, निस्तब्ध। आकाश में शून्य रात्रि का अन्धकार वेधते हुए तारे चमक रहे हैं। मुझसे वे जितनी ही दूर थे उतना ही धरती के सन्निकट

ज्ञात होते थे। मेरा हृदय इस नीरवता के साथ एकाकार हो जाता। मेरे विचारों की धारा अनन्त में लय हो जाती जिसके छाते के तले सहस्त्रों गाँव धरतीतल से चिपटे शून्य रात्रि में इसी तरह विराम ले रहे थे। चारों ओर मौन और निश्चलता का साम्राज्य।

रजनी की अन्धकारपूर्ण शून्यता मुझे गोद में समेट लेती और अनगिनत अदृश्य जोंकों की तरह चिमट जाती मेरी आत्मा से। क्रमशः शरीर और आँखें नींद से बोझिल हो उठतीं। हृदय में एक विलक्षण बेचैनी घर कर लेती—कितना तुच्छ, कैसा नाचीज़ हूँ मैं अपनी धरती पर...।

ग्राम्य-जीवन अत्यन्त नीरस प्रतीत होता था। किताबों में मैंने पढ़ा था और लोगों को अक्सर कहते भी सुना था कि ग्राम्य-जीवन नगर-जीवन की अपेक्षा सरल और सरस है। लेकिन यहाँ तो किसानों के श्रम का वारापार न था—अथक, अमानुषिक श्रम। यहाँ भी बीमारों की कमी न थी। और बहुतों को तो अमानुषिक मेहनत ने अपाहिज कर दिया था। हँसता चेहरा यहाँ बिरला ही दृष्टिगत होता था। शहरों में रहने वाले मज़दूर या कारीगर इनसे कम मेहनत की चक्की में नहीं पिसते पर उनका जीवन अधिक सरस है। इन गाँव वालों की तरह वे निरन्तर मनहूसी के शिकार नहीं बने रहते। जीवन को बराबर कोसते रहने की उनकी आदत नहीं। ग्राम्य-जीवन सरल भी नहीं लगता था। मिट्टी पर सदा नज़र न रखी—ज़रा सी ग़फ़लत की—तो गये। इसके अलावा आपस के व्यवहार में पूरा धूर्त होना ज़रूरी था। मस्तिष्क के लिये ग्राम्य-जीवन कोई सम्बल नहीं प्रदान करता। ऊपर से सरसता और सद्भाव का अभाव।

गाँव में बसने वाले मानो आँख पर पट्टी बांध कर जीवन की यात्रा तै करते हैं। सभी के हृदय में भय और शंका छायी रहती है। किसी का किसी पर विश्वास नहीं, मानो मनुष्य नहीं, भेड़ियों का समाज हो।

मुझे समझ ही में न आता था कि "मेरी मण्डली" के लोगों से—खोखोल, पानकोव और अन्य सभी से जो अपनी विवेकबुद्धि के आधार पर नव जीवन का निर्माण करना चाहते थे—ये लोग क्यों नफ़रत करते थे।

नगर के जीवन में मुझे स्पष्टत: कई गुण नज़र आते थे। सुख की उत्कण्ठापूर्ण खोज, निर्भीक और जिज्ञासु मनोवृति; उद्देश्यों और समस्याओं की विविधता। ऐसी रातों को मुझे ख़ामख़ाह शहर के दो आदमी याद आ जाते थे:

"फ़० कलूगिन और ज़० नेवेई"

"घड़ीसाज़ और डाक्टरी के औज़ार, सिलाई की मशीनें,

हर तरह के ग्रामोफ़ोन, आदि के मिस्त्री"

एक छोटी सी दूकान की गर्द से भरी दो खिड़कियों के बीच एक नीचे दरवाज़े के ऊपर उपरोक्त तख़्ती टंगी हुई थी। एक खिड़की के पीछे फ़० कलूगिन बैठा करता था—तगड़ा आदमी, गोल चेहरा, हमेशा मुस्कुराता हुआ। उसकी खल्वाट पीली खोपड़ी के ऊपर बड़ा सा टेटन था। आँखों में हमेशा घड़ीसाज़ों की खुर्दबीन लगी रहती थी। हाथ में बारीक चिमटी लिये घड़ी के पुरजों को निकालता-बैठाता हुआ वह गा उठता। खुले गोले मुँह पर श्वेत मूछों के नोकदार बाल उस वक़्त धनुषाकार हो जाते। दूसरी खिड़की के

पास ज० नेबेई की सीट थी—दुबला-पतला, सांवला, नाटे कद का आदमी। नुकीली दाढ़ी, घुंघराले बाल, मुग्गे की चोंच जैसी बड़ी नाक, और जामुन जैसी बड़ी-बड़ी काली आँखों के कारण उसकी आकृति कुछ-कुछ शैतान के चित्र से मिलती थी। वह भी निरन्तर किसी न किसी मशीन के पुर्जे को ठीक किया करता था। कभी-कभी गहन स्वर में वह भी गुनगुना उठता :

"ट्रा-टा-टम, ट्रा-टा-टम!"

उनके पीछे, दूकान में काठ के ख़ाली बक्सों, मशीनों, टूटे चक्कों, एरिस्टोन और ग्लोबों का अम्बार लगा हुआ था। दीवार के किनारे आलमारियों में अजीब नमूनों की धातु के सामान भरे हुए थे। दीवार पर दर्जनों घड़ियाँ लटक रही थीं जिनके लंगर लगातार हिल रहे थे। मैं दूकान के सामने खड़ा होकर घण्टों, दिनों, इन मिस्त्रियों का काम देखना तैयार था। पर मेरी लम्बी देह से रोशनी का रास्ता रुक जाता और मिस्त्री भिन्ना भयंकर रूप से मुँह बना कर हाथ के इशारे से मुझे वहाँ से हटा देता। मैं चुपके से खिसक जाता वहाँ से, पर मन में ईर्ष्या करता उनके भाग्य से और सोचता :

"कैसा शानदार हुनर है यह कि मन-मुताबिक जो काम चाहा किया!"

इन घड़ीसाज़ों के लिये मेरे हृदय में सच्ची इज़्ज़त थी। मुझे अटल विश्वास था कि दुनिया का कोई औज़ार ऐसा नहीं जिसका भेद उन्हें मालूम न हो और जिसकी वे मरम्मत न कर सकते हों। वे सचमुच मनुष्य थे।

लेकिन ग्राम्य-जीवन मुझे बिल्कुल नहीं भाता था। किसानों की प्रवृति को मैं समझ नहीं पाता, विशेष कर स्त्रियों की। जब सुनो तो उन्हें कोई न कोई बीमारी ही लगी रहती थी—किसी को "कलेजे में दर्द" है; किसी की "छाती दुखती" है; और "पेट में ऐंठन" तो प्रायः सभी को है। एतवार या अन्य छुट्टियों के दिन जब औरतें वोल्गा के तीर पर या अपने घरों के निकट बेंचों पर इकट्ठी होती थीं उस वक़्त उनकी चर्चा का प्रधान विषय हुआ करतीं ये बीमारियाँ ही। सब बढ़चढ़ कर अपने-अपने "रोग" की कहानी सुनाना शुरू करतीं। किसानों का मिज़ाज ऐसा था कि बात-बात पर तुनकते और छोटी-छोटी चीज़ों के लिए फ़ौजदारी करते उन्हें देर न लगती थी। एक बार एक दरके हुए मिट्टी के घड़े के ऊपर, जिसकी क़ीमत नये में शायद बारह कोपेक से ज़्यादा न रही होगी, तीन परिवारों में ज़बर्दस्त मार पीट हो गयी—एक बुढ़िया का हाथ टूट गया और एक जवान लड़के की खोपड़ी खुल गयी। गाँव में शायद ही कोई हफ़्ता गुज़रता था जिसमें मार पीट या फ़ौजदारी न होती हो।

लड़कियों के साथ लड़के ऐसी गन्दी छेड़खानियाँ किया करते थे कि जिनका वर्णन नहीं हो सकता। किसी लड़की को अकेले खेत में पाकर उसका घघरा उलट कर माथे के ऊपर रस्सी से बन्ध देना गाँव के नौजवानों का साधारण खेल था। इसे "लड़की को फूल बनाना" कहते थे। लड़कियाँ कमर से नीचे नंगी हो जातीं—मादरज़ाद। उनका चीखना और गाली बकना सुनते ही बनता था। पर सम्भवतः इस खेल में उन्हें भी मज़ा आता था।

बात जो भी हो, इतना ज़रूर है कि रस्सी खोलने में उन्हें ज़रूरत से ज्यादा समय लगता था। गिर्जाघर में शाम की प्रार्थना के वक़्त लड़के सामने लड़कियों की चूतड़ में चिकोटी काटा करते थे। प्रार्थना-वार्थना कौन करता! वे तो मानो इसीलिये गिर्जाघर आते थे। एतवार को पादरी ने प्रार्थना के बीच कहना शुरू किया:

"तुम लोग जानवर हो। अपनी कुत्सा के लिये तुम्हें और कोई जगह नहीं मिली थी क्या?"

रोमास ने मुझे बतलाया कि "उक्रइन के लोगों की धार्मिकता अधिक रसपूर्ण है। यहाँ ईश्वर की पूजा के लिए पीछे केवल भय और लोभ की प्रवृति दिखायी पड़ती है। ईश्वर के प्रति हार्दिक श्रद्धा, अथवा उसकी सृष्टि, शक्ति एवं सौंदर्य के प्रति विस्मय अथवा आनन्दविह्वलता की भावना का यहाँ के लोगों में स्पष्ट अभाव है। सम्भवतः अच्छा ही है यह। क्योंकि वे अधिक आसानी से धर्म के चंगुल से छुटकारा पा सकेंगे। कारण, धर्म नाम की भावना तो हानिकारक ढकोसला है।

गाँव के नौजवान गाल बजाने में तो बड़े तेज़ थे, पर परले सिरे के कायर। तीन बार रात में रास्ते में घेर कर वे मुझे मारने की कोशिश कर चुके थे। लेकिन नाक़ामयाब। हाँ, एक दफ़े किसी ने मेरी टाँग में एक लाठी जड़ दी। मैंने रोमास से इन घटनाओं के बारे में कभी कुछ नहीं कहा, पर मेरा लंगड़ाना देख कर वह भाँप गया। बोला:

"मालूम होता है कहीं ख़ातिर-तवाज़ा हुआ है तुम्हारा। मैंने तुमको इतनी दफ़ा चेताया है...।"

उसकी चेतावनी के बावजूद मैं प्रायः रात के वक़्त गाँव में निकल जाया करता था। गली से न होकर पिछवाड़े की तरकारी की क्यारियों से होता हुआ मैं वोल्गा के तट पर चला जाता। वहाँ नरकट की झाड़ियों के नीचे बैठ कर रात की रुपहली चादर के पार, सामने घाट के हरे मैदान को देखा करता। वोल्गा धीर गति से वही चली जा रही है। सूर्य छिप चुका है, पर उसकी किरणें चांद के निर्जीव धरातल से टकरा कर नदी के वक्ष को दर्पण की तरह चमका रही हैं। चांद मुझे नहीं भाता। न जाने क्यों मुझे उसका चेहरा मनहूस मालूम होता। चांद की चांदनी में मुझे ऐसा लगता मानो हड़का हुआ कुत्ता हूँ और यही इच्छा होती कि भूं-भूं कर रो उठूँ। यह जान कर मुझे बड़ा सन्तोष हुआ कि चांद का प्रकाश उसकी अपनी चीज़ नहीं है, कि चन्द्रमा मृत हो चुका है; उसके ऊपर जीवित प्राणियों का निवास नहीं है, न हो सकता है। इस जानकारी के पहले मैं कल्पना किया करता था कि चांद पर ताम्र के जीवों का निवास है। त्रिभुजों जैसा उनका शरीर है और परकाल के दो कांटों जैसी लम्बी टाँगें। उनके चलने से निरन्तर घण्टों के बजने जैसा शब्द होता है जैसे लेंट के पर्व में गिर्जाघरों के घण्टों की घनघनाहट—ऐसा स्वर जिसकी गूंज में अन्य सभी स्वर डूब जाते हैं। चन्द्रमा के ऊपर हर चीज़ ताम्र की है और हर चीज़—उद्भिज, पिण्डज, अण्डज—घण्टे की तरह अनवरत घनघनाती रहती है, मानो धरती को युद्ध की चुनौती दे रही हो, मानो धरती के खिलाफ़ किसी भयंकर षड्यन्त्र में रत हो। यह सुन कर साँत्वना मिली कि आकाश में चन्द्रमा की अपनी विशिष्ट हस्ती

नहीं। पर इससे भी अधिक सन्तोष मुझे उस वक़्त हुआ होता जब कोई विशाल टूटा तारा उससे इतने ज़ोर से जा टकराता कि चन्द्रमा के उस पिण्ड में आग लग जाती और वह पृथ्वी को कम से कम एक बार ऐसा प्रकाश दान कर सकता जो उसका अपना होता।

मैं नदी की चंचल तरंगों को देख रहा था। चांदनी की किमखाब की चादर आँचल की तरह लहरा रही थी। दूर अन्धेरे से तरंगे आतीं और खड़ी कगार की काली छाया में विलीन हो जातीं। लेकिन उनके साथ मेरे मन में भी एक अपूर्व तरंग पैदा हो जाती। मस्तिष्क अभूतपूर्व स्पष्टता के साथ चीज़ों को देखना शुरू कर देता। विचारों के विलक्षण हिलकोरे मन में उठते जिन्हें शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता था और जिनका दिन भर के मेरे जीवन के साथ कोई साम्य या सम्बन्ध न था। विशाल नदी का जल अबाध और उन्मुक्त गति से निःशब्द वहता चला जा रहा था। कभी कोई अग्निबोट उसके काले चौड़े वक्ष पर थिरकता हुआ निकल जाता, किसी विलक्षण पक्षी की भान्ति, जिसके पंख आग के हों। अपने पीछे वह मधुर कलकल ध्वनि छोड़ जाता, जैसे पक्षी के भारी डैनों की फड़फड़ाहट। अथवा, उस पार के हरे मैदान में कहीं कोई प्रकाश बल उठता और उसकी लम्बी लाल किरण नदी की छाती पर प्रतिबिम्बित हो उठतीं। यह रोशनी किसी मछुए के हाथ की टार्च थी। पर उस अद्भुत समां में वह ऐसी लगती मानो कोई गृहहीन सितारा हो जो मार्ग भूल कर आकाश से नीचे आ गया है और नदी के ऊपर हवा में यों तैर रहा है जैसे आग का फूल।

14•

किताबों में पढ़ी चीजें अद्‌भुत शकलें अख़्तियार कर लेतीं। कल्पना मानसपटल पर ऐसे चित्र खींचना शुरू कर देती जिनका सौन्दर्य असीम था। मैं रात्रि के मन्द समीर पर पंख लगा कर नदी की धारा के साथ उड़ने लगता था।

इज़ोत मुझे ढूँढ़ता हुआ यहाँ आ पहुँचता। रात में वह और भी लम्बा, और भी प्रिय, मालूम होता था।

"अच्छा! फिर बाहर निकले?" कह कर वह चुपचाप मेरी बग़ल में बैठ जाता। मौन की महफ़िल फिर जम जाती और इज़ोत भी उसमें डूब कर दाढ़ी के रेशमी सुवर्ण बाल थपथपाते हुए नदी या आकाश को निहारता हुआ विचारों में लीन हो जाता।

कभी स्वप्नलोक में विचरण करता हुआ इज़ोत बोल उठता: "मैं भी पढ़-लिख लूँगा और तरह-तरह की किताबें पढ़ कर विद्या प्राप्त करूँगा। तब मैं दुनिया की सारी नदियों का सफ़र करूँगा और जो देखूंगा उसे समझने में मुझे दिक़्क़त नहीं होगी। मैं भी दूसरों को पढ़ाऊँगा। देख लेना तुम। आदमी अपना दिल खोल सके दूसरों के सामने इससे बढ़ कर दूसरी चीज़ नहीं है, मेरे भाई। बाज़ औरतें भी दिल खोल कर रखने से बात को समझती हैं। अभी उसी दिन मेरी नाव में एक औरत थी जो पूछने लगी, 'मरने के बाद आदमी का क्या होता है?' वह बोली। 'मुझे स्वर्ग-नरक में विश्वास नहीं है।' कहो कैसी रही? जी हाँ, भाईजान! औरतें भी...।"

एक क्षण वह रुका शब्दों के लिए, और फिर बोला:

"जीवित आत्मा हुआ करती है।"

इज़ोत निशाचर था। सौन्दर्य की उसे गहरी अनुभूति थी। बोलने का ढंग बड़ा मीठा—जैसे कल्पनाशील छोटा बालक। वह ईश्वर में विश्वास करता था, पर उसके बारे में परम्परागत धार्मिक धारणा रखने के बावजूद ईश्वर के प्रति उसकी श्रद्धा में भीरुता का भाव न था। विशाल, रोबीला, सुन्दर व्यक्तित्व, बुद्धि और दया का अवतार, सारी दुनिया का प्रभु—यही थी ईश्वर की उसकी धारणा। ईश्वर के बावजूद आसुरी प्रवृतियों का क्यों अस्तित्व है, इसके बारे में उसका अपना सिद्धान्त था। वह कहता था, "उसके पास फ़ुरसत की कमी रहती है। दुनिया में इतने सारे आदमी हैं, सबकी कहाँ तक देखभाल करे वह। पर वह ठीक करके छोड़ेगा सारी चीज़ों को, देख लेना तुम। अलबत्ता मेरी समझ में यह नहीं आता कि यह ईसा कहाँ से आ टपके बीच में। ईश्वर है —है न? बात ख़तम हुई—मेरे लिए इतना ही काफ़ी है। लेकिन ये लोग हैं कि एक और आदमी को बीच में घुसेड़ देते हैं। इनसे पूछिये यह कौन हैं, साहब? साहब यह ईश्वर के बेटे हैं! अच्छा मान लिया ईश्वर के बेटे ही हैं यह। तो ईश्वर क्या मर गया? अभी तो वह खुद ही मौजूद है।"

इस तरह उसके विचारों का क्रम चलता था। लेकिन अधिकतर वह चुपचाप ही मेरी बग़ल में बैठा रहता—अपने विचारों में डूबा हुआ। केवल बीच में दीर्घ निश्वास छोड़ कर कह उठता:

"जी हाँ, यही रवैया है उनका...।"

"क्या कहा?" मैं पूछ बैठता।

"कुछ नहीं। मैं अपने आप से बातें कर रहा था।"

और फिर दूर, बहुत दूर दृष्टि अंटकाये, वह निश्वास छोड़ कर कह उठता :

"बड़ी शानदार चीज़ है—यह ज़िन्दगी।"

मेरी भी यही राय थी।

"सचमुच शानदार है।"

रात की छांह में मख़मल जैसा पानी का चौड़ा पाट सामने शान से आलोड़ित हो रहा था। ऊपर रुपहले महराव की तरह आकाशगंगा चमक रही थी। सुनहले लार्क पंछियों की तरह बड़े-बड़े तारे काले आसमान में टंगे हुए थे। भीतर, हृदय जीवन के भेदों के सम्बन्ध में तर्कहीन कल्पनाओं के मीठे गीत गा रहा था।

क्षितिज के पास हरियाले मैदानों के ऊपर मेघों का रंग लाल हो उठता; बाल-किरणें उत्कण्ठापूर्ण दृष्टि से झाँकना शुरू कर देतीं ऊपर से। शीघ्र ही सूर्य आसमान में अपना मोरपंख फैला देता।

इज़ोत आनन्द विह्वल हो उठता; चेहरे पर मुस्कुराहट खेल जाती; और वह अस्फुट स्वर में कह उठता, "अहा! कैसा आश्चर्यजनक है यह सूर्य भी!"

सेब के पेड़ खिल रहे थे। गाँव गुलाबी बादलों के नीचे ढका पड़ा था। चारों ओर सुगन्ध फैल रही थी, जिसमें एक अनोखा तीखापन था। राल और खाद की गन्ध उसमें डूब गयी। गाँव के घरों और खेतों के बीच सैकड़ों वृक्ष पांतों में खड़े थे। अपनी नयी रेशमी कोपलों में उन्होंने व्याह का वेष साज रखा था। जिस वक़्त चाँदनी रात में मन्द हवा बहने लगती उस वक़्त बौरों से

लदीं डालियाँ यों झूमने लगतीं जैसे किसी नीले सुनहले सागर का पानी गाँव की चारों ओर लहरें ले रहा हो—शान्त, निःशब्द। बुलबुलों का अनवरत और तीक्ष्ण संगीत जारी था। गाँव दिन भर मैनों की आनन्दी चहचहाहट से गूंजा करता और आकाश से अदृष्ट लार्क धरती पर मीठा अमृत-संगीत उंडेला करते।

छुट्टियों के दिन शाम को गाँव की छोकरियाँ और जवान औरतें गीत गाती हुई गलियों के चक्कर लगाया करती थीं। उनके मुंह यों खुले रहते जैसे पक्षी के बच्चे की चोंच; आँखों में शराब का हल्का नशा और चेहरे पर भी नशीली मुस्कान। इज़ोत भी सुरूर में रहता और उन्हें देख कर मुस्काया करता। वह दिनोंदिन दुबला होता जा रहा था। आँखें स्याह गढ़े में धंसी चली जा रही थीं और चेहरे के ऊपर नयी रेखाएँ उभर आयी थीं जिनके कारण उसका रूप ऋषियों की तरह आकर्षक और दीप्त हो गया था। वह दिन भर सोया करता था। और शाम को बाहर आता—उदास और किसी खयाल में डूबा हुआ। कुकुश्किन उसे नरमी से छेड़कर उससे अश्लील प्रश्न पूछने लगता। वह झेंप कर जवाब देता:

"चुप रहो। क्या करूं?"

फिर किसी अनुभव की याद करके, अनिर्वचनीय आह्लाद में भर कर, वह कह उठता:

"जो कुछ भी कहो, ज़िन्दगी है बड़ी रंगीली चीज़। आदमी आदमी को कितना प्यार कर सकता है! किसी के दिल को शीतल करने वाले कैसे कैसे मीठे बैन कह सकता है! कुछ शब्द तो ऐसे हैं

कि तुम सुनो तो ज़िन्दगी भर न भूलो और कयामत के दिन कब्र से उठने पर भी सबसे पहले उनहीं की याद आये।"

खोखोल ने हँसते हुए टोक कर नरमी से कहा:

"लेकिन सम्भल कर रहना, नहीं तो किसी दिन उनके पतियों के हाथों ऐसी पिटाई पड़ेगी कि सारा मज़ा किरकिरा हो जायगा।"

"तुम बिलकुल ठीक कहते हो। बेचारों का गुस्सा होना स्वाभाविक है," इज़ोत बोला।

लगभग हर रोज़ रात के वक़्त, बुलबुलों के संगीत की पृष्ठभूमि में, मिगुन बाग़ों, खेतों या नदी के तीर ऊँचे राग में दर्दीले पद गाया करता था। उसके गले में ग़ज़ब का सुरीलापन था। इस गले के कारण गाँव वाले अक्सर उसके बड़े-बड़े अपराध माफ़ कर देते थे।

शनिवार के दिन शाम को गाँव वालों की मण्डली दूकान पर जमा होती थी। आने वालों में बुड्ढा सूस्लोव, बरिनोव, लोहार क्रोतोव और मिगुन अवश्य होते। मण्डली जम कर बैठ जाती; विभिन्न विषयों की चर्चा शुरू होने लगती। कोई-कोई बीच में उठ कर चला भी जाता। साथ ही नये लोगों का आना जारी रहता। इस तरह आधी रात तक मजलिस जमा करती थी। कभी कभी कोई पियक्कड़ आ पहुँचता और दंगा-फ़साद आरम्भ कर देता। ऐसा करने वालों में कोस्तिन औवल था। वह पहले फ़ौज में था। उसकी एक आँख जाती रही थी और बायें हाथ की दो उँगलियाँ भी साफ़ हो चुकी थीं। आस्तीन चढ़ाये, मक्के भाँजता, लड़ाकू मुर्गे की

तरह वह दूकान के पास आता और फटी आवाज़ में ज़ोर-ज़ोर से खोखोल को गालियाँ बकना शुरू कर देता:

"खोखोल! हरामी तुर्क कहीं का। बता तो तू गिर्जाघर क्यों नहीं जाता? बोल! बता! नास्तिक का बच्चा! शैतान की जड़! आज बोलना ही पड़ेगा तुझे कि कौन है तू, और क्यों आया है यहाँ?"

लोग हंसने और धिक्कारने लगते उसे। कोई बोल उठता:

"ऐ मिश्का! तुर्कों से डर के मारे अपनी उंगलियों काट ली तूने।"

इसपर वह भिड़ जाता कहने वाले से। लोग हंसते-चिल्लाते हुए उसे पकड़ लेते और ऊपर से सूखे नाले में ढकेल देते। वह लुण्ड-मुण्ड नीचे जा रहता और वहीं से बड़े ज़ोरों से गुहार मचाने लगता:

"दौड़ो लोगो! जान मार रहे हैं!"

इसके बाद सिर से पाँव तक धूल से सना हुआ वह रेंग कर नाले से बाहर आता और खोखोल से एक गिलास वोद्का का दाम माँगने लगता।

लोग पूछते:

"उससे क्यों दाम माँगते हो?"

"इतना मन बहलाया है जो," कोस्तिन जवाब देता। समूची मण्डली हो-हो कर हँस पड़ती।

एक दिन छुट्टी थी। रसोईदारिन चूल्हा जला कर आँगन में कुछ लाने गयी। मैं दूकान में कुछ काम कर रहा था। इतने में घर में बड़े जोर से सिसकारी की आवाज़ गूँज उठी और समूची

दूकान हिल गयी। ताक पर रखे मिसरी के डिब्बे झनझनाते हुए ज़मीन पर आ रहे। शीशों के टूटने और सामानों के गिरने की आवाज़ आने लगी। मैं रसोईघर की ओर दौड़ा। वहाँ घना काला धुआँ उठ रहा था और धुएँ की तह में कोई चीज़ सनसना और कड़कड़ा रही थी। खोखोल ने मुझे बीच में ज़बर्दस्ती रोक लिया। बोला:

"रुक जाओ यहीं...।"

ड्योढ़ी में खड़ी रसोईदारिन तुक्का फाड़ कर रो रही थी। उसने उसे डाँटा:

"मूर्ख कहीं की। रोती क्यों है?" वह धुएँ को चीरता अन्दर घुसा। रसोईघर में गिरे सामान उसके पैरों से टकरा कर झनझना उठे। उसके मुँह से कोई गाली निकली और फिर चिल्ला कर बोला: "ऐ, रोना बन्द करो! दौड़ो, जल्दी, थोड़ा पानी लाओ!"

रसोईघर के फ़र्श पर लकड़ी के कुन्दे पड़े थे जिनसे धुआँ निकल रहा था। उनके बीच जलती चैलियाँ बिखरी हुई थीं। चूल्हा अपना काला मुँह बाये हुए था—बिलकुल खाली। धुएँ में टटोल कर मैंने भरी बाल्टी खोज निकाली और सारा पानी आग पर उँड़ेल दिया। इसके बाद लकड़ी को चूल्हे में डालने लगा। खोखोल बोला:

"सम्भल कर।"

वह बिखरे सामानों के बीच से रसोईदारिन को लिए हुए आ रहा था। उसे रखने वाले कमरे में ठेल कर उसने आदेश दिया:

"जाओ फ़ौरन दूकान में ताला लगा दो।" फिर मुझसे बोला, "मक्सिमिच, सम्भल कर। फिर विस्फोट हो सकता है।" वह घुटने मोड़ कर फ़र्श पर बैठ गया और ग़ौर से एक-एक कर सभी कुन्दों को देख गया। इसके बाद चूल्हे के पास जाकर उसने उन कुन्दों को बाहर किया जिन्हें मैंने अभी डाला था। मैंने पूछा:

"यह क्या कर रहे हो?"

उसने जवाब दिया:

"यह! इधर देखो ज़रा!"

उसके हाथ में एक कुन्दा था जो अजीब ढंग से कटा हुआ था। और ग़ौर से देखने पर मालूम हुआ कि उसे बर्मे से खोखला किया गया था। उसकी भीतरी दीवार में कालिख सटी हुई थी। खोखोल बोला:

"देख लिया न? किसी दुष्ट ने इसके अन्दर बारूद भर दिया था। नालायक़ कहीं के! फूण्ट बारूद से क्या बिगड़ने को है?"

कुन्दे को किनारे रख कर वह हाथ-मुँह धोने लगा। बोला:

"बड़ी ख़ैरियत हुई कि अक्सीन्या कमरे से बाहर थी। नहीं तो ज़रूर चोट खा जाती।"

तीखा धुआँ मिट चुका था। अब सभी चीज़ें साफ़ दिखायी देने लगीं। आलमारियों पर रखीं तश्तरियाँ और खिड़की के शीशे चूर-चूर हो गये थे। चूल्हे के मुँह के पास की कई ईंटें धड़ाके से उड़ गयी थीं।

लेकिन खोखोल अब भी ऐसा धैर्य धारण किए हुए था मानो कोई खास बात न हुई हो। यह मुझे अच्छा नहीं लगा। उसके

रवैये से स्पष्ट था कि इस बदमाशी से भी उसे गुस्सा नहीं आया है।

बाहर छोटे-छोटे लड़के दौड़ रहे थे। किसी ने पुकारा, "आग! आग! खोखोल के घर में आग लग गयी है!"

कोई औरत ज़ोर से चीख उठी। अक्सीन्या ने रहने वाले कमरे से उद्विग्न कण्ठ से पुकारा:

"मिखाइल एंटोनोविच! लोग दूकान का दरवाज़ा तोड़ रहे हैं।"

उसने अपनी भीगी दाढ़ी को पोंछते हुए जवाब दिया:

"अरे! इतना हल्ला क्यों मचाती हो! आ रहा हूँ मैं।"

कमरे की खुली खिड़कियों के बाहर बहुत से चेहरे झाँक रहे थे—माथे पर केश बिखरे हुए, चेहरे पर भय और क्रोध। सभी धुएँ के कारण आँखें मिचका रहे थे। किसी ने उत्तेजित स्वर में चिल्ला कर कहा:

"निकाल बाहर करो इन सबों को गाँव से! इनकी वजह से रोज़ ही कोई न कोई आफ़त टूटती रहती है।"

एक नाटा सा आदमी, जिसके केश लाल थे, खिड़की पर चढ़ने की कोशिश कर रहा था। उसके दाहिने हाथ में कुल्हाड़ा था। वह पहले क्रॉस का चिन्ह बनाता था। फिर कुछ बुदबुदाता था। इसके बाद दाहिने हाथ में कुल्हाड़ा लिये बायें से खिड़की का पत्थर थाम कर ऊपर चढ़ने की कोशिश करता था, लेकिन हर बार नीचे गिर जाता था।

रोमास के हाथ में वही खोखला किया हुआ कुन्दा था। उसने उस आदमी से पूछा:

"मामला क्या है? आप इतने परेशान क्यों हैं ऊपर आने को?"

"आग बुझाने के लिए।"

"लेकिन आग है कहाँ?"

वह मुँह बाकर चुपके से चलता बना। रोमास दूकान के ओसारे पर निकल गया और हाथ में खोखली लकड़ी लेकर इकट्ठी भीड़ से बोला:

"तुम्हीं लोगों में से किसी ने इस कुन्दे में बारूद भर कर मेरी ईंधन की लकड़ियों में डाल दिया था। लेकिन बारूद इतना थोड़ा था कि कोई नुक़सान नहीं हुआ...।"

मैं खोखोल के पीछे खड़ा होकर भीड़ को देख रहा था। कुल्हाड़े वाला किसान, जो बहुत भयभीत ज्ञात हो रहा था, अपनी बग़ल के लोगों से कह रहा था:

"वह मुझे मारने के लिये कुन्दा दिखा रहा था...।"

और सिपाही कोस्तिन, जो पिये हुए था, बार-बार चिल्ला रहा था:

"निकालो इसे यहाँ से! नास्तिक कहीं का! ले चलो थाने में...!"

पर ज़्यादातर लोग चुपचाप थे। सबों की नज़र रोमास के ऊपर गड़ी हुई थी और वे अविश्वास के साथ उसकी बातें सुन रहे थे। वह कह रहा था:

"किसी का घर उड़ाने में ढेर सा बारूद लगता है। पूड। समझे न? तुम लोग अब यहाँ खड़े क्या कर रहे हो? जाओ अपने-अपने घर।"

भीड़ में से किसी ने चिल्ला कर कहा:

"नम्बरदार कहाँ है?"

दूसरा चिल्लाया:

"थानेदार को बुलवाओ!"

धीरे-धीरे एवं अनिच्छापूर्वक, किसान वहां से खिसक गये। साफ़ मालूम हो रहा था कि उन्हें निराशा हाथ लगी है।

हम लोग अन्दर चले गये। अक्सीन्या ने चाय ढाल कर दी। आज वह सिधाई की पुतली बनी हुई थी। रोमास की ओर सहानुभूतिपूर्वक देखते हुए बोली:

"तुम कभी रिपोर्ट नहीं करते। इसी से उन लोगों को बढ़ावा मिलता है।"

मैंने पूछा:

"तुम्हें गुस्सा भी नहीं आता ऐसी बदमाशियों पर?"

"आदमी दुनिया की हर छोटी-छोटी चीज़ों पर तमकना और क्रोध करना शुरू करे तो इतना ढेर सा वक़्त कहाँ मिलेगा?" उसने जवाब दिया।

मैं सोचने लगा: काश! दुनिया के दूसरे लोग भी ऐसे ही धीर गम्भीर हो सकते!

वह पहले ही इस विषय को ख़तम कर चुका था। उसे दो-चार दिनों में कज़ान जाना था और मुझसे पूछ रहा था कौन-कौन सी किताबें लानी होंगी मेरे लिए।

मुझे कभी-कभी ऐसा लगता था कि इस आदमी को दिल ही नहीं है। उसकी जगह घड़ी जैसा कोई यन्त्र बैठा दिया गया है जो अपनी नियमित रफ़्तार और ख़ास अन्दाज़ से चला करता है। मैं उसे प्यार और श्रद्धा की दृष्टि से देखा करता था, फिर भी मेरी

इच्छा रहती थी कि एक बार भी कभी वह मुझपर या किसी और पर क्रोध करे-गरजे, तड़पे। पर क्रोध जैसी चीज़ मानो उसके लिए बनी ही न थी। किसी की मूर्खता अथवा बदमाशी से नाराज़ होने पर उसकी आँखों में केवल तीखे व्यंग की एक मुद्रा छा जाती। दोनों आँखें सिकोड़ कर वह कोई ऐसी टीका करता—संक्षिप्त और निर्मम—जो तीर की तरह चुभ जाती।

एक बार उसने सूस्लोव से कहा:

"बुढ़ौती में भी इतना ढकोसला करते हो—क्या बात है जी?"

बूढ़े किसान के रक्तहीन गालों और माथे पर लालिमा दौड़ गयी। लगता था कि उसकी हिम-धवल दाढ़ी की जड़ें भी लाल हो गयीं। रोमास बोलता गया:

"इससे लाभ तो कुछ होता नहीं तुम्हें। हाँ दूसरों की नज़रों में गिर ज़रूर जाते हो।"

सूस्लोव ने शर्म से सिर नीचा कर लिया।

"यही तो बात है! कोई भी लाभ नहीं इसमें।"

बाद में उसने इज़ोत से कहा:

"यह आदमी पैदायशी नेता है। अगर ऐसे ही लोग हमारी सरकार में अफ़सर होते तो काम बन जाता!"

संक्षेप में, पर साफ़-साफ़, रोमास ने मुझे समझाया कि उसकी अनुपस्थिति में क्या करना होगा। सुबह का विस्फोट, उसे डरवाने की वह कोशिश, उसके लिए मानो दूर अतीत की कोई तुच्छ घटना थी, मच्छर का दंश मात्र, जिसे कुछ क्षणों के बाद आदमी भूल जाता है।

पानकोव आया और चूल्हे को ग़ौर से देखने के बाद बड़ी संजीदगी से सिर हिला कर बोला:

"डर गये हो क्या?"

"डरना क्यों?"

"यह युद्ध की घोषणा है!"

"आओ चाय पियो।"

"नहीं। पत्नी इन्तज़ार कर रही होगी।"

"गये कहाँ थे?"

"मछली का शिकार करने। इज़ोत के साथ।"

वह चला गया। रसोईघर पार करते समय वह ध्यानपूर्वक फिर बोला:

"यह युद्ध की घोषणा है।"

खोखोल के साथ पानकोव सदा सूत्र रूप में बातचीत करता था। ऐसा लगता था कि सभी महत्वपूर्ण और जटिल विषय दोनों पहले ही निपटा चुके हैं; अब लम्बी अथवा विशद बातचीत की कोई आवश्यकता नहीं रह गयी है। मुझे याद है रोमास से इवान ग्रोज़्नी के शासन काल का इतिहास सुनने के बाद इज़ोत बोला था:

"बड़ा थकानेवाला था यह ज़ार!"

और कुकुश्किन ने कहा था:

"जल्लाद था जल्लाद!"

पर पानकोव ने बड़ी दृढ़ता के साथ अपना मत व्यक्त किया था:

"बुद्धि का अभाव था उसके अन्दर। बड़े-बड़े जागीरदारों को मरवा देने से क्या हुआ जब उनकी जगह छोटे-छोटे ज़मींदारों की

पूरी फ़ौज खड़ी कर दी उसने। और इतना ही नहीं, विदेशियों का भी लाकर बैठा दिया। यह अक़्ल की बात नहीं। छोटे-छोटे ज़मींदार बड़े से दुष्टतर हैं। यह सही है कि मक्खी मक्खी है, भेड़िया नहीं। पर भेड़िये को तो बन्दूक़ से मारा जा सकता है। लेकिन मक्खी जितना सता सकती है आदमी को भेड़िया नहीं।"

कुकुश्किन एक बाल्टी गारा लिए हुए आया और चूल्हे के खिसके ईंटों को बैठाता हुआ बोला:

"साले एक नम्बर के हरामी हैं। अपनी देह का चिल्लड़ नहीं मार सकते, पर आदमी का खून करना हो तो इनके जैसा कोई वीर-बाँकुरा नहीं। तुम दूकान में ज्यादा सामान मत रखो, एंटोनोविच। बेहतर है कि शहर ज्यादा जाया करो और थोड़ा-थोड़ा सामान लाया करो। नहीं तो किसी दिन ये हरामज़ादे आग लगा देंगे इस घर में। मामला अब सुलझ चला है इसलिये वे और भी ख़ार खायेंगे।"

"मामला" का अर्थ था फल-उत्पादकों की सहयोग-समिति। गाँव के धनिकों के लिये वह आँख का काँटा थी। पानकोव, सूस्लोव और दो-तीन अन्य समझदार किसानों की मदद से खोखोल ने सहयोग-समिति का ढाँचा क़राब-क़रीब तैयार कर लिया था। गाँव के गृहस्थ ज्यादा कृपालु हो गये और दूकान में ग्राहकों की संख्या में भी तेज़ी से वृद्धि हो रही थी। बरिनोव और मिगुन जैसे "नाकारे" भी खोखोल की पूरी मदद कर रहे थे।

मिगुन से मुझे बहुत स्नेह हो गया था। उसके दर्दीले गीत कलेजा छलनी कर देते थे। गाते समय उसकी पलकें मुन्द जाती थीं और चेहरे के ऊपर, जो किसी पीड़ा के वश सदा फड़का करता

था, शान्ति छा जाती थी। उसका व्यापार अन्धेरी रात में चलता था जब चांद नहीं निकलता था, या चांदनी घनी काली बदली में छिपी रहती थी। शाम को वह चुपके से मेरे कान में कहता:

"आज रात को घाट पर आ जाना।"

किनारे पहुँचने पर मिगुन तैयार मिला। हाथ में काँटा लिये, वह चोरी से मछली का शिकार करने के लिये नाव पर बैठा हुआ था। उसकी काली, टेढ़ी टाँगें अन्धेरे जल में लटक रही थीं। धीरे-धीरे उसने कहना शुरू किया:

"रईस लोग जब बुरा सलूक करते हैं तो मैं परवाह नहीं करता—कहता हूँ मारो गोली। रईस आखिर रईस है—ज़्यादा पढ़ा-लिखा और जानकार। उनके आगे मैं गंवार ही रहूँगा। पर ये किसान लोग जब रोब ग़ालिब करना शुरू कर देते हैं मेरे ऊपर तो बर्दाश्त नहीं होता। उनके कौनसा सुर्ख़ाब का पर लगा हुआ है जो मुझमें नहीं है। जैसे वे वैसा मैं। वे रूबल की गिनती जानते हैं, मैं कोपेक की। इतने ही में कौनसा बड़ा फ़र्क़ हो गया? फिर मैं क्यों सहूँ उनकी?"

उसका चेहरा फड़क रहा था—ख़ास कर भौंहों के ऊपर का चकत्ता। और फुर्तीली उँगलियाँ बारीक रेती से काँटें को तेज़ कर रही थीं। अपनी सुरीली आवाज़ में वह बोल रहा था:

"वे मुझे चोर कहते हैं। ठीक बात है। मैं करता हूँ चोरी। लेकिन कौन है जो चोरी या डकैती नहीं करता? सभी तो दूसरों को ऐंठ कर अपना घर भरने के दाँव में लगे रहते हैं। यही तो ज़िन्दगी है। ईश्वर को कहते हो—उसे हम लोगों की परवाह नहीं, इसीलिये सदा शैतान की बाज़ी बीस रहती है।"

काली नदी रेंगती चली जा रही है। ऊपर काले मेघ तैर रहे थे। घने अन्धेरे के कारण उस पार का किनारा दिखाई देना असम्भव था। पानी लहराता हुआ बालू पर चढ़ आता था, जहाँ हम खड़े थे। ऐसा लगता था कि हमारे पाँवों को बांध कर वह हमें उठा ले जाना चाहता है—तटहीन निबिड़ अन्धकार में।

मिगुन ने लम्बी साँस छोड़ कर कहा:

"दुनिया में है तो आदमी को रोज़ी का सहारा ढूँढ़ना ही पड़ेगा!"

कगार के ऊपर किसी कुत्ते का क्रन्दन रात के अन्धेरे को चीरता हुआ गूँज उठा। मैं मानो स्वप्न में डूबा हुआ था। मन ने सवाल किया:

"जीना—क्या मिगुन की तरह? क्यों?"

नदी तट पर नीरवता का साम्राज्य है। सघन अन्धकार रोम में कम्पन पैदा कर रहा है। और अन्धकार में उष्णता है—अनन्त।

मिगुन कहता गया:

"ये लोग मिलकर किसी दिन खोखोल को मार डालेंगे। और शायद तुम्हारा भी वही हाल करेंगे वे।"

हठात् उसने धीमे स्वर में गाना शुरू किया:

मेरी अम्मा बोली प्यार से मुझसे,
प्यार से बोली अम्मा—उई माँ!
मेरे याशा! मेरी अम्मा!
मेरे लाल दुलारे लल्ला! उई माँ!
रहना तुम लायक़ बनके...।

उसकी पलकें झप गयीं; स्वर अधिक गम्भीर और उदास हो गया, तथा उँगलियाँ, जो अभी तक काँटा ठीक कर रही थीं, सुस्त पड़ गयीं।

पर लायक़ बना न मैं
उई माँ! बना न मैं...।

मुझे न जाने कैसा लगने लगा। ऐसा मालूम हुआ कि काले, विशाल जल-प्रवाह ने धरती को भीतर से खोखला कर डाला है, वह चरमरा कर धंसी जा रही है और मैं धरातल से फिसल कर अतल अन्धकार में गिरा जा रहा हूँ जहाँ सूर्य का गोला हमेशा के लिए डूबा पड़ा है।

उसका गाना रुक गया, हठात्, जैसे शुरू हुआ था और मिगुन नाव को ठेल कर उसपर सवार हो गया। बात की बात में नाव अन्धेरे में ओझल हो गयी—चुपचाप, निःशब्द। मैं आँखें बाये देखता रहा उसका जाना। मेरे मन ने प्रश्न किया:

"ऐसे लोग भी क्यों हैं इस दुनिया में?"

बरिनोव मेरा दूसरा मित्र था—एक नम्बर का फक्कड़ और गप्पी। काम में उसका जी नहीं लगता था। वह मास्को में रह चुका था और उस नगर से उसे सख्त चिढ़ थी। वह कहता:

"वह नगर क्या है, शैतान का अड्डा है। ऐसी चौपट जगह दूसरी नहीं मिलेगी। चौदह हज़ार ६ तो गिर्जाघर हैं उसमें, पर वहाँ रहनेवालों का हाल यह है कि हर आदमी एक नम्बर का ठग। और सभी को खुजली की बीमारी है। एक भी आदमी ऐसा

नहीं जिसे खुजली न हो। तुम्हारी क़सम खाकर कहता हूं— दूकानदार, व्यापारी, सिपाही या दूसरे लोग, सभी का हाल यों है जैसे खौरा लगा हुआ घोड़ा—बैठे हैं, चले जा रहे हैं, या बात कर रहे हैं और खुजला रहे हैं देह को। अलबत्ता ज़ार-तोप देखने लायक़ चीज़ है वहाँ। दुनिया में उसके जोड़ की दूसरी तोप नहीं। बादशाह पीटर महान ने बागियों से मोरचा लेने के लिए उसे अपने हाथ से ढाला था। एक औरत थी, बहुत बड़े घराने की, उसी ने, इश्क के चक्कर में फंस कर बलवा करा दिया। सात वर्ष तक बादशाह उस औरत को रखे हुए था—गिन कर सात वर्ष—और उसके बाद उसे यकायक छोड़ दिया। तीन बच्चे थे उसके। इसी के ऊपर गुस्सा आ गया उसको और करा दिया उसने बलवा। उसके बाद जानते हो क्या हुआ, भैया? ज़ार ने बलवे के ऊपर चला दी तोप। नौ हज़ार तीन सौ आठ आदमी खेत रहे! बादशाह खुद घबरा गया। बड़ा पादरी फ़िलारेत से वह बोला, 'नहीं बाबा, यह तोप आफ़त की पुड़िया है। इसे ता कर रख देना चाहिए। खुली रहेगी तो न जाने कब किसी का मन फिर इसे छोड़ने को हो जाय!' उसी दिन से तोप ता कर रख दी गयी।"

मैंने कहा कि यह सब गप्प है। इसपर बरिनोव बुरा मान गया। बोला:

"तुम भी ग़ज़ब के शक्की हो। यह सारा क़िस्सा मैंने एक बड़े विद्वान आदमी के मुंह से सुना है पर तुम हो कि इसे भी गप्प कह दिया...।"

वह "सन्तों का दर्शन करने" किएव भी जा चुका था। उस यात्रा का अनुभव वह यों बयान करता था:

"किएव नगर समझो कि हमारे गाँव ही जैसा है, नदी के कगार पर बसा हुआ। भूल गया क्या नाम है उस नदी का। पर हमारी नदी के मुक़ाबले उसे नाला ही समझो। बड़ा अजीब शहर है—बिलकुल बेतुका। उसकी सभी सड़कें बकुची हैं। ऊपर को चढ़ती चली जाती हैं। लोग वहाँ के खोखोल हैं पर मिखाइल एंटोनोविच की तरह के नहीं। वे दूसरी ही जाति के हैं आधे पोल और आधे तातार। अजीब गिटपिट बोली बोलते हैं। बड़े गन्दे होते हैं वे लोग। बालों में कंघा करना तो जानते ही नहीं। और मेढक खाते हैं। मेढक भी वहाँ दस-दस फ़ुण्ट के होते हैं। हल और गाड़ी में वे लोग बैल जोतते हैं। वहाँ के बैल बड़े शानदार होते हैं—वहाँ का मामूली बैल भी हमारे यहाँ के बैलों से चौगुना होगा। एक-एक का वज़न तिरासी पूड। वहाँ सत्तावन हज़ार भिक्षु और दो सौ तिहत्तर बड़े पादरी हैं...। हँस क्या रहे हो तुम? विश्वास नहीं होता? लेकिन भाईजान मैं तो अपनी आँख से देख आया हूँ। और तुम? कभी गये हो वहाँ? नहीं न? फिर तुम्हें बीच में बोलने का अधिकार? मैं तो भैया, गणित लेता हूँ। बिना गिनती के बात नहीं बोलता। क्योंकि अपना तो सिद्धान्त है— बात पते की और सटीक बोलनी चाहिए।"

गिनती का उसे शौक था। मुझसे ही उसने जोड़ और गुणा सीखा था। पर भाग उसे नहीं आता था। लम्बी सी लकड़ी लेकर, बड़े उत्साह के साथ, वह बालू के ऊपर बड़े-बड़े अंकों का

गुणनफल निकालने बैठ जाता। पहाड़ा ग़लत हो जाता था। पर इसकी उसे परवाह नहीं। उत्तर निकालने के बाद वह, बालोचित विस्मय के साथ, विशाल गुणनफल को निहारता हुआ कहता:

"बापरे! इतना बड़ा! मुँह से कहना चाहे तो इसका उच्चारण ही नहीं कर सके आदमी!"

अनगढ़ धजा, तार-तार कपड़े, बिखरे बाल — यह था बरिनोव। पर चेहरा उसका बुरा न था, बल्कि सुन्दर। छोटी सी खुशनुमा दाढ़ी, स्वच्छ नीली आँखें, जिनमें बालोचित मुस्कान झलका करती थी। उसके तथा कुकुश्किन के चरित्र में एक प्रकार की समानता थी। सम्भवतः इसी समानता की वजह से दोनों एक-दूसरे से फटके हुए रहा करते थे।

बरिनोव दो बार मछली मारने कास्पियन सागर जा चुका था। उसका वर्णन करते समय उसके उत्साह का ठिकाना नहीं रहता था। वह कहता:

"समुद्र, भाईजान, अजूबा चीज़ है। दुनिया में उसके जोड़ की दूसरी चीज़ नहीं। आदमी तो उसके आगे पिस्सू है, पिस्सू। आदमी उसके सामने तिनके बराबर भी नहीं है। और बड़े मौज़ की ज़िन्दगी कटती है समुद्र में। तरह-तरह के लोग इकट्ठे होते हैं वहाँ। हम लोगों की जमात में एक पादरी भी कहीं से आ गया था। बुरा आदमी नहीं था बेचारा। हमीं लोगों की तरह वह भी काम में जुट जाता था। और एक महराजिन भी थी। पहले वह किसी वकील की रखेलिन थी। बड़े चैन से कट रही थी, पर समुद्र की पुकार पर उसने लात मार दी उस ज़िन्दगी को। बोली,

'वकील साहब, आदमी तो आप बड़े अच्छे हैं। पर मैं चली।' समुद्र की यही खुसुसियत है। एक बार हो आया आदमी तो घूम फिर कर फिर वहीं पहुँचेगा। जगह की वहाँ तंगी नहीं, आकाश की तरह उन्मुक्त। न भीड़-भाड़, न रेल-पेल। मैं तो क़सम खा कर कहता हूँ एक दिन ज़रूर वहीं चला जाऊँगा। भीड़-भाड़ मुझे अच्छी नहीं लगती। यही तो दिक़्क़त है मेरे साथ। मुझे तो किसी आश्रम में जाकर रहना था। पर अफ़सोस कि किसी अच्छे आश्रम का ठिकाना ही नहीं मालूम अपने को...।"

गाँव में उसकी हैसियत लावारिस कुत्ते जैसी थी। किसान उसे नीची नज़र से देखते थे। फिर भी लोग उसकी कहानियाँ उतने ही चाव से सुना करते थे जितने चाव से मिगुन के गाने।

"गप्प हाँकने में लासानी है! मज़ा आ जाता है," लोग कहते।

कभी-कभी उसकी गप्पों में पानकोव जैसे व्यापारिक और शक्की दिमाग के किसान भी आ जाते थे। एक दिन पानकोव ने खोखोल से कहा:

"बरिनोव का कहना है कि किताबों में ग्रोज़्नी के बारे में पूरी बातें नहीं लिखी हैं; बहुत सी बातें छिपा ली गयी हैं। बरिनोव कहता है कि ग्रोज़्नी हमेशा आदमी के रूप में ही नहीं रहा करता था—कभी-कभी वह उकाब बन जाता था। इसीलिये, उसी के नाम पर, सिक्कों के ऊपर उकाब का चित्र छापा जाता है।"

पानकोव की बात सुन कर मुझे फिर भास हुआ—शायद सौवीं बार—कि जीवन सम्बन्धी सच्ची और सरल बातों से

अधिक रुचि लोगों को असाधारण, मनगढ़न्त बातों में है — ऐसी बातों में जो स्पष्टतः मनगढ़न्त हैं।

खोखोल से मैंने यह बात कही। वह मुस्कराने लगा, और बोला:

"ये चीजें स्थायी नहीं। प्रधान चीज़ यह है कि आदमी अपने दिमाग़ का प्रयोग करना — सोचना — सीखे। तब सच्ची बातों को समझने में उसे ज़्यादा देर न लगेगी। वह स्वयं ही सही व्याख्याओं पर पहुँच जायगा। बरिनोव और कुकुश्किन में गहरी मौलिकता है जिसकी हमें क़द्र करनी चाहिये। वे कलाकार हैं — सृजक। सम्भवतः ईसामसीह भी इन्हीं जैसा मौलिक व्यक्ति था। और तुम भी मानोगे कि उसने जो बातें गढ़ी उनमें कुछ तो वैसी बुरी नहीं हैं।"

एक चीज से मुझे आश्चर्य होता था — ये सारे लोग ईश्वर की बहुत ही कम, और अनिच्छापूर्वक, चर्चा करते थे। केवल बूढ़ा सूस्लोव बराबर और प्रगाढ़ विश्वास के साथ कहा करता था:

"यह सब प्रभु की मर्ज़ी है!"

उसके इन शब्दों में मुझे सदा हताश भावना परिलक्षित होती थी।

इन लोगों की संगत में मेरे दिन बड़े आनन्द से कट रहे थे। सन्ध्याकालीन उन गोष्टियों द्वारा मुझे काफ़ी नवीन ज्ञान प्राप्त हुआ। विशाल वृक्ष की भान्ति हर समस्या की, जिनकी रोमास विवेचना करता था, जड़ें जीवन के सारतत्व के अन्दर दूर तक चली गयी थीं। भीतर जाकर दूसरे उतने ही विशाल वृक्षों की जड़ों के साथ वे गुथ जाती थीं। और उनकी शाखाओं का क्या

कहना? उनमें नये विचारों के बौर लदे हुए थे। पत्तियों के स्थान पर थे असरदार शब्द जिन्होंने घनी छाँह फैला रखी थी। किताबों में निहित ज्ञान अमृत का घड़ा था जिसका मैं छक कर पान कर रहा था और स्पष्ट महसूस करने लगा था कि ज्ञान के जगत में मैं भी गति प्राप्त कर रहा हूँ। अब मैं अधिक आत्मविश्वास के साथ बोलता था। और खोखोल ने कई बार मेरी तारीफ़ भी की। हँसते हुए उसने कहा:

"शाबाश मक्सिमिच! ख़ूब तरक़्क़ी कर रहे हो तुम!"

प्रोत्साहन के इन शब्दों से मैं कृतकृत्य हो उठता था।

सन्ध्याकालीन गोष्ठियों में कभी-कभी पानकोव अपनी पत्नी को भी लाता था। वह छोटी सी औरत थी, शहराती पोशाक, भोला चेहरा और नीली आँखें जिनसे मेधा टपकती थी। कमरे के एक कोने में वह चुपचाप बैठ जाती। स्त्रियोचित शिष्टाचार के अनुसार, वह मुँह बन्द रखती। वह कुछ देर बातचीत सुनती रहती, फिर ओठ खुल जाते। आँखें संकोचपूर्ण विस्मय से फैल जातीं। बीच में कोई मज़ेदार टीका कर देता और वह खिलखिला पड़ती। पर दूसरे ही क्षण झेंप कर हथेली से मुँह छिपा लेती। रोमास की ओर कनखियों से इशारा कर पानकोव कहता:

"यह भी समझती है बातों को!"

खोखोल के कुछ गुप्त मुलाक़ाती भी थे। वे आते तो उन्हें कोठे पर मेरे कमरे में पहुंचा दिया जाता। वहीं बैठ कर वह घण्टों उनके साथ वार्तालाप किया करता था।

वे कोठे पर ही सोते और खाना खाते थे। अक्सीन्या उन्हें चुपके से ऊपर खाना दे आती थी। उनके आगमन की बात केवल उसे और मुझको मालूम रहती थी। और वह रोमास की अंधभक्त थी—रोमास उसकी नज़रों में देवता था। रात के वक्त इज़ोत और पानकोव नाव में चढ़ा कर उन्हें किसी गुज़रते अगिनबोट पर अथवा लोबिश्की घाट तक पहुँचा आते। मसूर जैसी नाव अगिनबोट के कप्तान का ध्यान आकर्षित करने के लिए अपनी लालटेन हिला-ती नदी की काली छाती पर चल देती। अगर चांदनी रात होती तो नाव दरिया की रुपहली सतह को चीरती चली जाती। ऊँचे कगार पर खड़ा होकर मैं महसूस करता कि एक महान, गुप्त आन्दोलन में मैं भी साझी हूँ और मन को इससे बड़ी खुशी होती।

इन दिनों मरीया देरेन्कोवा भी शहर से आ गयी थी। पर उसकी आँखों में अब वह चीज़ नहीं रही जो मुझे सदा बेचैन कर दिया करती थी। उनमें अब सिर्फ़ एक ऐसी बालिका की चपलता थी जो जानती है कि वह रूपवती है। साथ ही, उनमें खुशी का प्याला छलका करता था—इस बात की खुशी कि उसका दाढ़ी वाला लम्बा-चौड़ा दोस्त उसके प्रति आकर्षित है। रोमास उसके साथ भी उसी सम स्वर में—जिसमें व्यंग का हलका पुट होता था—बोला करता था जैसे औरों से बातें करता, हाँ, उसकी उपस्थिति में उसके हाथ बार-बार अपनी दाढ़ी पर चले जाया करते थे। इसके अलावा दृष्टि में स्निग्धता आ जाती थी। जहाँ तक मरीया का सवाल है उसकी बंशी-ध्वनि जैसी मीठी आवाज़ में उल्लास का पुट था। उसने हलके नीले रंग की पोशाक धारण कर

रखी थी। बालों में हलके नीले रंग का फ़ीता था। उसकी बच्चों जैसी हथेलियों में विचित्र प्रकार की चंचलता थी मानो वे किसी ऐसी चीज़ की तलाश कर रही हों जिन्हें भरपूर अपने हाथों में ले सकें। वह कोई न कोई गीत गुनगुनाया करती और छोटे से रूमाल से अपने गुलाबी, दीप्त चेहरे पर हवा किया करती थी। उसमें कोई ऐसी विलक्षण चीज़ थी जिससे मेरी बेचैनी बढ़ जाती थी, पर यह बेचैनी दूसरे क़िस्म की थी। वह मुझे ग़ैर लगती; उसे देख कर मन में विरोध का भाव उत्पन्न हो जाता। मेरे मन में सदा उदासी छा जाती थी और मैं भरसक उससे दूर ही दूर रहने की कोशिश किया करता था।

जुलाई के मध्य में एक दिन इज़ोत ग़ायब हो गया। गाँव में चर्चा उड़ी कि वह नदी में डूब गया। दो दिन बाद उसकी नाव, उस पार, गाँव से कई मील आगे पड़ी मिली। उसका किनारा टूटा हुआ था और पेंदे में बड़ा सा छेद हो गया था। इससे लोगों का अनुमान और पक्का हो गया। सबों का अनुमान था कि वह नाव में सो गया होगा और धारा में फंस कर नाव गाँव से कुछ दूर हट कर बंधे बजड़ों से जा टकरायी होगी।

रोमास उन दिनों कज़ान गया हुआ था। शाम को कुकुश्किन दूकान में आया और लम्बा मुंह किये बोरों के एक ढेर पर बैठ गया। कुछ देर चुपचाप धरती को एकटक ताकते रहने के बाद वह बोला :

"ख़ोख़ोल कब आयेगा?"

"मुझे नहीं मालूम।"

अपने चेहरे को हथेलियों से ढक कर वह लगा गालों को सहलाने जिन पर घाव के दाग़ थे। साथ ही उसके मुंह से धीमे-धीमे पर अत्यन्त गन्दी गालियां निकल रही थीं। वह यों हाँफ रहा था जैसे मुंह में हड्डी अटकी हुई हो। मैंने पूछा:

"मामला क्या है?"

उसने नज़र उठा कर मेरी ओर देखा और लगा दान्तों से ओठ चबाने। उसकी आँखें लाल हो रही थीं, ठुड्डी काँप रही थी। मुंह से शब्द नहीं निकल पा रहे थे। उसके मुंह पर नज़र गड़ाये में बड़ी बेसब्री से इंतज़ार कर रहा था। स्पष्ट था कि बुरी ख़बर लाया है वह। बड़ी देर के बाद उसके मुंह से बोल फूटा। दरवाज़े पर तेज़ी से एक नज़र फेंकने के बाद लड़खड़ाती ज़बान से वह कहने लगा:

"आज मिगुन को लेकर मैं इज़ोत की नाव को देखने गया था — उसके पेंदे में कुल्हाड़े से छेद किया हुआ है। समझे न? कुल्हाड़े से! इसका साफ़ मतलब है कि इज़ोत की हत्या कर डाली गयी है!"

सिर सीधा करके वह लगा गालियाँ बकने। बीच में सिसकियाँ फूट पड़ती थीं। थोड़ी देर में वह चुप हो गया और कई बार अपने ऊपर क्रॉस का चिन्ह बनाया। उसकी हालत देखी नहीं जाती थी। पूरा शरीर अपार शोक और क्रोध से सिहर रहा था। वह रोना चाहता था, पर रो नहीं पा रहा था। फिर सिर सीधा करके वह हठात् उठ खड़ा हुआ और बाहर निकल गया।

दूसरे दिन शाम को कुछ लड़कों को नदी में नहाते वक़्त इज़ोत की लाश मिली। गाँव के नज़दीक ही उलटी धार पर एक

टूटा बजड़ा पड़ा हुआ था जिसका आधा हिस्सा कंकरीले किनारे के ऊपर था और आधा पानी में। पीछे के, पानी वाले हिस्से में, पतवार में इज़ोत की लम्बी लाश फंसी हुई थी। मुंह नीचे की ओर, खोपड़ी चूर-चूर। भेजा पानी में वह चुका था, केवल खोल रह गया था। किसी ने पीछे से कुल्हाड़े का वार किया था जिससे खोपड़ी दो टुकड़े हो गयी थी। पानी की धारा से लाश हिल रही थी। पैर किनारे की ओर फेंके हुए और दोनों हाथ झूल रहे थे जिससे ऐसा लगता था मानो वह पानी से बाहर निकल कर घाट पर चढ़ने की कोशिश कर रहा हो।

क़रीब बीस किसान लाश के पास इकट्ठे थे—सभी के चेहरे उदास और विचार में डूबे हुए। ये गाँव के धनी किसान थे। ग़रीब किसान खेतों से नहीं लौटे थे। मुखिया, जिसकी सूरत से ही कपट और कायरता टपकती थी, अपनी छड़ी घुमाता इधर से उधर टहल रहा था, मानो बड़ा व्यस्त हो अधिकारी की हैसियत से। वह रह-रह कर नाक झाड़ कर अपनी गुलाबी क़मीज़ की आस्तीन पर हाथ पोंछ रहा था। मुस्टण्डा दूकानदार कुज़मिन दोनों पाँव बायें जम कर खड़ा था। उसकी बड़ी सी तोन्द आगे निकली हुई थी और वह बारी-बारी से कुकुश्किन और मुझको देख रहा था। उसकी भौंहों पर त्योरी थी, पर रंगहीन आँखों में पानी डबडबाया हुआ सा प्रतीत हो रहा था। मुझे लगा कि उसके चेचकरू चेहरे पर बदहवासी और बेबसी छायी हुई है।

मुखिया अपनी टेढ़ी टाँगों से नदी के किनारे इधर से उधर घूमते हुए रुआँसे स्वर में कह रहा था:

"ओफ़, कैसा कांड। बड़ी हरमज़दगी हुई है!"

उसकी मोटी-ताज़ी पतोहू पानी के किनारे एक पत्थर के ऊपर बैठ कर शून्य दृष्टि से नदी की ओर देख रही थी। काँपती उँगलियों से वह बार-बार अपने ऊपर क्रास का चिन्ह बनाती जाती थी। उसके ओठ हिल रहे थे। नीचे का मोटा, लाल ओठ कुत्ते के जबड़े की तरह लटका हुआ था। बदनुमा पीले दाँतों की पाँत बाहर झाँक रही थी। लड़के कगार से नीचे लुढ़कते-पुढ़कते दौड़े चले आ रहे थे। लड़कियों का एक झुण्ड भी आ पहुँचा। यों दिखायी दे रही थीं जैसे कगार पर किसी ने रंग-बिरंगी पुताई कर दी हो। इसके बाद खेतिहरों का आना शुरू हो गया—धूल से सने हुए सीधे खेत से वे भागते चले आ रहे थे। भीड़ में से एक धीमी गुँजार उठ रही थी। किसी ने कहा:

"उत्पात की जड़ था वह।"

"क्यों?"

"अरे वह कुकुश्किन—वही उत्पात की जड़ है...।"

"वह। एक आदमी का खून हो गया और तुम्हारे लिए कुछ हुआ ही नहीं।"

"इज़ोत ने कभी किसी का कुछ नुक़सान नहीं किया...।"

"क्या कहा? किसी का नुक़सान नहीं किया था?" क्रुद्ध कुकुश्किन ने भीड़ को चुनौती देते हुए गरज कर कहा। "तब हरामज़ादो! तुमने मार क्यों डाला उसे?"

हठात् कोई औरत पागलों की तरह हो-हो कर हँस पड़ी। उसकी चीख ने मानो भीड़ पर कोड़े का काम किया। लोग एक

दूसरे पर टूट पड़े—गाली देते, कोसते, चिल्लाते। कुकुश्किन ने झपट कर दूकानदार कुज़मिन के मोटे गालों पर कस कर एक तमाचा जड़ दिया:

"कुत्ता कहीं का! ले!"

मुक्के माँजता भीड़ को चीरता, वह बाहर निकला और चिल्ला कर मुझसे बोला, उसकी आवाज़ में संतोष और खुशी थी:

"भागो! आज मार होगी!"

किसी का मुक्का पहले ही उसके मुँह पर पड़ चुका था जिससे उसके ओठ कट गये थे और ख़ून टपक रहा था। पर उसके चेहरे पर संतोष की दीप्ति थी। बोला:

"देखा न तुमने? कैसा कस कर दिया कुज़मिन को।"

बरिनोव दौड़ा हुआ हमारे पास आया। वह घबराया हुआ किसानों की भीड़ की ओर देख रहा था जो आपस में गुँथ गये थे। कोलाहल के बीच मुखिया की पतली तेज़ आवाज़ सुनायी पड़ रही थी। वह कह रहा था:

"कौन कहता है कि मैंने तरह दी है? साबित करो इसको! करो साबित!"

हम लोग घाट से ऊपर चढ़ रहे थे। बरिनोव बोला:

"मुझे नौ-दो ग्यारह हो जाना चाहिये यहाँ से।"

शाम का वक़्त था। हवा में बड़ी गर्मी थी। मेरा दम घुट रहा था। डूबते सूरज की लाली नीले बादलों की आड़ से दिखायी दे रही थी। हमारी चारों ओर की झाड़ियों पर आकाश की लालिमा प्रतिबिम्बित हो रही थी। कहीं ज़ोर से बिजली कड़क उठी।

इज़ोत की लाश मेरी आँखों के आगे नाच रही थी। पानी की धार में मृत देह हिल रही है, छूंछी खोपड़ी पर केश पानी में तैर रहे हैं। उसकी धीमी मधुर आवाज़ मेरे कानों में गूँजने लगी। एक दिन उसने कहा था:

"हर आदमी में बालपन छिपा रहता है। वही केन्द्र है—मानव हृदय में बैठा शिशु—जिसे छूने की कोशिश करनी चाहिये। खोखोल को ही ले लो। मालूम होता है कि लोहे को बना हुआ है। पर उसके अन्तर में शिशु की आत्मा है।"

कुकुश्किन मेरी बग़ल में तेज़ी से पाँव घसीट रहा था। वह रूखे स्वर में बोला:

"एक-एक कर वे इसी तरह हम सबों को ख़तम कर डालेंगे। भगवान—लेकिन यह भी कैसी मूर्खता है!"

इस घटना के दो-तीन दिन बाद खोखोल घर लौटा। रात ज़्यादा जा चुकी थी। किसी वजह से वह बेहद खुश नज़र आ रहा था। उसने असाधारण स्नेह के साथ मेरा अभिनन्दन किया। दरवाज़े के भीतर जाने के बाद मेरे कंधे थपथपाते हुए वह बोला:

"आजकल सो नहीं रहे हो क्या, मक्सिमिच?"

मैंने कहा:

"इज़ोत का खून हो गया।"

उसका मुँह खुला का खुला रह गया:

"क्य-क्य-क्या?"

उसके गालों की माँसपेशियाँ उभर आयीं। दाढ़ी यों हिलने लगी जैसे झरना झर रहा हो छाती के ऊपर। टोपी उतारने की

16—1072

भी उसे सुध न रही। कमरे के बीच में रुक कर उसने ज़ोर से अपना सिर हिलाना शुरू किया। आँखें सिकुड़ गयीं। बोला:

"खून हो गया। मुजरिमों का पता नहीं। क्यों?"

वह थके पाँवों से खिड़की के पास गया और बैठ कर पैरों को सीधा किया।

"मैंने बराबर उसे चेताया था...। पुलिस वग़ैरह आयी थी क्या?"

"कल दारोगा आया था।"

"अच्छा, नतीजा क्या निकला?" और अपने ही प्रश्न का उसने जवाब दिया: "बेशक! नतीजा-वतीजा क्या निकलेगा।"

मैंने कहा कि दारोगा हसबदस्तूर कुज़मिन के घर ठहरा था। उसे पीटने के अपराध में उसने कुकुश्किन को हवालात भेज दिया है।"

"हूं! यही तो रवैया है इन लोगों का। कोई कह क्या सकता है?"

मैं समावार सुलगाने रसोईघर में चला गया।

चाय पीते वक़्त रोमास बोला:

"दुनिया विचित्र है। श्रेष्ठ और सज्जन लोगों को वह नहीं बर्दाश्त कर सकती। निहायत अफ़सोस और शर्म की बात है यह। अच्छे लोग चुन कर खतम कर दिये जाते हैं। लगता है कि आदमी जितना ही सज्जन और उत्कृष्ट प्रकृति का होता है उतना ही लोग उससे डरते हैं। 'रास्ते का काँटा' समझ कर ऐसे लोगों का उच्छेद कर दिया जाता है। साइबेरिया भेजे जाते वक़्त मेरी मुलाक़ात एक क़ैदी से हुई थी। उसने बताया कि उसे चोरी में सज़ा हुई है। वे पाँच जने थे। पाँचों मिल कर सेंध लगाया करते

थे। पूरा एक गिरोह ही था उनका। एक दिन ऐसा हुआ कि उनमें से एक ने कहा: 'लात मारो इस पेशे को। इतने दिनों के बाद भी हम लोग दौलत नहीं जमा कर सके। फिर क्या लाभ है इसमें?' इसी बात पर एक दिन बाक़ी चारों ने उसका ख़ून कर दिया। वह नशे में खर्राटा ले रहा था। उसी वक़्त सबों ने उसका गला घोंट दिया। यह कहानी कहने वाला क़ैदी उस आदमी की तारीफ़ करते नहीं थकता था। उसने कहा: 'उसके बाद से तीन और आदमियों का ख़ून कर चुका हूँ इन हाथों से पर उनका अफ़सोस नहीं होता। लेकिन अपने उस साथी की याद आती है तो कलेजा मसोसने लगता है। उसके जैसा हमजोली मिलना कठिन है—बड़ा ही हुनरमन्द, सदा हंसमुख और सच्चा साथी था वह।' मैंने पूछा, 'तो मार क्यों डाला उसे? मुख़बिरी के डर से?' मेरे इस प्रश्न पर वह बिगड़ गया। बोला, 'मुख़बिरी? हमारा साथी सारी दुनिया की दौलत देने पर भी मुख़बिर नहीं बन सकता था हम लोगों के खिलाफ़! सच्ची बात यह है कि उसके साथ रहने से हम लोगों को अनकुसाहट मालूम होने लगी थी—हम लोग इतने पापी और वह इतना सज्जन। एक प्रकार से सन्त ही समझो उसे। यही बात हम लोगों को जंच नहीं रही थी।'"

खोखोल उठ कर कमरे में चहलक़दमी करने लगा। वह घुटने तक फैला सफ़ेद तातारी कुर्ता पहने हुए था। पैर नंगे। दान्तों में पाइप दबाये और हाथ पीछे बाँधे वह घूम रहा था कमरे में—लम्बा और विशालकाय। चिन्तनपूर्ण स्वर में, मानो स्वतः, वह कह रहा था:

"दुनिया का यही दस्तूर है। 'संत' से वह घबराया करती है। उनका सफ़ाया कर दिया जाता है। पहले तो उन्हें भान्ति-भान्ति की यंत्रणा दी जाती है, और जब इससे जी ऊब जाता है, तो उनका खातमा कर दिया जाता है। हाँ कुछ 'संत' ऐसे भी होते हैं—बिरले ही—जिनके साथ दूसरे क़िस्म का सलूक किया जाता है। यानी, उन्हें पूजना शुरू कर देती है दुनिया। कुत्तों की तरह दुम हिलाए जाती है उनके सामने। उनके हर शब्द और हर नज़र की उपासना की जाती है। उनसे लोग सीखते नहीं, अथवा उनके जीवन की नक़ल करने की कोशिश नहीं करते। इसकी फ़ुरसत ही किसे है? सम्भवतः वे जानते भी नहीं कि उसका कैसे अनुसरण किया जाय। शायद उन्हें ऐसा करने की इच्छा ही नहीं। वे बस मत्था टेकना जानते हैं अपने 'संत' को।"

मेज़ पर रखा चाय का गिलास ठण्डा हो चुका था। उसे हाथ में लेकर रोमास ने अपना भाषण जारी रखा:

"सम्भवतः असल बात यही है! वैसे भी यह स्वाभाविक मालूम होता है: बड़ी मेहनत से आदमी ने अपनी ज़िन्दगी का एक तर्ज़ पैदा किया और आदी हो गया उसका। तब तक कोई साहब बीच में आ टपके, बाग़ी बन कर, और कहने लगे कि तुम्हारी ज़िन्दगी ठीक नहीं, उसे बदल डालो। इसपर लोग उखड़ जाते हैं, वे झुंझला कर सवाल करते हैं: 'एं? क्या कहा—हमारी ज़िन्दगी ही ठीक नहीं? यहाँ हमने सब कुछ दाँव पर लगा कर यह इमारत खड़ी की है और तुम आये और कहने लगे कि यह ठीक ही नहीं। वाह भाई साहब! खूब आये!' और वे ऐसे सुधारक अथवा संत पर

टूट पड़ते हैं—खतम करो इसे, आया है अनाप-शनाप सिखाने हम लोगों को! फिर भी वास्तविकता यही है कि संत का कहना ही ठीक है। सत्य संत की ही ओर है। और दुनिया तरक़्क़ी कर रही है तो उन्हीं लोगों के दम से जो यह कहने की हिम्मत रखते हैं कि 'तुम्हारी ज़िन्दगी ठीक नहीं।'"

आले में रखी किताबों की ओर इशारा करके उसने कहा:

"यह खास तौर से इन्हीं के दम से है। काश! मैं भी लिख सकता एक किताब! पर लिखना आता ही नहीं मुझे। मेरे दिमाग़ में सुलझपन और विचारों में गति ही नहीं है।"

वह मेज़ के पास बैठ गया और हथेलियों में माथा टेक लिया। बोला:

"इज़ोत के बिना दिन कैसे कटेंगे...!"

इसके बाद बड़ी देर तक मौन रहा। अन्त में उसने कहा:

"चलो, अब सो जाने की कोशिश करनी चाहिये...।"

मैं कोठे पर चला गया और अपनी कोठरी की खिड़की पर जा बैठा।

आकाश स्वच्छ था, फिर भी खेतों के ऊपर बिजली चमक रही थी—ग्रीष्म ऋतु की सूखी बिजली। चपला की लाल कौंध के समान चन्द्रमा मानो भय से चौंक उठता था। कुत्ते भौंक कर रात की नीरवता भंग कर रहे थे। उनकी चिल्लाहट ही मानो एक मात्र यादगार थी इस बात की कि हम लोग किसी सुनसान, रेगिस्तानी टापू में नहीं हैं। बड़ी दूर बिजली कड़क रही थी। खिड़की के रास्ते कमरे में उमस समायी जा रही थी।

इज़ोत की लाश फिर आँखों के सामने नाचने लगी। वह जल-बेंत की झाड़ियों के नीचे पड़ी हुई है। नीला चेहरा आसमान की ओर है, पर पथरायी हुई आँखें मानो कठोर दृष्टि से आत्मा का अन्तर्दर्शन कर रही हों। लाल सुनहली दाढ़ी के बाल उलझ गये थे। ओठ मानो विस्मय से खुले हुए थे। उसकी एक उक्ति याद आ गयी। उसने कहा था:

"सुनो मक्सिमिच! दया और सद्भावना—यही है असल चीज़! यही कारण है कि ईस्टर मुझे सब से प्रिय है—त्योहारों में सब से सद्भावनापूर्ण!"

दोपहर की धूप में उसकी नीली पतलून सूख गयी थी। वह वोल्गा के जल से धुली और स्वच्छ नीली टाँगों में चिपकी हुई थी। चेहरे पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। शरीर से सड़ाँध की भारी गंध उठ रही थी।

सीढ़ियों पर किसी की भारी चाप सुनायी पड़ी। रोमास था। सिर झुका कर वह कोठरी के नीचे दरवाज़े से अन्दर दाखिल हुआ। मेरी खाट पर बैठकर उसने एक हाथ से अपनी दाढ़ी थाम ली। बोला:

"एक बात तुमसे कहना चाहता था: मेरी शादी हो रही है!"

"औरत के लिए यहाँ की ज़िन्दगी ज़रा कठिन होगी," मैंने कहा।

वह मेरी ओर घूरने लगा, मानो यह सोच रहा हो कि मैं और क्या टीका करूँगा। पर मुझे और कुछ नहीं सूझा। सूखे आसमान में बिजली फिर कौंधी। कोठरी में एक क्षण के लिए अद्भुत प्रकाश फैल गया।

"मेरी शादी माशा देरेन्कोवा से ही रही है।"

मैं हंसी न रोक सका। इस लड़की को भी कोई माशा कहेगा इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी। जहाँ तक मुझे मालूम था उसके बाप या भाइयों ने भी उसे कभी यह कह कर नहीं पुकारा था—माशा!

रोमास बोला:

"तुम हंस क्यों रहे हो?"

"यों ही।"

"तुम्हारा खयाल है कि मैं उससे उम्र में बहुत ज़्यादा हूँ?"

"नहीं! नहीं!"

"वह कह रही थी कि तुम उससे प्रेम करते थे।"

"था मेरा ऐसा ही खयाल।"

"लेकिन अब? अब खतम हो गयी वह भावना?"

"हाँ। ऐसा ही मालूम होता है।"

वह चुपचाप बैठ गया और दाढ़ी से हाथ हटा लिया।

"तुम्हारी उम्र में इस तरह का भ्रम अक्सर हो जाया करता है। लेकिन मेरी उम्र के आदमी के लिए यह भ्रम या कल्पना मात्र नहीं है। वह ऐसी भावना है जो दिल को अपने फंदे में कस कर जकड़ लेती है—बिल्कुल बेबस।"

उसके चेहरे पर एक व्यंगपूर्ण मुस्कान फैल गयी और अच्छे दान्त झलक उठे। बोला:

"एक्टियम की लड़ाई में एंटनी आक्टेवियन से हार गया। कारण क्लियोपैट्रा जब डर कर चली गयी तो उसने भी अपने जहाज़ी बेड़े को और सेनानायक के अपने कर्तव्य को त्याग दिया

और अपना जहाज़ क्लियोपैट्रा के जहाज़ के पीछे मोड़ दिया। इसी से समझ सकते हो कि आदमी की क्या हालत हो जाती है इस चीज़ में!"

वह उठ खड़ा हुआ और सीने को सीधा करके बोला, मानो अपने आप से झगड़ रहा हो:

"चाहे जो हो—मैं कर रहा हूँ शादी!"

"कब?"

"इसी पतझड़ में। जब सेब की फ़सल ख़तम हो जायगी।"

वह बाहर चला गया। दरवाज़ा पार करते वक़्त वह जरूरत से ज्यादा झुका हुआ था। मैं खाट पर पड़ रहा और सोचने लगा कि पतझड़ आने पर अपने को भी चल देना चाहिये यहाँ से। एंटनी वाली बात क्यों कही थी उसने? मुझे उच्छी नहीं लगी थी वह।

सेबों का पकना शुरू हो गया था। ख़ूब फ़सल आयी थी इस बार। फलों से लदी डालियाँ ज़मीन को चूम रही थीं। बाग़ों में भीनी सुगंध फैल रही थी। उनमें बच्चे किलकारी मार कर खेल रहे थे। वे डाल से चूए लाल पीले या कीड़ों के खाये फलों को चुन रहे थे।

अगस्त महीने का आरम्भ था। रोमास हाल ही में कज़ान से एक नाव माल लाद कर लौटा था। एक और नाव में ख़ाली टोकरे थे। सवेरे के आठ बजे थे। छुट्टी का दिन नहीं था। खोखोल ने स्नान किया और कपड़े बदल कर चाय पर बैठा। उत्फुल्ल होकर वह कह रहा था:

"रात के वक़्त नदी में बड़ा आनन्द आता है...।"

यकायक उसकी नाक में कोई महंक आयी और घबरा कर बोला:

"देखो तो! कहीं धुएँ की गन्ध तो नहीं आ रही है।"

और उसी वक़्त आँगन में अक्सीन्या ज़ोर से चिल्लायी:

"आग!"

हम लोग बाहर भागे। तरकारी की क्यारियों के सामने वाले ओसारे में आग लगी थी। इसी ओसारे में मिट्टी-तेल, अलकतरे और दूसरे तेलों का भण्डार था। एक क्षण हम लोग स्तम्भित और अवाक् होकर खड़े रहे। तेज़ धूप में आग की पीली लपटें रंग-रहित होकर बड़े इतमीनान के साथ छप्पर को छुने के लिए दीवार के ऊपर चढ़ी जा रही थीं। अक्सीन्या एक बाल्टी पानी ले आयी। खोखोल ने पानी आग की कोंपलों पर उण्डेल दिया और बाल्टी फेंक कर बोला:

"बेकार है! बिल्कुल बेकार! मक्सिमिच, जल्दी से पीपों को बाहर करो। और अक्सीन्या! तुम दौड़ कर जाओ दूकान में!"

मैंने अलकतरे का एक पीपा बाहर किया और आँगन में लुढ़काते हुए उसे गली में ले आया। इसके बाद दौड़ा मैं मिट्टी-तेल का पीपा निकालने पर उसे लुढ़काने लगा तो देखा कि मुँह की ठेपी ग़ायब है और तेल गिर कर फ़र्श पर फैल रहा है। मैं लगा ठेपी खोजने। तब तक आग अपना काम कर रही थी। काठ के तख़्तों की बनी दीवार की सूराखों में मानो उसकी उँगलियाँ रास्ता ढूढ़ रही थीं। छप्पर चरमराने लगा और ऐसी आवाज़ आयी मानो कोई हंस रहा हो मेरे ऊपर। पीपा आधा ख़ाली हो चुका था। उसे बाहर

निकाला। तब तक औरतों और बच्चों की भीड़ गाँव के हर हिस्से से भागती-दौड़ती और चीखती-चिल्लाती चली आ रही थी। खोखोल और अक्सीन्या दूकान के सामानों को निकाल कर सूखे नाले में जमा कर रहे थे। गली के बीचों-बीच, सिरे से पाँव तक काली पोशाक पहने, एक बुड्ढी श्वेत औरत खड़ी थी। वह मुक्का दिखा कर ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रही थी:

"हरामज़ादो!.."

मैं फिर ओसारे में घुसा। उसके अन्दर घना धुआँ फैल चुका था और बीच में कोई चीज़ बड़े ज़ोर से कड़क रही थी। छप्पड़ से साँपों के फन की तरह आग की ज्वालाएं लटक रही थीं। दीवारें जल कर अंगार बन चुकी थीं। धुएं से दम घुटा जा रहा था और हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था। किसी तरह टटोल कर एक और पीपा मैंने लुढ़काया पर वह दरवाज़े में आकर अटक गया। छप्पर से मेरे ऊपर अंगार बरसने लगा। मेरा चेहरा और हाथ झुलस गये। मैं चिल्लाया: आ दौड़ो! खोखोल ने दौड़ कर मुझे आंगन में निकाला। वह बोला:

"भागो! पीपा फटेगा!!"

वह खुद भाग कर घर में घुस गया। मैं भी उसके पीछे दौड़ा और भागा कोठे पर कि किसी तरह अपनी किताबों को जलने से बचा लूँ। किताबें खिड़की से बाहर फेंकने के बाद हैटों के एक बक्स पर मेरी नज़र पड़ी। उसे भी मैंने खिड़की की राह बाहर फेंक देना चाहा, पर खिड़की का मुँह छोटा था। मैं एक भारी वज़न लेकर खिड़की को तोड़ने लगा। इतने में कहीं ज़ोर का धड़ाका हुआ और

कोई चीज़ छपाक से कोठरी की छत के ऊपर गिरी। मिट्टी-तेल का पीपा फट गया था जिससे हमारी कोठरी के छप्पड़ में भी आग लग गयी। ऊपर कोई चीज़ ज़ोरों से कड़कड़ाने लगी। छत से आग की लाल धार गिर रही थी जिसने खिड़की को चादर की तरह ढक लिया। गर्मी असह्य हो गयी। मैं सीढ़ियों की ओर दौड़ा, पर धुएँ के घने बादलों ने मेरा रास्ता रोक लिया। आग की ज्वाला साँप की तरह फुँकारती हुई सीढ़ियों पर चढ़ी आ रही थी। नीचे के दरवाज़े पर ज़ोरों की कड़कड़ाहट हुई जैसे लकड़ी में किसी ने लोहे के दान्त घुसा दिये हों। मेरी सोचने की शक्ति जाती रही। धुएँ के कारण कुछ सूझ नहीं रहा था। दम घुट रहा था और मैं निश्चल न जाने कितने क्षणों तक निश्चेष्ट खड़ा था—हर क्षण युगों के समान। किसी का नीबू जैसा पीला, लाल दाढ़ी युक्त चेहरा सीढ़ियों वाली खिड़की पर दिखायी पड़ा—विस्फारित नेत्र, बिल्कुल विक्षिप्त जैसा—और फिर लुप्त हो गया। क्षण भर बाद आग की रक्तवर्ण लपटें छप्पड़ तोड़ कर कमरे में आने लगीं।

मुझे इतना ही होश है कि मेरे बाल छनछना रहे थे और कानों में केवल एक आवाज़ आ रही थी—बालों के छनछनाने की। मन ने धचका देकर कहा: आज यही अन्त है तुम्हारा! पाँव मन-मन भर के हो गये थे, आँखें धुएँ से बुरी तरह जल रही थीं, यद्यपि उन्हें हथेलियों से ढाँप रखा था मैंने।

लेकिन मनुष्य में आत्मरक्षा की प्रवृत्ति बड़ी प्रबल होती है। वह आदमी को वक़्त पर सूझ देती है। मैंने अपनी खाट से गद्दे, तकिये—जो भी मुलायम चीज़ हाथ में आयी—उठा लिये। इनमें

नमदे का एक बड़ा सा ढेर भी था। साथ ही रोमास का भेड़ों की खाल वाला कोट मैंने सिर और कन्धों पर डाल लिया—और कूद पड़ा खिड़की से बाहर।

आँखें खुली तो मैंने अपने को सूखे नाले के किनारे पड़ा पाया। रोमास मेरी बग़ल में ज़मीन पर बैठा चिल्ला रहा था:

"कैसी तबियत है तुम्हारी?"

मैं उठ खड़ा हुआ और चौंधिया कर अपने घर को देखने लगा। आग अंश-अंश कर उसे निगलती जा रही थी। चारों ओर आग की रक्तवर्ण चादरें टंगी हुई थीं मानो झण्डे और तोरण सजाये गये हों। आग की लाल जीभ मकान की चारों ओर काली धरती को चाट रही थी। खिड़कियों से घना धुआँ निकल रहा था, जैसे अन्दर कहीं धौंकनी चल रही हो। छप्पड़ के ऊपर पीले फूल हवा में हिल रहे थे।

खोखोल फिर चिल्लाया:

"कैसी तबियत है तुम्हारी?" उसका चेहरा कालिख से काला हो रहा था। उसके ऊपर पसीना चूने से ऐसा ज्ञात होता था कि गाल गदले आँसुओं से तर हैं। आँखें उद्विग्नता से बोझिल हो रही थीं। गीली दाढ़ी में नमदे के टुकड़े उलझे हुए थे। हठात् मेरे हृदय में आनन्दपूर्ण आवेश का एक सोता फूट पड़ा। सम्पूर्ण हृदय को भावों की निर्झरिणी ने प्लावित कर दिया। उसी वक़्त बायें पैर में अचानक ज़ोरों की जलन और दर्द मालूम हुआ। मैं ज़मीन पर लेट गया और खोखोल से कहा:

"मेरा पाँव मुड़क गया है।"

उसने मेरी जाँघ को टटोलने के बाद ज़ोर का झटका दिया। दर्द से पूरा शरीर सिहर उठा, पर दूसरे ही क्षण में फिर काम में जुट गया। पाँव में अभी भी थोड़ी सी भचक थी, पर हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो रहा था। और दो-चार मिनट के बाद घर के बचे-खुचे सामानों को लाकर हम लोग गुस्लखाने में जमा करने लगे। रोमास बड़े उल्लास में था। दान्तों में पाइप दाबे, वह कहने लगा:

"जिस वक़्त किरासिन का पीपा और आग अचानक छत पर फैल गया मुझे पक्का यक़ीन हो गया की तुम बच नहीं सकोगे। घड़ाके से आग का स्तम्भ आकाश तक चला गया और छप्पड़ के ऊपर एक विशाल छत्रक वन गया। बात की बात में सारा घर जलने लगा। मैंने सोच लिया कि अव अपने मक्सिमिच से फिर भेंट न होगी।"

वह फिर सदा की तरह शान्त और सुस्थिर हो गया था और बचे-खुचे सामान को तरतीब से रख रहा था। सामान को रख कर वह अक्सीन्या से, जिसका चेहरा भी उसी की तरह कालिख से काला और केश अस्तव्यस्त हो रहे थे, बोला:

"तुम यहीं रह कर इन चीज़ों की निगरानी करना। हम लोग आग बुझाने जा रहे हैं।"

नाले के ऊपर हवा में काग़ज़ के जले टुकड़े तैर रहे थे। उन्हें देख कर रोमास वोला:

"देखो क्या हाल हो गया किताबों का? कितनी प्यारी थीं वे मुझे!"

गाँव के चार और मकानों में आग लग चुकी थी। हवा नहीं थी और आग, इतमीनान के साथ, दाहिने और बायें, रास्ते की सभी चीज़ों को स्वाहा करती फैल रही थी। जैसे लता फैलती है—कोमल तन्तुओं के सहारे—वैसे ही ज्वालाएँ छप्परों और टट्टरों की दीवारों के ऊपर बल खाती हुई चढ़ी जा रही थीं। सूखे फूस पर मानो किसी ने आग का कन्घा फेर दिया। टट्टरों के ऊपर आग की पतली टेढ़ी उंगलियां यों दौड़ रही थीं जैसे गूस्ली के तारों पर। धुएँ से भरी हवा में आग का दुष्ट धू-धू शब्द प्रतिध्वनित हो रहा था। जलती लकड़ियों की धीमी कड़कड़ाहट गूँज रही थी। धुएँ के बादलों से फूही की तरह सुनहली चिनगारियां गली और आंगनों में बरस रही थीं। लोग, बदहवास, इधर से उधर भाग रहे थे—सभी को अपना घर और अपना ही सामान बचाने की चिन्ता सवार थी। सैकड़ों कंठों से एक ही स्वर फूट रहा था:

"पा-नी!"

पर पानी कहां था पास में? अलबत्ता कगार के नीचे वोलगा में अथाह जल भरा हुआ था। रोमास ने किसी की आस्तीन और किसी का कालर पकड़ा और इस तरह गाँव वालों को एक जगह इकट्ठा किया। उन्हें दो दलों में बांट कर टटरों और फूस के झोंपड़ों को तोड़ने के लिये भेजा गया ताकि दोनों ओर से आग के बढ़ने का रास्ता रोक दिया जा सके। बिना कुछ कहे, लोग उसके आदेश का पालन करने लगे। इस तरह अग्नि के विरुद्ध योजनाबद्ध संघर्ष आरम्भ हो गया। पर वह थी कि मानो गली के एक-एक मकान को स्वाहा करने पर तुल चुकी हो। लोग

भी जी-जान से जुटने को तैयार नहीं थे। उनमें आत्मविश्वास का सर्वथा अभाव था।

आन्तरिक उल्लास के कारण मुझमें न जाने कहाँ से अतुल शक्ति आ गयी थी। गली के छोर पर कुछ लोग अलग खड़े थे। ये गांव के धनिक थे। कुज़मिन और मुखिया भी वहां थे। वे वहीं से चिल्ला रहे थे, हाथ से इशारे कर रहे थे और डण्डे भांज रहे थे। लेकिन तमाशाई बने हुए। यह किसी से नहीं हो रहा था कि आग को क़ाबू में लाने में मदद करे। किसान लोग अपने-अपने खेत से घोड़ों पर भागते चले आ रहे थे। तेज़ी से घोड़े दौड़ाने के कारण उनकी केहुनियां कान से सटी जा रही थीं। औरतें छाती पीट कर 'हाय दैया', 'हाय बप्पा' कर रही थीं। छोटे बच्चे इधर से उधर दौड़ रहे थे।

एक और मकान के गाय बांधने के ओसारे में आग लग गयी। उसकी दीवारें टट्टर की थीं। आग के चमकदार फीतों ने ओसारे को बांध लिया। अगर उसे फ़ौरन नहीं तोड़ा गया तो निश्चित था कि आग मकान के मुख्य भागों को भी घर लेती। लोग कुल्हाड़े से ओसारे के खम्भों को काटने लगे, पर चिनगारियां और अंगारे उनकी देह पर झड़ कर गिरने लगीं। वे बदन सहलाते हुए भागे।

खोखोल चिल्लाया:

"डरना नहीं जवानों! कायर बनने से काम नहीं चलेगा!"

लेकिन उसकी बात का कोई असर नहीं हुआ। किसी का हैट खींच कर उसे मेरे सिर पर बैठाते हुए वह बोला:

"तुम उस छोर को देखो! मैं इधर की सम्भाल करता हूँ!"

मैंने एक के बाद दूसरा खम्भा काट गिराया। दीवार हिल उठी। ऊपर चढ़ने के लिए मैंने छप्पड़ पर हाथ रखा। खोखोल नीचे से मेरे पाँव खींचने लगा। इसी बीच पूरी दीवार बैठ गयी—धम! मैं उसी के नीचे आ रहा। गाँव वालों ने जल्दी से खींच कर दीवार घसीट कर गली में ले आये।

रोमास ने पूछा:

"जल गये न?"

मेरे प्रति उसके इस उत्कण्ठापूर्ण स्नेह ने मुझे अभिभूत कर लिया। मेरे अन्दर नयी शक्ति, नयी स्फूर्ती आ गयी। मेरे मन में एक ही अभिलाषा रह गयी—यह आदमी, जिसने मेरे जीवन को ऐसा महत्वपूर्ण मोड़ प्रदान किया था, मेरे काम की सराहना करे। इसी प्रेरणा से मैं पागलों की तरह फिर जुट गया काम में। धुएँ में हमारी किताबों के पनने अभी भी कबूतरों की तरह उड़ रहे थे।

दाहिनी ओर तो आग रोक ली गयी। पर बायीं तरफ़ लपटों का निर्मम बढ़ाव जारी था। दस मकान जल चुके थे। रोमास ने दाहिनी ओर एहतियात के लिए थोड़े से लोगों को तैनात कर दिया ताकि अग्नि रूपी सर्प फिर इधर अपने फन न फैलाने पावे। बाक़ी को लेकर वह खतरे के प्रधान स्थल की ओर चला। धनी किसानों की जमात के पास से गुज़रते समय मैंने सुना उनमें से कोई आदमी दुष्टतापूर्ण स्वर में कह रहा था:

"आग जानबूझकर लगायी है इन लोगों ने!"

और कुज़मिन बोला:

"इनके गुस्लख़ाने की चल कर तलाशी लेनी चाहिये!"

उनके ये शब्द मेरे कलेजे में शूल की तरह बिन्ध गये।

उत्तेजना में — ख़ास कर उल्लासपूर्ण उत्तेजना में — आदमी में नयी ताक़त आ जाती है। मेरी भी यही अवस्था थी। मैं अथक परिश्रम करता जा रहा था — इसके बाद पता नहीं कब और कैसे शरीर ने जवाब दे दिया। होश आने पर मैंने देखा किसी गरम चीज़ पर पीठ टिकाये मैं ज़मीन पर बैठा हुआ था और रोमास बाल्टी से मेरे ऊपर पानी उण्डेल रहा था। किसानों की एक भीड़ हमारी चारों ओर खड़ी थी। वे प्रशंसासूचक स्वर में कह रहे थे:

"लड़का है ताक़तवर!"

"आड़े वक़्त में वह पीछे हटने वाला नहीं है।"

मैं रोमास की टांगों में माथा सटा कर फफक पड़ा। वह मेरे भीगे बालों पर हाथ फेरता हुआ बोला:

"अब आराम करो! बहुत ज़्यादा मेहनत की है तुमने।"

कुकुश्किन और बरिनोव पकड़ कर मुझे सूखे नाले की ओर ले गये। दोनों सिर से पाँव तक कालिख से सने हुए थे, जैसे इंजिनघर का मिस्त्री। वे मुझे दिलासा देने लगे:

"अब सब ठीक है, भैया! आग बुझ गयी।"

"तुम डर गये?"

मैं वहीं पड़ा अपनी तबीयत को सम्भालने की कोशिश कर रहा था। इतने में क़रीब दस धनी किसान नाले से हमारे गुस्लखाने की तरफ़ आते दिखायी पड़े। आगे-आगे मुखिया था।

उसके पीछे दो सोत्स्की* दोनों ओर से रोमास को पकड़े चले आ रहे थे। उसका सिर नंगा था। भीगी क़मीज़ की एक आस्तीन किसी ने फाड़ डाली थी। दान्तों में पाइप था; त्योरियां चढ़ी हुईं। भूतपूर्व फ़ौजी कोस्तिन डण्डा भांजता हुआ पागलों की तरह चिल्ला रहा था:

"डाल दो आग में इसको भी! नास्तिक कहीं का!"

किसी ने कहा:

"ग़ुस्लख़ाना खोलो!"

रोमास ने गरज कर जवाब दिया:

"ताला तोड़ कर देख लो! कुंजी खो गयी है उसकी।"

मैं उछल कर उठा अपनी जगह से और एक डण्डा लेकर रोमास की बग़ल में जा खड़ा हुआ। दोनों सोत्स्की पीछे हट गये। मुखिया बड़े ज़ोर से चिल्लाया:

"खुदा के बन्दो! ताले में मत हाथ लगाना! ऐसा करना ग़ैरक़ानूनी होगा।"

उसका स्वर भयकम्पित था।

कुज़मिन ने मेरी ओर इशारा करके कहा:

"यह दूसरा साथी है इसका...। कौन है यह आदमी? कहाँ से आया है?"

रोमास मुझसे बोला:

"उत्तेजना में मत आना तुम, मक्सिमिच! इन लोगों का

---

* सोत्स्की — निर्वाचित ग्राम-पुलिस के सिपाही।

खयाल है कि मैंने अपना सामान गुस्लख़ाने में छिपाने के वाद खुद ही दूकान में आग लगायी है।"

"तुम्हीं दोनों ने यह काम किया है!"

"तोड़ दो ताला!"

"खुदा के बन्दों...।"

"हम लोग जवाबदेही ले लेंगे, तुम्हें बोलने की ज़रूरत नहीं!"

"हाँ, हम लोग जवाबदेही ले लेंगे।"

रोमास ने धीरे से मेरे कान में कहा:

"मेरी पीठ से पीठ सटा कर खड़ा रहना ताकि पीछे से वार न करने पाये कोई।"

उन्होंने ताला तोड़ डाला। कई आदमी एक साथ गुस्लख़ाने में घुसे और एक ही क्षण में बाहर निकल आये। इस बीच अपने हाथ का डण्डा मैंने रोमास को थमा दिया था और खुद दूसरा ले लिया था।

"अन्दर कुछ नहीं है।"

"कुछ नहीं?"

"धूर्त हैं, साले!"

किसी ने दबी आवाज़ में कहा:

"हमीं लोगों की ग़लती थी...।"

पर एक साथ कई आदमी गरज उठे, मानो नशे में हों:

"क्या कहते हो तुम—ग़लती थी?"

"डाल दो आग में दोनों को!"

"उत्पाती कहीं के!"

"आये थे सहयोग-समिति बनाने!"

"अरे चोट्टे हैं ये सब—पूरी की पूरी जमात!"

कोलाहल के बीच रोमास कड़क कर बोला:

"चुप! तुम लोगों ने अपनी आँख से देख लिया। ग़ुस्लख़ाने में कुछ नहीं है। इससे ज़्यादा क्या प्रमाण चाहिये? हमारा सारा माल-असबाब जल गया। जो बचा है वह तुम्हारे सामने है। अपना ही माल भला हम क्यों जलायेंगे—उससे लाभ?"

"बीमे का रुपया!"

और फिर लगभग दस आदमी एक साथ चिल्लाने लगे:

"देख क्या रहे हो लोगो?"

"बहुत दिन बर्दाश्त कर लिया!"

मेरे पाँव थर-थर काँपने लगे। एक क्षण के लिये आँखों के आगे अंधेरा छा गया। लाल कुहासे से घिरी बर्बर सूरतें हमारे सामने थीं—मुँह की जगह लोममण्डित सुराख भेड़ियों की तरह गुर्रा रहे थे। मेरा गुस्सा बेक़ाबू होना चाहता था—जी में आ रहा था कि चला दूँ लाठी। वे हमें देख कर जंगलियों की तरह नाच रहे हैं। किसी के मुँह से नयी आवाज़ निकली:

"देख रहे हो न? दोनों लाठी लेकर आये हैं।"

"लाठी!"

खोखोल ने मुझसे कहा:

"वे मेरी दाढ़ी का एक-एक बाल उखाड़ डालेंगे। तुम्हारी भी यही दुर्गति होगी। मुझे अफ़सोस है। पर बेक़ाबू मत होना और माथा ठंडा रखना।" उसके स्वर से स्पष्ट था कि वह मुस्करा रहा है।

भीड़ में कोई चिल्लाया:

"छोकड़ा कुल्हाड़ा लिये हुए है।"

सचमुच, मेरी कमर में बढ़इयों वाला कुल्हाड़ा खोंसा हुआ था। मुझे खयाल नहीं रहा था उसका।

रोमास ने चुपके से मेरे कान में कहा:

"हिम्मत छूट रही है इन सबों की। फिर भी अगर मार-पीट शुरू हो तो एक बात याद रखना — कुल्हाड़े का इस्तेमाल नहीं होना चाहिये।"

एक किसान जिसे मैं नहीं पहचानता था — नाटासा, लंगड़ा, अजीब धजा वाला — बन्दरों की तरह नाचते हुए पतली आवाज़ में चिल्लाया:

"दूर हट कर ढेलेबाज़ी करो! मज़ा चखा दो सालों को।"

ईण्ट का एक अद्धा उठा कर उसने ज़ोर से फेंका। ईण्ट मेरे पेट पर आकर बैठी। पर मेरे जवाब दे सकने के पहले ही ऊपर से बाज़ की तरह कुकुश्किन उसपर टूट पड़ा। दोनों, लुण्डमुण्ड, नीचे जा रहे। तब तक दौड़ा हुआ पानकोव भी आ पहुँचा। उसके साथ बरिनोव, लोहार तथा गाँव के दस-बारह अन्य किसान थे। कुज़मिन के पाँव उखड़ गये। वह तपाक से बोला:

"तुम्हारी बुद्धि की तारीफ़ करनी पड़ती है, मिखाइल एंटोनोविच! किसानों का हाल जानते ही हो — आग लगने पर भले-बुरे का ज्ञान नहीं रह जाता।"

रोमास ने मुँह का पाइप जेब में डालते हुए कहा:

"मक्सिमिच! चलो नदी किनारे। चाय पी जाय सराय में।"

हाथ की लाठी टेकता हुआ वह भार से नाले के ऊपर चढ़ने लगा।

कुज़मिन भी पीछे-पीछे चला। वह कुछ और बातचीत छेड़ना चाहता था, पर रोमास ने बिना पीछे मुड़े ही उसे डांटा:

"गधा कहीं का! भाग यहाँ से!"

हमारा घर जल कर, सुनहले अंगारों के विशाल ढेर में परिवर्तित हो चुका था। केवल रसोईघर का चूल्हा बीच में ज्यों का त्यों खड़ा था और उसके बचे हुए धुआँकश से हलके नीले रंग का धुआँ निकल कर गरम हवा में विलीन हो रहा था। कहीं लोहे की खाट के लाल शलाखों जैसे छड़ ऐसे दिखायी पड़ रहे थे जैसे मकड़े की टांगें। फाटक के जले हुए खम्भें काले संतरियों की तरह अंगारों के उस ख़ज़ाने की रक्षा के लिए खड़े थे। एक का सिरा अब भी अंगार की तरह जल रहा था और उसमें अग्नि स्फुलिंग निकल रहे थे। ऐसा मालूम होता था कि संतरी ने फूलदार लाल टोपी धारण कर रखी है।

खोखोल ने सर्द साँस फेंक कर कहा:

"सारी किताबें जल कर खाक हो गयीं! ओफ़!"

छोटे-छोटे बच्चों को मानो नया खेल मिल गया था। हाथ में छड़ियां लिये वे जलते सामान के टुकड़ों को, सूअर के छौनों की तरह हांकते हुए, आंगन से गली में ले जा रहे थे। गली के कीचड़ में जलता अंगार सिसकारी की आवाज़ के साथ बदबूदार श्वेत धुआँ छोड़ कर बुझ जाता। नीली आँखों और पटसन जैसे बालों वाला एक पंचवर्षीय बालक कीचड़ से भरे एक गरम गढ़े में एक टूटी हुई बाल्टी लिये बैठा था और उसे लकड़ी से पीट रहा था। बाल्टी की ढनढनाहट मानो उसके लिए मधुर संगीत थी। जिनके

घर जल कर खाक हो चुके थे वे, मुँह लटकाये, इधर से उधर घूम कर जो कुछ भी बच सका था उसे जमा कर रहे थे। औरतें रो रही और गलियां दे रही थीं और जले सामानों के लिए झगड़ रही थीं। बाग़ों में सेब के वृक्ष निश्चल खड़े थे। कहीं-कहीं हरे पत्ते आँच से झुलस गये थे। झुलसे पत्तों के बीच लाल-लाल फलों की बहुतायत और भी अधिक निखर गयी थी।

हम लोगों ने नदी में जाकर स्नान किया और घाट के किनारे की सराय में चुपचाप चाय पीने लगे।

रोमास ने अन्त में कहा:

"जो भी हो— सेवों के मामले में मोटी तोंद वालों को पराजित होना पड़ा है।"

पानकोव भी आ गया। वह सोच में डूबा हुआ था, अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक सीधा और शांत।

"क्या हाल है?" खोखोल ने उससे पूछा।

उसने कंधे हिलाये मानो कह रहा हो, 'कुछ परवाह नहीं'। फिर बोला:

"मकान बीमा कराया हुआ था।"

इसके बाद सभी मौन हो गये, मानो अजनबी हों। हर आदमी दूसरे को यों देख रहा था गोया तौल रहे हों मन ही मन एक-दूसरे का।

"मिखाइल एंटोनोविच! अब क्या करोगे तुम?"

"मैंने कुछ तै नहीं किया है।"

"यह जगह तो छोड़नी ही पड़ेगी तुम्हें।"

"देखा जायगा।"

"मैंने एक उपाय सोचा है," पानकोव बोला, "चलो मेरे साथ बाहर, कुछ बातें करेंगे तुमसे।"

दोनों चले गये। दरवाज़े पर पानकोव रुका और मेरी ओर मुड़ कर बोला:

"हो कम उम्र, पर जीवट की तारीफ़ करूँगा! तुम यहीं ठहरना। तुम्हें छूने की किसी को मजाल न होगी।"

मैं भी बाहर निकल गया और नदी-तीर झाड़ियों की छाँह में जाकर लेट रहा।

सूर्य अस्ताचलगामी हो रहा था, फिर भी तेज़ गर्मी थी। इस गाँव में आने के बाद से अपने जीवन का सारा नक़शा आँखों के सामने फिर गया मानो नदी के चौड़े पट पर तैल-चित्र की तरह अंकित हो। कलेजा डूबा जा रहा था मेरा। पर शीघ्र ही थकान से अभिभूत होकर मैं वहीं गाढ़ निद्रा में सो गया।

नींद में ही मानो किसी ने दूर से पुकारा:

"उठो!" फिर लगा कि कोई झकझोर और घसीट रहा है मुझको। कानों में आवाज़ आयी: "ए। क्या हो गया है तुम्हें — ज़िन्दे तो हो? उठो, चलो यहाँ से!"

नदी के उस पार, घास के विस्तृत मैदान के ऊपर, चन्द्रमा का गोला आकाश में लटक रहा था — रक्तवर्ण और विशाल, गाड़ी के पहिये के बराबर। मेरी बग़ल में वरिनोव घुटनों के बल बैठा हुआ था और मेरे कंधे पकड़ कर झकझोर रहा था:

"उठो! चलो यहाँ से! खोखोल न जाने कब से परेशान होकर तुम्हें खोज रहा है।"

मैं कगार पर चढ़ने लगा। बरिनोव भुनभुनाता हुआ मेरे पीछे आ रहा था। वह कह रहा था:

"तुम भी कैसी नासमझी कर बैठते हो—भला इस तरह सो जाया करते हैं। मान लो कोई कगार पर चढ़ रहा होता और उसके पैर से टकरा कर पत्थर तुम्हारे ऊपर गिर पड़ता। या, कोई जान कर ही एक पत्थर लुढ़का देता तुम्हारे ऊपर? यहाँ के आदमियों को जानते नहीं हो क्या तुम? यहाँ के लोग, भाईजान! बारह बरस बाद भी बैर सधाते हैं।"

झाड़ियों में किसी की चाप सुनायी पड़ी और पत्तियाँ हिलने लगीं।

मिगुन के टनकदार गले की आवाज़ सुनायी दी:

"मिला?"

"हाँ। मिल गया—सही-सलामत," बरिनोव ने पुकार कर जवाब दिया।

थोड़ी देर हम लोग बिना बोले चलते रहे। इसके बाद बरिनोव ठण्ढी साँस छोड़ कर बोला:

"आज फिर चोरी से मछली पकड़ने जाएगा। मिगुन बेचारे को खाना जुटना कठिन हो रहा है।"

वापस पहुँचने पर रोमास की डांट सुननी पड़ी। वह बोला:

"इतने लापरवाह हो गये हो तुम? मार खाने पर तुल गये हो क्या?"

बरिनोव के चले जाने के बाद वह उदास होकर धीमे कहने लगा:

"पानकोव कह रहा है कि वह तुम्हें अपने यहाँ रख लेगा: वह अपनी दूकान खोलना चाहता है। पर मैं तुम्हें यहाँ रहने की सलाह नहीं दूँगा। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैंने अपना बचा-खुचा

सामान उसके हाथ बेच दिया है और अब व्यातका चला जाऊँगा। वहाँ ज्यों ही रहने का इंतज़ाम हो गया तुम्हें ख़बर दूँगा, तुम भी आ जाना वहीं। तै रहा न?"

"मैं सोचूँगा इसके बारे में।"

"ठीक।"

वह फ़र्श पर लेट गया और दो-तीन बार करवटें लेने के बाद चुपचाप पड़ गया। मैं खिड़की पर बैठ कर वोल्गा को देख रहा था। पानी में चाँदनी का प्रतिबिम्ब सुबह की लपटों की याद दिला रहा था। उस पार कोई अग्नि-बोट जा रहा था। पानी में उसके भारी पहियों का छप-छप शब्द सुनायी पड़ रहा था। मस्तूल में टंगी तीन लालटेनें अंधेरे में, सितारों से टकराती हुई, तैरती चली जा रही थीं। कभी-कभी तारे उनकी आड़ में अलोप हो जाते थे।

"क्यों, क्या सोच रहे हो? गाँव वालों की छाती जल रही है?" रोमास उनींदे स्वर में बोला, "पर ऐसा नहीं करते। ये लोग वास्तव में बुरे नहीं, केवल बुद्धि का अभाव है। द्वेष बुद्धिहीनता का ही दूसरा रूप है।"

पर इन शब्दों से मुझे दिलासा कहाँ? मेरा कलेजा सचमुच कबाब हो रहा था गाँव वालों की हरकत पर। उनके बर्बर चेहरे मेरी आँखों के सामने नाच रहे थे। वह पाशविक चिल्लाहट कानों में गूँज रही थी:

"दूर हट कर ढेलेबाज़ी करो...।"

बहुत सी चीज़ें ऐसी हैं जिन्हें याद से निकाल देना ही श्रेयस्कर होता है। पर ऐसा करना मैंने अभी नहीं सीखा था। इसमें

सन्देह नहीं कि व्यक्तिगत रूप से इन आदमियों में विशेष द्वेष और मलिनता नहीं थी। कुछ में तो बिल्कुल नहीं। यह मैं स्वयं अनुभव कर चुका था। मूलत: उन्हें नेक जन्तु कहना ही ठीक होगा। वक़्त पड़ने पर उनके चेहरे बालकों जैसी निर्दोष मुस्कान से खिल जाते थे। ज्ञान और आनन्द की खोज की अथवा मानव-वीरता और सहृदयता की कहानियाँ सुन कर वे छोटे बच्चों की भाँति ही आनन्दविभोर हो जाते थे। सुखमय जीवन — जिसमें मनुष्य को इच्छानुसार जीवन यापन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी — की इच्छा उनके अन्दर बलवती थी। उनका अद्‌भुत हृदय उन सभी सपनों को संजो कर रखता था जो ऐसे जीवन की ओर उठने को उन्हें प्रेरित करते थे।

लेकिन यही लोग जब मजमे में एकत्र होते थे — गाँव की पंचायत में नदी-तीर पर सराय में — तो उनके सभी सद्‌गुण न जाने कहाँ हवा हो जाते थे। उस वक़्त, पादरियों की भांति, वे झूठ और कपट की रामनामी ओढ़ लेते थे। उस वक़्त वे गाँव के सामर्थ्यवान व्यक्तियों के प्रति कुत्ते की तरह दुम हिलाना और उनके इशारे पर भौंकना आरम्भ कर देते थे। उस समय उनकी हालत देख हृदय घृणा से भर जाता था। इसके अलावा, कभी-कभी उनके ऊपर अचानक हैवानियत सवार हो जाया करती थी। उस वक़्त वे भेड़िये बन जाते थे और बर्बरों की तरह एक-दूसरे को नोचना-काटना और चिल्लाना-गुर्राना शुरू कर देते थे। छोटी-छोटी बातों के लिए वे उस वक़्त सिर फुड़ौवल करने को तैयार हो जाते, और कर ही बैठते सिर-फुड़ौवल। उस वक़्त उनकी हालत ऐसी हो जाती कि कल जिस गिर्जाघर में उन्होंने मेमनों की तरह सिर झुका कर प्रार्थना

की थी उसे भी चकनाचूर कर दे सकते थे। उनके अन्दर कवि थे, एक से एक सुन्दर कथाकार थे। किन्तु उनकी कोई क़द्र न थी इस मण्डली में। ऐसों के ऊपर पूरा गाँव हँसता था — उपेक्षा और तिरस्कार ही उनका पारितोषिक था गाँव में।

ऐसे लोगों के बीच रहना मेरे लिए असम्भव था। रोमास से विदा होते समय मैंने अपनी इन कूट भावनाओं से उसे अवगत करा दिया।

वह भर्त्सना के स्वर में बोला :

"इन निष्कर्षों पर पहुँचने में तुमने जल्दबाज़ी से काम लिया है।"

"हो सकता है — पर मेरा जब यही दृढ़ विश्वास है तो क्या करूँ?"

"ग़लत निष्कर्ष हैं तुम्हारे। बिल्कुल निराधार।"

वह अत्यंत धैर्य के साथ, और विस्तारपूर्वक, मुझे समझाने की कोशिश करने लगा कि मैं ग़लती पर हूँ, कि मेरे निष्कर्ष ग़लत हैं। बोला :

"एक बात याद रखना। किसी की निंदा करना बड़ा ही आसान है। अत: इस मामले में बेसब्री से काम नहीं लेना चाहिये। भावनाओं के बहाव में आँख मून्द कर पड़ जाना अच्छा नहीं। एक बात हमेशा गांठ बांध रखनी चाहिये : कोई चीज़ स्थायी नहीं। समय पाकर सभी चीज़ों में सुधार आता है। सही है कि बहुत धीरे-धीरे होता है ऐसा; लेकिन धीरे-धीरे होने से ही उसमें स्थायित्व आता है। इसलिए सदा आँखों से काम लो। अपने हाथों से जांचो चीज़ों को। डरो मत। लेकिन जल्दबाज़ी में आकर निन्दना मत शुरू कर दो। याद रखो इन बातों को। और बिदा दो, प्यारे दोस्त! फिर मिलेंगे!"

हम पन्द्रह साल के बाद फिर मिले—सेद्लेत्स में। इस बीच "नारोद्नोये प्रावो"* दल का काम करने के कारण वह दस साल और याकूत्स्क के ज़िले में निर्वासन की सज़ा काट चुका था।

वह चला गया क्रास्नोविदोवो से। मेरा कलेजा मुँह को आने लगा। मैं गाँव में दिन भर यों ही चक्कर लगाता रहा। मेरी अवस्था उस पिल्ले जैसी थी जिसका मालिक खो गया है। मैं बरिनोव के गुस्लख़ाने वाली कोठरी में रहने लगा। हम दोनों जने निकल जाते थे देहात में और धनी किसानों के यहाँ मजूरी करके—कहीं दंवरी में, कहीं आलू उखाड़ने में, या कहीं बाग़ों के झाड़-झंखाड़ की सफ़ाई में—अपना जीवन-निर्वाह करते थे।

वर्षा की एक रात को बरिनोव बोला:

"अलेक्सी मक्सिमिच, तुम भी अकेले गाँव-गाँव भटक रहे हो। अगुआ है जिनके कोई अनुगामी नहीं। क्यों न हम लोग कल एक काम करें—निकल चलें यहाँ से समुद्र की ओर। यहाँ क्या धरा है हम जैसों के लिए? यहाँ के लोगों को हम फूटी आँख नहीं सुहाते। और नशे में आकर ये लोग किसी दिन क्या दुर्गति कर डालें हमारी इसका ठिकाना नहीं।"

बरिनोव पहले भी यह प्रस्ताव कर चुका था। उसका भी जी उचाट हो रहा था। उसके हाथ, जो वनमानुष के हाथों जैसे लम्बे

---

* "नारोद्नोये प्रावो" [जनता का शासन]—यह एक प्रजातंत्र बुद्धिजीवियों की ग़ैरक़ानूनी सभा जो १८९३ में पहले के नारोदनिकवादियों के सहयोग से बनायी गयी थी। बाद में ज़ार की सरकार ने १८९४ में उसे तोड़ डाला।

थे, दोनों बग़ल लटक रहे थे और वह हताश दृष्टि से यों चारों तरफ़ देख रहा था जैसे जंगल में मार्ग भूला हुआ आदमी।

वर्षा की बून्दें अनवरत रूप से खिड़की के शीशों पर पटपटा रही थीं। पानी की धार गुस्लख़ाने का एक कोना खिसकते हुए नाले में तेज़ी से बह रही थी। ग्रीष्म ऋतु का आख़िरी तूफ़ान था। बिजली की पीली कौंध आकाश में क्षीण प्रकाश फेंक रही थी। बरिनोव ने शान्त स्वर में फिर पूछा:

"तो रहा तै? कल रवाना हो जायंगे हम लोग?"

और हम लोग रवाना हो गये।

... पतझड़ की काली रात। बजड़े पर बैठे हम लोग वोल्गा की छाती पर चले जा रहे थे। हृदय अनिर्वचनीय आनन्द से भर रहा था। मैं पीछे की गलही पर बैठा था, पतवार के पास। पतवार चलाने वाला माझी वनमानुष जैसा आदमी था, विशाल। उसका मस्तक और भी विशाल था। पतवार घुमाने के लिए जब वह घूमता था डेक पर भारी धमक होने लगती थी। उसके शक्तिशाली गले से गरजपूर्ण आवाज़ निकलती थी:

"ओ-ओ-उ-उ-उ-प!... उ-उ-रौ-ओ!..."

घुप्प अन्धेरे में नदी ऐसी लगती थी मानो कूल-किनारा ही न हो उसका। पानी का रंग काजल की तरह काला था। अपनी काली जीभ से बजड़े के दोनों किनारों को चूमता वह बहता जा रहा था। आकाश पतझड़ के काले बादलों से आच्छन्न था। हर चीज़ घने अन्धेरे के गहवर में समा गयी थी, दोनों किनारे, सम्पूर्ण धरती।

अस्तित्व शेष था केवल धुएँ और पानी का—जो अविरल गति से बहा जा रहा था अनन्त की ओर, जहाँ न सूरज था, न चन्द्रमा, न सितारे—था केवल एक विराट शब्दहीन शून्य।

सामने, नम अन्धेरे में, किसी अदृष्ट अगिनबोट का छप-छप शब्द सुनायी दे रहा था। ऐसा लगता था कि जो प्रबल शक्ति उसे बहाये लिये जा रही है उसके हाथों में बेबस पड़ा हुआ वह छटपटा रहा हो। केवल उसके तीन दिये दृष्टिगोचर हो रहे थे—दो पानी की सतह के पास और तीसरा मस्तूल के ऊपर। बजड़े की गतिशीलता उन्हीं से परिलक्षित हो रही थी। नज़दीक, चार और दिये; सुनहली मछलियों के समान, बादलों के नीचे तैर रहे थे। इनमें एक हमारे अपने बजड़े के मस्तूल में बंधा हुआ दीपक था।

मुझे लग रहा था कि किसी सर्द, तैलसिक्त बुलबुले के अन्दर क़ैद हूँ। बुलबुला ढाल के नीचे धीरे-धीरे फिसल रहा है और मैं भी उसमें मक्खी की तरह बन्द, उसी के साथ फिसल रहा हूँ। ऐसा लगता कि सारी गतियां शनैः-शनैः शिथिल पड़ती जा रही हैं और शीघ्र ही वे पूर्णतः शान्त और निश्चेष्ट हो जायंगी। तब बजड़े का बुदबुद शब्द भी रुक जायगा और ख़तम हो जायगा नदी के गहरे जल के साथ उसके पहियों का उलझना। सारी ध्वनियां वृक्ष के पत्तों की तरह झड़ जायंगी—खड़िया की लिखावट की तरह उनका अस्तित्व मिट जायगा। उस वक़्त मैं मौन और निश्चेष्टता के प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध हो जाऊँगा।

फटा-पुराना भेड़ की ख़ाल का कोट और बालदार टोपी पहने पतवार चलाने वाला यह विशालकाय माझी भी तब निश्चेष्ट हो

जायगा। निश्चेष्ट नीरवता का जादू उसे भी निगल जायगा। उसकी गुर्राहट समाप्त हो जायगी:

"उर्र-उ-उप! उ-उ-उर्र!"

मैंने उससे पूछा:

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"तुम्हें इससे मतलब," उसने रूखी आवाज़ में उत्तर दिया।

वह भालू जैसा लग रहा था। कज़ान से चलते वक़्त, शाम के झुटपुटे में मैंने उसका चेहरा देखा था। वह ऐसा लगता था जैसे बालों का घना गुच्छा हो—नेत्रहीन, दृष्टिहीन। पतवार के पास बैठ कर उसने लकड़ी के लोटे में एक बोतल वोद्का उंडेली और उसे गट-गट पी गया मानो शराब नहीं पानी हो। बोतल ख़ाली करने के बाद उसने एक सेब ख़तम किया। और जब बजड़ा झटके के साथ चल पड़ा तो उसने ज़ोर से पतवार पकड़ कर एक बार सूरज के लाल गोले की ओर देखा और गम्भीर स्वर में कहा:

"भगवान भला करे!"

हमारे बजड़े के साथ तीन और बजड़े थे। चारों बजड़ों को अग्निबोट खींच रहा था। ये बजड़े निज्नी नोवगोरोद से रवाना हुए थे और आस्त्राख़ान जा रहे थे। उनमें माल लाद कर ईरान जा रहा था—लोहे की चादर, चीनी के बोरे, और बड़े-बड़े बन्द सन्दूकों में और कोई माल था। बरिनोव ने सन्दूकों को लात से ठेला, उन्हें सूँघा और थोड़ी देर सोचने के बाद बोला:

"इनमें बन्दूकें हैं। इजेव्स्क कारख़ाने की बनी।"

पतवार वाला उसको एक मुक्का लगा कर बोला:

"तुम्हें मतलब इससे?"

"मैं सोच रहा था..."

"ज़्यादा बोलोगे तो नाक तोड़ दी जायगी तुम्हारी।"

हम लोगों के पास पैसे नहीं थे कि मुसाफ़िर जहाज़ से जा सकते। अतः 'दया करके' हमें इस बजड़े में बैठा लिया गया था। यद्यपि हम लोगों को भी औरों की तरह ड्यूटी देनी पड़ती थी फिर भी बजड़े में सभी लोग हमारे साथ भिखमंगों जैसा व्यवहार करते थे।

बरिनोव बोला:

"फिर भी तुम जनता-जनता की रट लगाये रहते हो। अरे भाई, ज़िन्दगी आसान चीज़ नहीं है। जो जीतता है वह सवारी कसता है। जो हारता है उसे खुद सवारी बननी पड़ती है।"

रात ऐसी अंधेरी थी—घटाटोप—कि दूसरे बजड़ों का केवल सिरा दिखायी दे रहा था। उनके मस्तूलों में टंगी लालटेनें धुएं के बादलों में धीर गति से तैर रही थीं। उन बादलों से तेल की गंध आ रही थी।

पतवार चलाने वाले की चुप्पी मुझे खलने लगी। प्रधान माझी ने मेरी ड्यूटी उसी के पास लगा दी थी। मेरा काम था, वहीं रहना और ज़रूरत होने पर उसकी मदद करना। इस तरह मेरा पाला इस वनमानुष से पड़ा था जो कुछ बोलता ही न था। केवल मोड़ आने पर धीमे से कहता:

"सम्भाल के! ऐ!"

मैं कूद कर पतवार को घुमा देता।

"बस," वह भुनभुना कर कहता।

और मैं फिर जा बैठता डैक पर। जब भी बातचीत छेड़ने की कोशिश करता उसके मुँह से एक ही जवाब मिलता:

"तुम्हें मतलब इससे?"

और मैं धराशायी हो जाता।

कौन से विचारों में इस तरह डूबा हुआ है यह आदमी? हम लोग कामा और वोल्गा का संगम पार कर रहे थे। कामा का पीला जल यहाँ वोल्गा की लौह-वर्ण धारा के साथ मिलता है। अचानक उसने उत्तर की ओर मुँह करके कहा:

"नालायक़ कहीं के!"

"कौन?"

मगर फिर चुप्पी।

दूर, कहीं दूर, रात्रि रूपी महासमुद्र में कुत्तों के भूंकने और चिल्लाने की आवाज़ सुनायी दे रही थी। यह आवाज़ मानो याद दिला रही थी कि जीवन का स्पन्दन जारी है—अतल अथाह अंधकार उसे लील नहीं सका है। पर आवाज़ बहुत दूर थी—मानो किसी और लोक से आ रही हो, और अवांछित।

पतवार वाला फिर अचानक बोला:

"ये कुत्ते भी भला कौन सा काम करते हैं—बस बेकार शोर मचाना यहाँ!"

"यहाँ माने?" मैंने पूछा।

"यहाँ माने सभी जगह। जहाँ मेरा घर है—कुत्ते देखना है तो वहाँ जाकर देखे कोई।"

"कौन सी जगह है वह?"

"वोलोग्दा।"

मौन का बाँध टूट गया। शब्द यों निकलने लगे—भारी और नीरस—जैसे आलू का बोरा फाड़ दिया गया हो और आलू लद-लद नीचे आ रहे हों। उसने पूछा:

"तुम्हारे साथ जो है वह कौन है तुम्हारा? चाचा है? मुझको तो महामूर्ख मालूम हुआ वह। चाचा है तो हमारा—एक नम्बर का धूर्त; पैसे वाला भी है वह। सिम्बिर्स्क में उसका अपना घाट और तट पर सराय है।"

शब्द धीरे-धीरे निकल रहे थे उसके मुँह से, मानो ज़ोर लगाना पड़ रहा हो बोलने में। थोड़ी देर बाद वह चुप हो गया और लगा मस्तूल में लगी लालटेन को एक-टक देखने जो अंधकार के जाले में सुनहरे मकड़े की तरह रेंग रही थी। उसकी आंखें मुझे नहीं दिखायी दे रही थीं। वह फिर बोल उठा:

"सम्भाल के...। अच्छा, तुम्हें पढ़ना आता है? एक बात बता सकते हो—ये क़ानून कौन बनाता है?"

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह बुदबुदाने लगा:

"कोई कुछ बताता है, कोई कुछ। कोई कहता है ज़ार बनाता है क़ानून, कोई कहता है बड़ा पादरी बनाता है और कोई परिषद का नाम लेता है। मुझको ठीक मालूम हो जाय तो मैं जाकर बनाने वाले से भेंट करूँगा और कहूँगा: ऐसा क़ानून लिखिये कि कोई किसी को मार न सके, हाथ तक न उठा सके। क़ानून ऐसा हो जैसे लोहा। जैसे तालाकुंजी जड़ दिया। एकबार जड़ दो ताले में मेरा मन

तो बस छुट्टी हो जाय। तब मैं अपना भागी आप बन सकता हूँ। लेकिन अभी-अभी जो हालत है उसमें मैं भला किस तरह जवाबदेह हो सकता हूँ अपने काम का? नहीं हो सकता।"

वह स्वगत बोल गया ये सारी बातें। शनैः-शनैः उसकी आवाज़ और धीमी होती गयी, और विचार विश्रृंखल। केवल पतवार की मूठ पर लगातार मुट्ठी पटकता जा रहा था वह।

अगिनबोट से भोंपे द्वारा किसी ने चिल्ला कर कुछ कहा। उस पृष्ठभूमि में आदमी की वह धीमी आवाज़ वैसी ही बेतुकी लगी जैसे कुत्तों की चिल्लाहट मालूम हुई थी और जो अब अतल अंधकार में विलीन हो चुकी थी। अगिनबोट की तीन लालटेनों का चिकना पीला प्रतिबिम्ब काले जल में पड़ रहा था। घटाटोप अंधकार को बेध सकने में निष्फल होकर वह नदी में डूब जाता था। ऊपर धुएं जैसे काले बादल मण्डरा रहे थे मानो कोई कीचड़ की नदी हिलोरें ले रही हो। अंधकार रूपी अतल शून्य में हम और भी गहरे डूबते जा रहे थे।

पतवार वाला फिर बुदबुदाया:

"यह क्या गत बना रहे हैं मेरी? मेरा कलेजा जकड़ दिया है...।"

मेरे ऊपर उदासीनता छा गयी। मन के अन्दर उपेक्षा एवं सर्द, निरानन्द भावना समा गयी। नींद ज़ोरों से दबाने लगी मुझे।

मेघाच्छन्न आकाश में, मेघों से उलझती हुई, प्रभात का रोशनी फैलने लगी, किरणहीन प्रभात— निर्जीव और निःशक्त। पानी का रंग जस्ते की तरह श्वेत हो गया। नदी-तट नज़र आने लगा —दोनों ओर पीली झाड़ियों की कतार; चीड़ के लम्बे दरख्त

जिनकी डालियां काली और तने ज़ंग लगे लोहे के रंग के थे; और गाँव के घर। तीर पर एक किसान खड़ा था — प्रस्तर-मूर्ति की तरह। एक बड़ा सा बगुला लम्बे पंखों से हवा को चीरता हुआ ऊपर उड़ गया।

मेरी और पतवार वाले माझी की ड्यूटी ख़तम हो गयी। हमारी जगह दूसरे लोग आ गये। मैं तिरपाल की रावटी में जाकर बेख़बर सो रहा। लेकिन एक झपकी भी न ली होगी — कम से कम मुझे ऐसा ही लगा — कि किसी के ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने और पैरों की भारी आहट के कारण मेरी नींद खुल गयी। मैंने देखा तीन माझी पतवार वाले को केबिन की दीवार के पास घेरे हुए थे और सभी एक साथ ज़ोर-ज़ोर से कुछ कहने की कोशिश कर रहे थे:

"पेत्रूखा! छोड़ो भी! क्या कर रहे हो तुम?"

"प्रभु की इच्छा हुई तो अपने आप ख़तम हो जायगा वह!"

"तुम भी क्या फेर में पड़े हो।"

वह दोनों बाँह छाती पर मोड़े, उँगलियां कंधे की मांसपेशियों में गड़ाये, और एक पाँव डैक पर पड़ी गठरी पर चापे, चुपचाप, खड़ा था। उसकी आँखों में याचना का भाव था। वह बारी-बारी से तीनों साथियों की ओर देख कर भर्राये गले से कह रहा था:

"जाने दो मुझे — पाप के पंक से बचने दो मुझे!"

उसका सिर और पांव नंगे थे। शरीर पर केवल क़मीज़ और पतलून। उसके चौड़े, दृढ़ माथे के ऊपर बिखरे काले केशों का भारी गुच्छा लटक रहा था। उलझे हुए बालों के नीचे से उसकी रक्तिम

जैसी छोटी आँखें झांक रही थीं—दुख से भरी और भीख सी मांगती हुई।

माझियों ने कहा:

"तुम डूब जाओगे!"

"मैं? हरगिज़ नहीं। मैं डूब नहीं सकता,मेरे भाई! चुपचाप चला जाने दो मुझे! अगर नहीं जाऊँगा तो सिम्बिर्स्क पहुँचने पर अवश्य खून हो जायगा उसका मेरे हाथों से...।"

"छोड़ो भी!"

"भैया! मेरी बात को समझो...।"

वह घुटनों के बल बैठ गया और केबिन की दीवार के सहारे दोनों हाथ फैला दिये। अब वह क्रॉस पर चढ़ाये आदमी जैसा लग रहा था। वह फिर आग्रह करने लगा:

"मुझे जाने दो, नहीं तो मैं अवश्य पाप कर बैठूंगा!"

उसके स्वर में विलक्षण गहराई थी; याचना में मर्मबेधी पुकार। उसके फैले हुए हाथ नौका-दण्ड की तरह लम्बे मालूम हो रहे थे। हथेलियाँ, जो सामने की ओर उलटी हुई थीं, काँप रही थीं। दाढ़ी के उलझे बालों से आच्छादित उसका भालू जैसा चेहरा भी हिल रहा था। छुछूंदर जैसी छोटी-छोटी आँखें काली छोटी गेन्दों की भांति गढ़े से बाहर निकल आना चाहती थीं। ऐसा लग रहा था कि कोई अदृश्य हाथ गला टीप कर उसे खतम कर देने की कोशिश कर रहा है।

माझियों ने धीरे से उसका रास्ता छोड़ दिया। वह लड़खड़ा कर खड़ा हो गया और हाथ में अपनी गठरी उठाता हुआ बोला:

"धन्यवाद!"

डेक पार कर वह फुर्ती से पानी में कूद पड़ा। उसके जैसे भारीभरकम शरीर वाले में ऐसा फुर्तीलापन आश्चर्यजनक मालूम हुआ मुझे। मैं भी दौड़ कर नाव के किनारे पहुँच गया। पेत्रूखा पानी से ऊपर आ चुका था। गठरी उसने हैट की तरह सिर पर बाँध ली और पानी काटता हुआ रेतीले किनारे की ओर सीधा बढ़ चला। नदी-तीर की झाड़ियां हवा में यों झूम रही थीं मानो उसके स्वागत को आतुर हों। उनकी पीली पत्तियां झड़ कर पानी में गिर रही थीं।

माझियों ने कहा:

"आखिरकार क़ाबू पा ही लिया उसने अपने ऊपर।"

मैंने पूछा:

"सिर फिर गया है क्या उसका?"

"सिर? बिल्कुल नहीं! वह बिल्कुल होश में है। वह अपनी आत्मा को पाप-पंक में पड़ने से बचा रहा है।"

पेत्रूखा किनारे के छिछले पानी तक पहुँच चुका था। छाती भर पानी में खड़ा होकर उसने अपनी गठरी हिला कर इशारा किया।

माझियों ने चिल्ला कर जवाब दिया:

"अलविदा! सलाम!"

किसी ने कहा:

"पासपोर्ट तो है ही नहीं बेचारे के पास? कैसे क्या करेगा?"

लाल केश, टेढ़ी टाँगों वाला एक माझी मुझे उसका क़िस्सा मज़े से बताने लगा। बोला:

"सिम्बिर्स्क में उसका एक चाचा रहता है जिसने उसकी सारी जायदाद हड़प ली है। इसलिए उसने उसे मार डालने का निश्चय किया था। इसी पाप में पड़ने से बचने के लिए वह भाग खड़ा हुआ है।

आदमी नहीं पूरा वनमानुष है वह—पर कलेजा उसका मोम से भी मुलायम है। बड़ा ही नेकदिल।"

इस बीच यह नेकदिल किनारे की रेती को पार कर रहा था, और थोड़ी ही देर में झाड़ियों की झुरमुट में ओझल हो गया।

हमारे बजड़े के माझी बड़े खुशमिज़ाज थे। मेरी ही तरह वे भी वोल्गा तट के निवासी थे। अत: शाम होते-होते मैं सब के साथ घुलमिल गया। पर दूसरे दिन सोकर उठा तो देखता हूँ कि अचानक सभी का रुख बदला हुआ है। वे मुझको रूखे और सन्दिग्ध दृष्टि से देख रहे थे। मैं फ़ौरन समझ गया कि यह बरिनोव की कारस्तानी है। वह मुँह बन्द नहीं रख सका होगा और अपनी अनूठी कल्पना द्वारा उन्हें कोई न कोई कहानी गढ़ कर सुना डाली होगी। मैंने पूछा:

"बक-बक करने से नहीं बाज़ आये न तुम?"

वह लगा सिर खुजलाने और झेंपी हुई औरतों जैसी आंखों से मुस्कराता हुआ बोला:

"नहीं—यों ही ज़रा...।"

"मैंने तो तुमसे कह दिया था कि मुँह बन्द रखना बजड़े पर।"

"मैं तो चुप था ही। बात यह हुई कि सबों ने कहा कि ताश खेलना चाहिए। पर ताश मिला नहीं। वह पतवार वाले के सामान में चला गया। इसलिए सभी यों ही बैठे थे और जी ऊब गया। मैंने भी थोड़ी बातचीत शुरू कर दी। उसके बाद वही बात निकल गयी मेरे मुंह से—बड़ी बढ़िया कहानी बन गयी थी वह...।"

थोड़ी जिरह करने पर पता चला कि वक़्त काटने के लिए

उसने अग्निकाण्ड की घटना को लेकर एक पूरी सनसनीखेज़ कहानी गढ़ डाली थी जिसमें खोखोल और मैं विकिंगों* की तरह हाथ में कुल्हाड़ा लिये अकेले-दम गाँव वालों की पूरी फ़ौज से लोहा लेते दिखाये गये थे।

उसे डांटने या बिगड़ने से कोई लाभ न था। सत्य का अस्तित्व उसके लिए वास्तविकता की दुनिया से अलग ही था। मुझे याद है जिन दिनों काम की तलाश में हम लोग देहातों का चक्कर लगाया करते थे एक रोज़ थोड़ा सुस्ताने के लिए एक नाले के किनारे बैठ गये थे हम लोग। बरिनोव ने उस वक़्त स्नेह के स्वर में और बड़े दृढ़ विश्वास के साथ मुझसे कहा था:

"सत्य? सत्य वही है जिसे आदमी अपना मन बहलाने के लिए स्वीकार कर ले। सामने देखो: नाले के पार भेड़ों का एक गल्ला चर रहा है। साथ में चरवाहा है और एक कुत्ता। तुम्हीं कहो, इस दृश्य में कौन सी चीज़ है जिससे हमारा-तुम्हारा मन बहल सकता है। कुछ भी नहीं। यही मेरा कहना है, भाईजान। तुम हो कि कहोगे कि चीज़ जैसी है वैसी ही देखो। तब दिखेगा क्या? बुरे आदमी? हाँ, अवश्य; क्योंकि उनकी भरमार है। पर भले आदमी? वे कहाँ हैं? वे तो गढ़े जाने का इंतज़ार कर रहे हैं। इसीलिए कहता हूँ...।"

सिम्बिर्स्क पहुँचने पर माझियों ने बड़ी रुखाई के साथ हम लोगों को बजड़े से उतर जाने को कहा। वे बोले:

---

* विकिंग—स्कैंडिनेव्हिया के उन लूट-मार करने वालों के सरदार जो मध्यम युग में युरोप को लूटा करते थे।

"तुम्हारे जैसे आदमियों की यहाँ ज़रूरत नहीं है।"

नाव में चढ़ा कर उन्होंने हमें घाट पर पहुंचा दिया। कुछ देर वहीं बैठ कर हम लोगों ने कपड़े सुखाये। दोनों की जेब में मिला कर कुल सैंतीस कोपेक थे।

हम लोगों ने सराय में जाकर चाय पी। मैंने पूछा:

"अब? अब क्या होगा?"

"होगा क्या? जैसे चल रहे थे, चलेंगे," बरिनोव ने फ़ौरन जवाब दिया।

हम लोग छिप कर एक मुसाफ़िर-जहाज़ में चढ़ गये। और इस तरह समारा पहुंचे। समारा में हमें एक बजड़े में काम मिल गया जिससे सात दिन बाद हम कास्पियन तट पर पहुंच गये। रास्ते में कोई घटना नहीं घटी। यहाँ काबनकुल-बाई नामक कालिमक मछुआहों की गन्दी बस्ती में हमारी रोज़ी का ठिकाना हो गया।

१९२३